BAPS (N) 201

प्रतिनिधि पाश्चात्य राजनीतिक चिंतक

Representative Western Political Thinkers

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

BAPS (N) 201

प्रतिनिधि पाश्चात्य राजनीतिक चिंतक

Representative Western Political Thinkers

समाजविज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ. लता जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या	इकाई लेखक	इकाई संख्या

डॉ. संतोष कुमार सिंह - असिस्टेंट प्रोफेसर, चौर बेलहा महाविद्यालय तरवा, आजमगढ़	**1**
डॉ. विजय प्रताप मल्ल, असिस्टेंट प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान, जे. एल. नेहरू राजकीय महाविद्यालय, बाराबंकी	4,5,8
डॉ. अशोक कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**2,3,6,9,11,12,13,14**
डॉ. ब्रिजेन्द्र कुमार सिंह, राजनीति विज्ञान, पट्टी महाविद्यालय, पट्टी	7,10, 13, 19
डॉ. लता जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल.	15
डॉ0 सूर्य भान सिंह एवं डॉ. लता जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, इलाहबाद	8

आई.एस.बी.एन. ---------- ISBN :978-93-84433-79-6

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2012

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

संस्करण :2020, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति। **सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है. **मुद्रित प्रतियां**

अनुक्रम

राजनीति विज्ञान के सिद्धांत **बी.ए.पी.एस. (एन) -201**

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठसंख्या
इकाई 1	ग्रीक राजनीतिक चिंतन	1-11
इकाई 2	प्लेटो	12-25
इकाई 3	अरस्तू	26-40
इकाई 4	संत अगस्टाइन, मर्सिलियो ऑफ़ पडुआ	41-51
इकाई 5	थॉमस एक्विनास	52-60
इकाई 6	मेकयावाली	61-72
इकाई 7	जीन बोंदा	73-87
इकाई 8	हाब्स	88-98
इकाई 9	लॉक	99-108
इकाई 10	रूसो	109-130
इकाई 11	हीगल	131-143
इकाई 12	बेंथम	144-150
इकाई 13	टी. एच. ग्रीन , जे एस. मिल	151-166
इकाई 14	कार्ल मार्क्स ग्राम्शी	167-181
इकाई 15	ग्राम्शी	182-189

इकाई -1 ग्रीक (यूनानी) राजनीतिक चिन्तन की विशेषताएं

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 यूनानी राजनीतिक चिन्तन के विकास की परिस्थितियाँ
1.3.1 भौगोलिक स्थितियाँ
1.3.2 जिज्ञासु – प्रवृत्ति
1.3.3 विवेक - बुद्धि
1.3.4 मानव के महत्व का ज्ञान
1.3.5 मानवीयता की भावना
1.3.6 शासन के विविध रूपों की विद्यमानता
1.4 यूनानी राजनीतिक चिन्तन की विशेषताएं
1.4.1 नगर-राज्य
1.4.2 मानव अध्ययन को विशेष महत्व
1.4.3 यथार्थवादी चिन्तन
1.4.4 राज्य नैतिक संस्था के रूप में
1.4.5 विवेक को प्रधानता
1.4.6 दास प्रथा
1.4.7 सामुदायिक हित की भावना
1.4.8 समाज व राज्य में अन्तर नहीं
1.4.9 धर्म निरपेक्ष राजनीतिक चिन्तन
1.4.10 राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव
1.5 यूनानी राजनीतिक चिन्तन का महत्व
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

यूनान पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का सिरमौर रहा है। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ यूनानी राजनीतिक चिन्तन से ही होता है। इसीलिए कहा जाता है कि यूनानी चिन्तन समस्त पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ है, पृष्ठभूमि है और नींव है। सम्पूर्ण पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन या तो यूनानी राजनीतिक चिन्तन का समर्थन या विरोध प्रतीत होता है। किसी राज्य या समाज में होने वाली सामाजिक एवं राजनीतिक उथल-पुथल राजनीतिक विचारों (सिद्धान्तों) के उत्पत्ति को उर्वरता प्रदान करती हैं। यूनान की सामाजिक व राजनीतिक अस्थिरता ने यूनानी दार्शनिकों का ध्यान इस तरफ आकृष्ट किया कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था नें सुधार अपरिहार्य है। जिससे यूनान में राजनीतिक विचारों ने जन्म लेना प्रारम्भ किया और वह इस रूप में प्रकट हुआ कि सम्पूर्ण दुनिया के राजनीतिक विचारों का मार्गदर्शक या आधार सिद्ध हुआ।

यद्यपि यूनानी राजनीतिक चिन्तन से पूर्व भारत, मिस्र, ईरान, चीन, बेबीलोन आदि देशों के निवासियों ने न केवल राजनीतिक संस्थाओ की रचना किया वरन् विभिन्न राजनीतिक समस्याओं पर गहन चिन्तन और मनन भी किया। कुछ ऐसे विचारों का प्रतिपादन भी किया गया जिनका विकास बाद में पष्चिमी जगत में हुआ। किन्तु पौर्वात्य जातियों का राजनीतिक चिन्तन क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक नहीं था। इस प्रकार अन्य समाजों को राजनीतिक चिन्तन को प्रारम्भ करने का श्रेय प्राप्त होने के बावजूद इसे सर्वप्रथम क्रमबद्ध, व्यवस्थित और वैज्ञानिक स्वरुप प्रदान करने का पूरा श्रेय यूनानियों को ही दिया जाता है।

यूनानी अन्य जातियों की तरह धर्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने के बजाय भौतिक जगत की वस्तुओं पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए बुद्धि के प्रकाश में विश्व पर विचार करने का प्रयत्न किये। इस प्रकार निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक चिन्तन का व्यवस्थित व वैज्ञानिक रूप यूनानियों द्वारा ही प्रतिपादित किया गया। यूनानी राजनीतिक चिन्तन राजनीतिक चिन्तन को समझने की दृष्टि प्रदान करता है। यह वह आधार है जिस पर सम्पूर्ण पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का महल निर्मित प्रतीत होता है।

1.2 उद्देश्य-

यह इकाई के अध्ययन के उपरान्त -

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन के विकास को समझने में सहायता मिलेगी ।

2. सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियां किस प्रकार राजनीतिक चिन्तन को पनपने में सहयोग करती है का ज्ञान प्रदान करेगा।

3. वर्तमान राजनीतिक चिन्तन को समझने में भी सहायता मिलेगी ।

4. वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना में इसके योगदान को हम जान सकेगे।

1.3 यूनानी राजनीतिक चिन्तन के विकास की परिस्थितियां

आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है अर्थात समस्या उत्पन्न होने पर उसका समाधान खोजना मानव की प्रकृति रही है। यूनान की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं ने यूनानी चिन्तकों को उनका समाधान ढूढ़ने के लिये प्रेरित किया। जिससे यूनानी राजनीतिक चिन्तन का प्रादुर्भाव हुआ। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन यूनानियों का अन्वेषण था। यह सत्य है कि यूनानी राजनीतिक चिन्तन से पूर्व शासक एवं शासितों का अस्तित्व तो था किन्तु राजनीति का नहीं । यह एक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न है कि राजनीतिक दर्शन अथवा चिन्तन का उदय सर्वप्रथम यूनान में ही क्यों हुआ इसके प्रमुख कारकों का उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है-

1.3.1 भौगोलिक स्थितियां

यूनानी राजनीतिक चिन्तन के उदय पर उसकी विषिष्ट भौगोलिक स्थिति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यूनान के पूर्व की ओर असीरिया तो दक्षिण की ओर मिस्र था। फौनीसिया के व्यापारियों ने यूनायिों को सभ्यता का सन्देश तो दिया परन्तु उनकी स्वतन्त्रता पर कोई कुठाराघात नहीं किया। इससे यूनानियों को अपनी सभ्यताके विकास का निरन्तर अवसर मिला।

यूनान की जलवायु समषीतोष्ण है। जिससे अत्यधिक ठण्ड या गर्मी यहां के निवासियों के लिए परेशानी का कारण नहीं बनती है। इस राज्य के स्वास्थयबर्धक जलवायु के कारण यूनानी शारीरिक एवं मानसिक दृष्टी से मजबूत होते हैं। कम उपजाऊ भूमि होने के बावजूद प्रकृति द्वारा यूनानियों के भोजन की सुलभता व समषीतोष्ण जलवायु के कारण वस्त्रों की चिन्ता का अभाव इनको अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापों के संचालन के लिये प्रचुर समय प्रदान करता है।

1.3.2 ज़िज्ञासु प्रवृत्ति

मानव स्वभाव में जिज्ञासावृति स्वाभाविक रूप से पाई जाती है किन्तु यूनानियों में यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल थी। उनकी यह प्रवृत्ति यूनानी राजनीतिक चिन्तन के विकास का प्रमुख कारण बनी। अरस्तू ने लिखा है कि ''सभी मनुष्य जानना चाहते है। आश्चर्य की भावना दार्शनिक बनाती है, दर्शन का एक मात्र स्रोत यही है। जिज्ञासा की भावना यूनानी जाति की एक प्रमुख विशेषता है। किसी बात को स्वीकार करने से पूर्व वे उसका बैज्ञानिक परीक्षण करते थे। अपनी इसी वृत्ति के कारण यूनानी दार्शनिकों ने विश्व की उत्पति व राज्य सम्बन्धी चिन्तन का प्रतिपादन किया।

1.3.3 विवेक- बुद्धि

जिज्ञासा वृत्ति के साथ-साथ यूनानियों में विवेक तत्व की भी प्रधानता थी। विवेक के कारण ही यूनानी तर्क - वितर्क,वाद-विवाद को अत्यधिक महत्व देते थे। किसी भी सत्य को वे तब तक स्वीकार नहीं करते थे जब तक कि उसे तर्क की कसौटी पर कस कर सच्चाई का ज्ञान न प्राप्त कर लिया जाय। विवेक की प्रधानता के कारण ही धार्मिक अन्धविश्वासों में उनकी कोई रूचि नहीं थी। विवेक व तर्क में गहरी आस्था के कारण ही वे राजनीतिक चिन्तन के जनक के रूप में प्रकट हुए। यूनानी इस बात से भलीभांति परिचित थे कि वाद-विवाद किसी कार्य के मार्ग में बाधक नहीं है बल्कि कोई भी बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य तब तक भली-भांति सम्पादित नहीं हो सकता जब तक कि उसे प्रारम्भ करने से पूर्व उस पर वाद-विवाद व मनन - चिन्तन विवेचन नहीं कर लिया जाता है। किसी भी संस्था का निर्माण करने से पूर्व उस पर समाज के लोगों में वाद-विवाद निष्चित रूप से संस्था के रूप को निखार देता है। वह समाज या राज्य के लिए बेहतर भी सिद्ध होती है।

1.3.4 मानव के महत्व का ज्ञान

राजनीतिक चिन्तन के अभ्युदय के लिए मानव को अपने महत्व का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। यूनानियों को यह पूर्ण विष्वास था कि नियति ने बहुत ही कम चीजों को पहले से निष्चित कर रखा है। तमाम अदृश्य शक्तियों के होते हुए भी मनुष्य अपनी सामर्थ्य से अपने समाज का निर्माण अपनी इच्छानुसार कर सकता है। उनका यही विष्वास उन्हें राजनीतिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करता था और वे अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक थे। यूनानियों का मानना था कि यदि कोई मानव अपने राजनीतिक व सामाजिक दायित्वों का निर्वहन नहीं करता है तो उसका जीवन निरर्थक होता है। मानव के महत्व के कारण ही यूनानी मानव व्यक्तित्व के विकास के समस्त साधन उसे उपलब्ध कराने का समर्थन करते थे।

1.3.5 मानवीयता की भावना

यूनानी मानवीयता की भावना से ओत-प्रोत थे। उनका चिन्तन मानवीयता पर आधारित दर्शन ही है। सोफोक्लीज ने लिखा है कि ''मनुष्य एक अद्भुत वस्तु है जिससे बढ़कर और कोई अद्भुत वस्तु नहीं।'' मानवीयता में आस्था के कारण ही यूनानियों के द्वारा सदैव मानवीय समाज की बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया गया। अपने विचारों के माध्यम से वे तत्कालीन समाज के उन व्यवस्थाओं पर गहरी चोट करने का प्रयास कर रहे थे जो मानव समाज या मानवीयता के लिए कोढ़ साबित हो रही थी। वही उन व्यवस्थाओं का वे प्रबल समर्थन भी कर रहे थे जो मानव प्रेम व सुख-समृद्धि को बढ़ावा देने वाली थी। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि यूनानियों का सम्पूर्ण प्रयास मानवता की सेवा करने के लिए ही था। मानवीय होने के कारण ही यूनानी चिन्तन राज्य के अस्तित्व का आधार पूर्ण सुखमय एवं आत्मनिर्भर जीवन को मानता था।

1.3.6 शासन के विविध रूपों की विद्यमानता

यूनान छोटे-छोटे नगर राज्यों का अद्भुत संगम था। इन नगर - राज्यों की शासन प्रणालियां भी भिन्न-भिन्न थी। जिससे शासन के विविध स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन कर आदर्श शासन की धारणा का प्रतिपादन सम्भव था। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पालिटिक्स' की रचना से पूर्व लगभग 158 देशों के संविधानों का अध्ययन कर यूनान की राजनीतिक व्यवस्था की बुराईयों को दूर करते हुए शासनके सर्वोत्तम रूप को खोजने का प्रयास किया। यह विविधता पूर्ण राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए उर्वरता प्रदान करती थी। शासन के विविध रूपों का अस्तित्व यूनानियों के शासकीय अनुभव में बृद्धि किया परिणाम स्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आदर्श शासन के लिए किन-किन चीजों का होना अपरिहार्य है। यह उनके सम्पूर्ण चिन्तन में भी देखने को मिलता है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ सर्वप्रथम हुआ-

(क) यूनान में (ख) रोम में (ग) उपर्युक्त दोनों में (घ) इनमें से कहीं नहीं

2. यूनानी इस बात के प्रबल समर्थक थे कि कोई भी अच्छा कार्य बिना वाद-विवाद व तर्क-वितर्क के सम्भव नहीं है।

1. सत्य 2. असत्य

3. यूनानी नगर-राज्यों के शासन व्यवस्था में एकरूपता पायी जाती थी ?

1. सत्य 2. असत्य

4. यूनान के पूर्व और दक्षिण की ओर कौन-कौन देश बसे हुए थे

1.4. यूनानी राजनीतिक चिन्तन की विशेषताएं

राजनीतिक दार्शनिक का राजनीतिक दर्शन उसके जीवन युग से निकलता है। वास्तव में उसका राजनीतिक दर्शन उस समय की स्थिति के लिए दिया गया उत्तर होता है जिस समय का वह दार्शनिक होता है या यूं कहें कि समय, काल और परिस्थितियों का प्रभाव निष्चित रूप से प्रत्येक दार्शनिक या चिन्तक के विचारों पर पड़ता है। जिसके कारण प्रत्येक समय के दर्शन या चिन्तन में कुछ विलक्षणताएं देखने को मिलती है। इनको ही हम उस समय के चिन्तन की विशेषताओं के रूप में सम्बोधित करते हैं। प्राचीन यूनान के समय, काल और परिस्थितियों के प्रभाव के कारण ही यूनानी राजनीतिक चिन्तन में निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

1.4.1 नगर-राज्य

यूनानी राजनीतिक चिन्तकों के अध्ययन के केन्द्र बिन्दु नगर-राज्य थे। नगर-राज्य को दृष्टिगत रखकर ही उन्होंने अपना दर्शन दिया। इसका सबसे प्रबल उदाहरण अरस्तू की पुस्तक Politics (पॉलिटिक्स) को माना जा सकता है। Politics शब्द की उत्पत्ति Polis (पोलिस) शब्द से हुई है। जिसका अर्थ होता है नगर-राज्य अर्थात नगर-राज्य का अध्ययन करने वाला विषय च्वसपजपबे कहलाया। क्षेत्रफल और जनसंख्या के दृष्टि से यूनानी नगर-राज्य लघु इकाईया थे। इसमें निवास करने वाले नागरिकों में सामुदायिकता और सद्भाव की भावना पायी जाती थी अर्थात संगठित जीवन, समान धर्म और उपासना नगर- राज्य की प्रमुख विशेषता थी। ये लोग आपस में एक दूसरे को करीब से जानने का प्रयास करते थे। वैचारिक आदान-प्रदान, वाद-विवाद, भाषण, वाकपटुता एवं व्यवहार कुषलता इनका सामान्य लक्षण बन गया था। सामूहिक चरित्र के अतिरिक्त नगर राज्य का लक्ष्य सुखी एवं आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति करना था। प्लेटो और अरस्तू दोनों ने ही नगर राज्य को आत्मनिर्भर समुदाय माना था। यह नगर-राज्य लोगों को सद्जीवन (नैतिक) जीवन प्रदान करने में भी सहयोग करता था। अरस्तू ने लिखा है कि ''राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया और सद्जीवन के लिए बना हुआ है।'' इस प्रकार नगर-राज्य एक पूर्ण राजनीतिक व सामाजिक इकाई था।

यूनानियों द्वारा नगर-राज्य को आदर्श संस्था माना जाता था। यही कारण था कि वे नगर-राज्य की कीमत पर बड़े साम्राज्य को स्वीकार करने के लिए कत्तई तैयार नहीं थे। जबकि अरस्तू के जीवन काल में ही फिलिप ने यूनानी नगर-राज्यों का अन्त करके अपने साम्राज्य की स्थापना कर लिया था फिर भी अरस्तू ने इन साम्राज्यों के बारे में कोई विचार नहीं किया। यूनानियों को यह पूर्ण विष्वास था कि बड़े राज्यों में जीवन का वह सामंजस्य नहीं रह सकता जो छोटे-छोटे नगर-राज्यों में सम्भव था। इस चहार दीवारी के अन्तर्गत मनुष्य एक सामान्य एवं स्वाभाविक जीवन में गुथे हुए थे।

1.4.2 मानव अध्ययन को विशेष महत्व

मानव यूनानी राजनीतिक चिन्तन का प्रमुख अध्ययन विषय था। यूनानी मनुष्य को एक सामाजिक और राजनीतिक प्राणी मानते थे। अरस्तू ने कहा था कि ''मनुष्य एक सामाजिक व राजनीतिक प्राणी है जो मनुष्य समाज में नहीं रहता या यह कहता है कि उसे समाज की आवश्यक ता नहीं है वह या तो पषु या देवता होगा। यूनानियों का मानना था कि सबसे आश्चर्य जनक वस्तु मानव है उससे अधिक आश्चर्य जनक वस्तु अन्य कुछ नहीं है। इसलिए मानव का

अनुसंधान करना अति आवश्यक है जिससे उसके बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। इस प्रकार यूनानियों का उद्देश्य मानव को मानव बनाना था जिससे वह अपने साथ-साथ सम्पूर्ण समाज व राज्य के लोगों के सुख व समृद्धि में सहायक बन सके। यूनानी व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के पक्षपोषक थे। इसके लिए वे व्यक्ति को वे सभी साधन देने के पक्षधर थे जो इस निमित्त आवश्यक हो।

1.4.3. यथार्थवादी चिन्तन

यूनानी राजनीतिक चिन्तन तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित था। यद्यपि प्लेटो का दर्शन आदर्श वादी था किन्तु वह भी अपने आदर्षो का प्रतिपादन राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए ही किया था। अरस्तू तो प्लेटो का षिष्य होते हुए भी प्लेटो की आलोचना इसलिए किया कि उसका चिन्तन यथार्थ जगत से सम्बन्धित नहीं था। अपनी पुस्तक पॉलिटिक्स की रचना के पूर्व अरस्तू ने लगभग 158 देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। इसलिए अरस्तू के सिर्फ दासता सम्बन्धी विचारों को छोड़ दिया जाय तो उसके सिद्धान्त आज भी उतने ही प्रासंगिक प्रतीत होते हैं जितना कि वे अरस्तू के समय में थे। यूनानी नगर-राज्यों की एक प्रमुख विशेषता राजनीतिक अस्थिरता थी। इसलिए यूनानी राजनीतिक चिन्तन का प्रयास इस अस्थिरता को समाप्त कर आदर्श राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना था। यह भी कहा जा सकता है कि यूनानी राजनीतिक चिन्तन भौतिक या सांसारिक जगत या लौकिक या दृष्य जगत से सम्बन्धित था न कि पारलौकिक, अदृश्य या आध्यात्मिक जगत से। यूनानी राजनीतिक चिन्तन का उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का व्यवहारिक निवारण करते हुए आदर्श समाज या राज्य की स्थापना करना था। ऐसा राज्य या समाज सभी प्रकार की कमियों से अछूता होगा। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुंठित करने वाला कोई तत्व नहीं होगा। अरस्तू ने क्रान्ति व उसके प्रतिकार से बचने का जो उपाय सुझाया है वे सतत् व अनादि काल तक प्रासंगिक बने रहेगे।

1.4.4. राज्य एक नैतिक संस्था है

यूनानी राजनीतिक चिन्तन राज्य को एक नैतिक संस्था मानता था। इसलिए उनका कहना था कि राज्य के बगैर नैतिक व आदर्श जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। अरस्तू ने लिखा था कि ''राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया और सद्जीवन के लिए बना हुआ है।'' राज्य का उद्देश्य मानव में सद्गुणों या अच्छी शक्तियों का विकास करना है। यह मानव को बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक श्रेष्ठता प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करता है। जिस प्रकार व्यक्ति नैतिक जीवन का अनुसरण कर आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार राज्य का आनन्द भी सकारात्मक अच्छाई का विकास करना है। मनुष्य का उद्देश्य सदैव नैतिक और आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करना होता है, और राज्य ऐसा जीवन सम्भव बनाने के लिए ही अस्तित्व में बना हुआ है । इस प्रकार राज्य एक नैतिक संस्था है जिसका उद्देश्य एक नैतिक और सद्गुणी जीवन का विकास करना है। राज्य के वगैर नैतिक जीवन की कल्पना करना आकाष कुसुम के समान होगा। राज्य और समाज के बाहर व्यक्ति का व्यक्तित्व कुठित हो जायेगा। वह स्वयं के लिए अनुपयुक्त होने के साथ-साथ राज्य व समाज के लिए भी अनुपयोगी हो जायेगा।

1.4.5 बुद्धि विवेक को प्रधानता

यूनानी राजनीतिक चिन्तन विवेक तत्व को अधिक प्रधानता प्रदान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण यूनानी राजनीतिक चिन्तन मानव विवेक की कहानी है। प्लेटो के आदर्श राज्य का दार्शनिक शासक विवेक की प्रतिमूर्ति था। प्लेटो ने कहा था कि संसार के समस्त कष्टो को तब तक दूर नहीं किया जा सकेगा जब तक कि सभी राजाओं को दार्शनिक या सभीदार्शनिकों को राजा न बना दिया जाय। इससे यह प्रतीत होता है कि यूनानियों की मानव विवेक में प्रबल आस्था थी। मानव विवेक में आस्था के कारण ही यूनानी किसी भी व्यवस्था की प्रांसगिकता को स्वीकारने

के लिए तर्क की कसौटी को सर्वोत्तम मानते थे। उनका मानना था कि कोई भी व्यवस्था अच्छी है या बुरी इसका ज्ञान तभी होगा जब इसे तर्क या विवेक की कसौटी पर कसा जाय। यूनानियों का विष्वास था कि सत्य का अनुसंधान विवेक द्वारा ही किया जा सकता है। उनकी बुद्धि धार्मिक पूर्वाग्रहों से काफी हद तक मुक्त थी। इसी कारण कहा जाता है कि यूनानी राजनीतिक चिन्तन मनुष्य के स्वतन्त्र बुद्धि एवं स्वच्छन्द तर्कना - शक्ति का परिणाम है वह किन्ही धर्मशास्त्रीय मान्यताओं, रूढ़ियों अथवा अन्धविश्वासों पर अवलम्बित नहीं है। उनका राजनीतिक चिन्तन उन्मुक्त बुद्धि की स्वतन्त्र क्रीड़ा था। यूनानियों की बुद्धिवाद में आस्था की प्रषंसा अपने सार्वजनिक भाषण में करते हुए पैराक्लीज ने कहा था ''एथेन्सवासी जिन कार्यो को स्वयं प्रारम्भ नहीं करते उनके भी गुण-दोषों को परखने में सदैव समर्थ होते हैं इसलिए वे वाद-विवाद को कार्य के मार्ग में बाधा नहीं मानते बल्कि उनका कहना था कि कोई भी बृद्धिमत्तापूर्ण कार्य तब तक भली-भाँति सम्पादित नहीं हो सकता जब तक कि उसे करने के पूर्व उस पर वाद-विवाद या गहन विचार-विमर्श न कर लिया जाय।

1.4.6 दास प्रथा

यूनानी राजनीतिक चिन्तन दासता का प्रबल समर्थन करते हुए इसे पूर्णतः प्राकृतिक एवं न्यायोचित मानता है। यूनानियों के अनुसार प्रकृति ने दो तरह के मनुष्यों का निर्माण किया है- स्वामी और दास। दास स्वामियों की सेवा के लिए निर्मित किये गये है ।अतः उनकी सेवा ही उनके जीवन का उद्देश्यहै । प्रकृति में भी यह सर्वत्र देखने को मिलता है कि उत्कृष्ट द्वारा निकृष्ठ पर शासन किया जाता है। उदाहरण स्वरूप आत्मा-शरीर पर, मानव-पशुओं पर, पुरूष-स्त्री पर और माता-पिता बच्चों पर शासन करते हैं। इसलिए यह प्राकृतिक है कि शासक की अपेक्षा बौद्धिक दृष्टि से निकृष्ठ होने के कारण दास पूर्णतः स्वामी के शासन-अनुशासन में रहें। यूनानी चिन्तको का मानना था कि यूनानी सभ्यता के प्रांगण का निर्माण दासता से ही हुआ है। दासता के बिना यूनानी सभ्यता के अस्तित्व को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना सम्भव नहीं होगा। दासता के आधार पर ही यूनानी नागरिकों को वह अवकाष प्राप्त होता था जिससे वे भोजन, वस्त्र आदि के चिन्ता से मुक्त होकर अपने नागरिक कर्तव्यों का निर्वहन करते थे। दासता के प्रबल पक्षपोषण के कारण अनेक विद्वानों ने तो यूनानी राजनीतिक जीवन, सभ्यता एवं संस्कृति को दास प्रथा पर अवलम्बित माना है। यूनानी चिन्तको का मानना था कि दासता की समाप्ति का अर्थ यूनानी सभ्यता को विनष्ट करना होगा। इसलिए अमानवीय होते हुए भी यूनानियों द्वारा दासता का प्रबल समर्थन किया गया।

1.4.7 सामुदायिक हित की भावना-

यूनानीदार्शनिकों ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का निरूपण करते समय सामुदायिक हित को महत्वपूर्ण माना। इन्होंने ही सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य समाज और राज्य में रहकर ही अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। समाज या राज्य से बाहर व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। सामुदायिक हित को प्रधानता प्रदान करने के कारण ही यूनानी राज्य को पूर्ण और व्यक्ति को उसका अंष मात्र मानते थे। उनका कहना था कि जिस प्रकार पूर्ण अंष से अधिक महत्वपूर्ण होता है। उसी प्रकार समुदाय हित या राज्य हित व्यक्तिगत हित से अधिक महत्वपूर्ण है। यूनानियों में सामुदायिक जीवन के प्रति स्वाभाविक लगाव का ही परिणाम था कि वे संघो और संस्थाओं के माध्यम से अपने सामाजिक और राजनीतिक दायित्वों का निर्वहन करते थे। समाज मानव में सामाजिक गुणों का विकास करता है। समाज में ही मानव का पालन-पोषण होता है और समाज में ही उसे आदर्श मानवीय गुणों की षिक्षा मिलती है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने आपको पूर्ण मानव बनाने के लिए अर्थात अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करके अपने जीवन को पूर्णता प्रदान करने हेतु समाज पर निर्भर है। इसलिए यूनान के मनीषीयों तथादार्शनिकों ने मनुष्य को पर्वतों के कन्दराओं या जंगलों में जाकर परम-तत्व का चिन्तन करने का उपदेष देने के बजाय उनको सामाजिक समुदायों जिनमें सबसे महत्वपूर्ण राज्य है तथा संस्थाओं को अधिक पूर्ण

बनाने के लिए उत्प्रेरित किया। इस प्रकार व्यक्ति तथा समाज में समन्वय स्थापित करते हुए यूनानी विचारकों ने राजनीति विज्ञान की इस चिरंतन समस्या का समाधान करने का प्रयास किया कि व्यक्ति तथा राज्य में कौन साध्य तथा कौन साधन है।

1.4.8 समाज और राज्य में अन्तर नहीं-

यूनानियों के अनुसार राज्य और समाज में कोई भेद नहीं होता है। समाज और राज्य पृथक-पृथक न होकर एक-दूसरे से अविछिन्न रूप से जुड़े हुए है। राज्य के बारे में उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था यही कारण था कि उन्हें राज्य और समाज में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं हुआ।

1.4.9 धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक चिन्तन

सधारणतः यूनानियों को धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक चिन्तन का जन्मदाता माना जाता है। इसका कारण है कि प्राचीन यूनानियों की जातीय मनोवृत्ति धार्मिक नहीं थी न ही वहाँ कोई सुगठित पुरोहित वर्ग था। प्रायः यह देखने को मिलता है कि एक धर्म भीरू व्यक्ति स्वतन्त्र बुद्धि की क्षमता एवं तर्कना शक्ति की उपयोगिता में अधिक विष्वास नहीं रखता बल्कि वह धर्मषास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कुछ विष्वासों, मान्यताओं तथा सिद्धान्तों को ध्रुव सत्य मान लेता है। धर्म - पुरोहित लोग धर्मषास्त्रों की आलोचना करने वालों को नरक का भय दिखाकर उसे चुप कर देने का प्रयास करते हैं। यूनानी दार्शनिक एवं चिन्तक धर्म शास्त्रों तथा धर्म-पुरोहितों के ऐसे कठोर अनुषासन से काफी हद तक मुक्त थे। उनके इस योगदान की ओर संकेत करते हुए बार्कर ने लिखा है कि ''राजनीतिक चिन्तन के जन्मदाता यूनानी हैं इसका मूल स्रोत यूनानी मस्तिष्क का शान्त एवं सुस्पष्ट बुद्धिवाद है। भारत और जूडिया (पैलेस्टाइन) के लोगों की भांति यूनानी भी धर्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने और इस जगत को विष्वास के आधार पर ग्रहण करने के बजाय चिन्तन के क्षेत्र में आगे बढ़े और दृष्यमान वस्तुओं पर आश्चर्य प्रकट करने का साहस करते हुए उन्होने विवेक के प्रकाश में विश्व पर चिन्तन करने का प्रयास किया।''

1.4.10 राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव

यूनान के छोटे से भू-भाग पर कई छोटे-छोटे नगर राज्य स्थित थे जिनमें घोर आपसी ईर्ष्या व प्रतिद्वन्दिता व्याप्त थी। अतः इनमें आपस में निरन्तर फूट व कलह का वातावरण था। यूनानी राजनीतिक चिन्तन कभी भी अपने को नगर-राज्यों की सीमाओं से मुक्त नहीं कर सका। यही कारण था कि आधुनिक युग की तरह वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से चिन्तन नहीं कर सके और न ही अपने चिन्तन को नये विस्तृत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आयाम प्रदान कर सके। इस प्रकार उनका चिन्तन हमेषा नगर-राज्यों की संकीर्णता से ग्रस्त रहा।

इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ यूनानी जगत से होने के कारण यूनानी चिन्तन अपने आप मे अद्वितीय प्रतीत होता है। जिसमें ऐसी तमाम विलक्षणताएं देखने को मिलती है जिनका अस्तित्व अन्य कही के चिन्तन में दिखाई नहीं देता है।

1.5 यूनानी राजनीतिक चिन्तन का महत्व

यूनानी राजनीतिक चिन्तन की एक-एक विशेषताएं पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन के नीव की ईंट है। प्राचीन काल में जितनी उत्कृष्ट कोटि, जितना सुस्पष्ट एवं वैज्ञानिक ढंग का राजनीतिक चिन्तन यूनान में हुआ उतना अन्यत्र कही देखने को नहीं मिलता है। यूनानियों ने राजनीति विज्ञान के जिन शब्दावलियों तथा परिभाषाओं का निर्धारण किया उनका प्रयोग हम आज तक कर रहे है। उदाहरण स्वरूप, राजनीति, राजतन्त्र, कुलीनतन्त, वर्गतन्त्र, जनतन्त्र, इत्यादि

शब्दों का मूल स्रोत प्राचीन यूनानी राजनीतिक चिन्तन ही है। प्राचीन यूनानियों ने राज्य के उद्देश्य, कानून के स्वरूप व्यक्ति के अधिकारों, शासन के कार्यो, व्यक्ति तथा राज्य के सम्बन्धों, राज्य के स्वरूप इत्यादि प्रश्नों का समीचीन उत्तर दिया। लिविंगस्टन का यह कथन अतिष्योक्तिपूर्ण नहीं है कि प्राचीन यूनानियों की सबसे महान देन यह है कि उन्होने राजनीतिक चिन्तन का अविष्कार किया था।

राजनीतिक चिन्तन प्राचीन यूनानी राजनीतिक चिन्तकों का कितना ऋणी है इसे स्पष्ट करने के लिए मेयर के अग्रलिखित शब्द उद्धरणीय हैं वह लिखता है कि ''जीवन के प्रति यूरोप का जो दृष्टिकोण है, उसे समझने का जो प्रयास है, उसकी समस्त श्रेणियां प्रारम्भ से ही स्थायी रूप से यूनानियों द्वारा निर्मित हुई हैं। जब तक यूरोपवासी ऐतिहासिक जगत को जानने का प्रयत्न करते रहेगे तक तक यूनानी विचारों एवं धाराणाओं को अपनाकर ही यह सम्भव हो सकेगा। ''यूनानी राजनीतिक चिन्तन का महत्व राजनीतिक चिन्तन में किस हद तक है इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि राजनीति विज्ञान का जनक या प्रणेता अरस्तू यूनान का ही एक महान मनीषी या चिन्तक था।

अभ्यास प्रश्न -2

1. यूनानी अपने चिन्तन में विश्वास (आस्था) को अधिक महत्व देते थे।

1. सत्य है/ 2. असत्य है

2. यूनानी राजनीतिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु कौन सी संस्था थी ?

3. यूनानी दार्शनिक व्यक्तिगत हित और सामुदायिक हित में ज्यादा महत्व देते थे -

(क) व्यक्तिगत हित को (ख) सामुदायिक हित को (ग) इनमें से किसी को नहीं

4. यूनानियों ने दास प्रथा का प्रबल समर्थन किया था ।

1. सत्य है 2. असत्य है

1.6 सारांश

पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ यूनान से माना जाता है। सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल को राजनीतिक सिद्धान्तों के निर्माण के लिए अपरिहार्य माना जाता है। यूनानी नगर राज्यों की राजनीतिक अस्थिरता ने निष्चित रूप से प्लेटो और अरस्तू जैसेदार्शनिकों को जन्म दिया। यूनान के लोगों में जिज्ञासा वृत्ति व विवेक की प्रधानता थी। इसलिए वह प्रत्येक चीज के बारे में जानने का प्रयास करते थे और तर्क-वितर्क व वाद-विवाद के माध्यम से सदैव अच्छा करने का प्रयास करते थे। उनका मानना था कि तर्क वह कसौटी है जो सत्य का अनुसंधान करने में महत्वपूर्ण सहयोग करता है। तर्क-वितर्क, वाद-विवाद के बिना किया गया कोई भी कार्य या संस्था समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा इस बात की भी निष्चित नहीं होगी।

यूनानी नगर राज्यों के शासन की विविधता ने उन्हे तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया। जिससे इस बात का पता लगाया जा सकता था कि कौन शासन प्रणाली सर्वोत्तम है। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पालिटिक्स' की रचना के पूर्व लगभग 158 देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया। तत्पष्चात् वह तात्कालिक यूनानी समाज (नगर-राज्यों) में व्याप्त समस्याओं का निराकरण करने के लिए ही अपने ग्रन्थ 'पालिटिक्स' की रचना की। अरस्तू के विचार कितने यथार्थवादी व व्यवहारिक थे यह इसी से सिद्ध है कि अरस्तू ने जितने भी विचार व्यक्त किये

है केवल उसके दासता सम्बन्धी विचारों को छोड़कर शेष आज भी उतने ही प्रासंगिक हे जितने कि वे अरस्तू के समय में थे। यथार्थ चिन्तन पर आधारित होने के कारण ही अरस्तू की पुस्तक को राजनीति विज्ञान का प्रथम ग्रन्थ और अरस्तू को राजनीति विज्ञान का जनक कहा गया।

प्लेटो और अरस्तू के विचार तात्कालिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों एवं पूर्व के यूनानी दार्शनिकों के विचारों से प्रभावित थे और ये भावी राजनीतिक चिन्तन के स्रोत बने। इस प्रकार सम्पूर्ण पाश्चात्य राजनीतिक दर्शन का आरम्भ प्लेटो और अरस्तू के विचारों से होता है। कहा जाता है कि पष्चिमी राजनीतिक चिन्तन का प्रत्येक विचारक या तो प्लेटो का अनुयायी है या अरस्तू का। इस कथन में बहुत अधिक सच्चाई है क्योंकि आज भी राजनीति विज्ञान के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी बहुत कम चीजें है तो यूनानी विचारधारा के इन दोनों विचारकों के उत्कर्ष काल में नहीं थी अन्तर केवल इनके विस्तार का है। मूल रूप से प्रायः सारे तत्व पश्चिमी राजनीतिक चिन्तन के इन दिग्गजदार्शनिकों में मिल जाते है। इसलिए कहा जाता है कि राजनीतिक चिन्तन का ज्ञान प्राप्त करने की कोई कोषिष तब तक सार्थक नहीं होगी जब तक कि प्लेटो और अरस्तू (यूनानी चिन्तन) का ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाय। यही वह आधार है जिसपर सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन का महल खड़ा दिखायी देता है। क्योंकि इनके पूर्व के जो भी विचार है वे या तो हमारे लिए अप्राप्य हो गये है या तो उनमें वह क्रमबद्धता नहीं है जो यूनानी चिन्तन में देखने को मिलती है।

1.7 शब्दावली

पाश्चात्य - पश्चिमी जगत से सम्बन्धित

चिन्तन - किसी भी सिद्धान्त अथवा आचार के सारे आयामों के विषय में सोचना

दार्शनिक - व्यक्तिगत अनुभूत तथ्यों को व्यक्त करने वाला

संस्था -एक निष्चित उद्देश्य के प्राप्ति हेतु सक्रिय व्यक्तियों का समूह

अन्वेषण - ऐसी खोज जिसका पूर्व में कोई अस्तित्व न रहा हो

सभ्यता -किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का आचरण

संस्कृति - किसी भी राष्ट्र अथवा समाज का भौतिक विवेक

जिज्ञासु -जानने की इच्छा शक्ति

नगर -व्यवस्थित तरीके से बनायी गयी सुसभ्य लोगों की वस्तियाँ

वाक्पटु -जो भाषण में चतुर अथवा निपुण हो

साम्राज्य - एक अधिनायकवादी क्षेत्र जिसकी सम्प्रभुता एक व्यक्ति अथवा सरकार ने हाथों में हो

आदर्श वाद -एक वैकल्पिक भौतिकवाद अथवा वैचारिकया काल्पनिक जगत में पूर्णता

यथार्थवाद- वास्तविक जगत से सम्बन्धित

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. (क) यूनान में 2. (1) सत्य है 3. (2) असत्य है 4. पूर्व की ओर असीरिया और दक्षिण की ओर मिस्र

अभ्यास प्रश्न-2

1. (2) असत्य है 2. नगर-राज्य 3. (ख) सामुदायिक हित को 4. (1) सत्य है

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ.बी.एल. फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा।

2. डॉ. जे.सी. जौहरी, राजनीति विज्ञान, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।

3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग प्राचीन एवं मध्यकालीन)

के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जीवन मेहता, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, 1985 साहित्य भवन आगरा।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यूनानी राजनीतिक चिन्तन के विकास की परिस्थितियों का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

2. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ सर्वप्रथम यूनान में क्यों हुआ।

3. यूनानी राजनीतिक चिन्तन की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

इकाई 2 : प्लेटो (428 ई0 पू0 -347 ई0 पू0)

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 प्लेटो का जीवन
2.3 प्लेटो का न्याय सिद्धान्त
2.4 प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त
2.5 पत्नियों और संपत्ति का साम्यवाद:
2.6 प्लेटो के आदर्श राज्य का स्वरुप
2.7 शासन एक कला है
2.8 दॅ लॉज प्लेटो का दूसरा सबसे अच्छा राज्य
2.9 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई १ में हमने यूनानी राजनीतिक चिंतन की विशेषताओं का ध्यायन किया है जिसमें उसके विविध पक्षों का अध्ययन किया है जिसमें यह जानने में सहायता मिली है कि किस प्रकार से पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का प्रारम्भ यूनान से माना जाता है। सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल को राजनीतिक सिद्धान्तों के निर्माण के लिए अपरिहार्य माना जाता है। यूनानी नगर राज्यों की राजनीतिक अस्थिरता ने निष्चित रूप से प्लेटो और अरस्तू जैसेदार्शनिकों को जन्म दिया। यूनान के लोगों में जिज्ञासा वृत्ति व विवेक की प्रधानता थी। इसलिए वह प्रत्येक चीज के बारे में जानने का प्रयास करते थे और तर्क-वितर्क व वाद-विवाद के माध्यम से सदैव अच्छा करने का प्रयास करते थे। उनका मानना था कि तर्क वह कसौटी है जो सत्य का अनुसंधान करने में महत्वपूर्ण सहयोग करता है। तर्क-वितर्क, वाद-विवाद के बिना किया गया कोई भी कार्य या संस्था समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा इस बात की भी निष्चित नहीं होगी। यूनानी नगर राज्यों के शासन की विविधता ने उन्हे तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया। जिससे इस बात का पता लगाया जा सकता था कि कौन शासन प्रणाली सर्वोत्तम है।

इसी क्रम में हम इस इकाई २ में यूनानी राजनीतिक चिंतन के प्रारंभिक विचारकों में अति महत्वपूर्ण प्लेटो के विचारों का अध्ययन करेंगे जिसमे उन्होंने अपने समय के अनुकूल जिस सामाजिक राजनीतिक ढाँचे की रूपरेखा प्रस्तुत की है उसका अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से हमें इसके आगे के पाश्चात्य राजनीतिक चिंतकों को भी समझने की दृष्टि भी प्राप्त होगी।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम -------

1. प्लेटो का जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को जान सकेंगे।

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।

2.प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।

3.प्लेटो के साम्यवादी सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।

4.प्लेटो के आदर्श राज्य को जान सकेंगे।

2.2 प्लेटो का जीवन-परिचय

प्लेटो लगभग 428/427 ईसा पूर्व यूनानी नगर-राज्य एथेंस में जन्मे थे। वह धनी और शक्तिशाली परिवार से थे। उनका वास्तविक नाम एरिस्टोक्लीज था। वह हष्ट-पुष्ट था और उसके चौड़े कन्धों की वजह से ही उसे प्लेटो (अफलातून) कहा जाने लगा। शुरुआत में उसने खिलाडी और सैनिक के रूप में प्रसिद्धि पाई। जब वह लगभग बीस वर्ष के थे तो वह सुकरात की तर्क विद्या के जादू के अधीन आ गए और उन्होंने खुद को दर्शनशास्त्र के लिए समर्पित करने का फैसला किया। 399 ई.पू. में जब सुकरात को प्राण दंड दिया गया,तब तक वह सुकरात के साथ ही थे, सुकरात की मृत्यु से वह टूट गया। कई वर्षों तक यूनान, इटली, और मिस्र की यात्रा करके वहाँ की शासन-प्रणालियों का अध्ययन किया। विदेश यात्रा से लौटकर प्लेटो ने दर्शनशास्त्र के विस्तृत अध्ययन के लिए 'अकादमी' की स्थापना की, जो पश्चिमी दुनिया में उच्च शिक्षा की पहली संस्था है।

प्लेटो ने महिलाओं को अकादमी में भाग लेने की भी अनुमति दी। इस अकादमी ने प्राचीन यूनान को अनेक विधिवेत्ता और राजमर्मज्ञ दिए , अरस्तू भी इस अकादमी से पढ़े थे। प्लेटो सुकरात के शिष्य और अरस्तू के शिक्षक थे। प्लेटो का विचार सुकरात के ज्ञान सिद्धांत से प्रभावित था। प्लेटो का मानना था कि सत्य (विचार) की उच्च वास्तविकता को जानने का एकमात्र तरीका अत्यधिक अनुशासित तर्कसंगत जांच है। उनका कहना है कि दृश्य जगत वास्तविक जगत की छाया है। मत और सत्य, सुन्दर और सौन्दर्य में अन्तर है। सुकरात की तरह प्लेटो भी हमेशा आदर्श राज्य की तलाश में रहा , उसने वास्तविक राज्य में उतनी दिलचस्पी नहीं ली, जितनी आदर्श राज्य को कैसे बनाया जाये में ली। इसी वजह से उसे स्वप्नदर्शी (Utopian) कहा जाता है।

प्लेटो की किताबें

• प्रोटागोरस (Protagoras),	• अपोलोजी (Apology)
• सिम्पोजियम (Symposium),	• क्रीटो Crito)
• फेडो (Phaedo),	• युथिफ्रो (Euthyphro)
• रिपब्लिक (Republic)	• जोर्जियस (Gorgias)
• सोफिस्ट (Sophiest)	• मिनो (Meno)
• स्टेटमेन (Statesman)	• लॉज़ (Laws)

2.3 प्लेटो का न्याय सिद्धान्त

प्लेटो का न्याय सिद्धान्त उसके दर्शन की आधारशिला है। प्लेटो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुकूल अपने कार्यो को कुशलता एवं सन्तोष भावना से करे, प्लेटो इसे न्याय की संज्ञा देते है। आज हम न्याय को जिस कानूनी परिप्रेक्ष्य में देखते अथवा मानते है, प्लेटो का मत इससे भिन्न था। आज हम लोग न्याय का अर्थ कानूनों द्वारा नागरिकों को दिये गये अधिकार कानूनों द्वारा नागरिकों के वाहय सम्बन्धों का निर्धारण अथवा न्यायलयों द्वारा नागरिकों के ऐसे अधिकारों की रक्षा करने से लगाते है। विद्धानों का मत है कि न्याय एक समन्वयकारी सिद्धान्त है जो कि स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के आदर्शो के बीच नागरिकों के हितार्थ समन्वय स्थापित करता है। किन्तु प्लेटो की न्याय की धारणा इससे अलग है प्लेटो जिसे हम नैतिकता कहते है, को सच्चा न्याय मानते है। प्लेटो का न्याय सिद्धान्त व्यक्तिगत नैतिकता तथा सामाजिक नैतिकता का सिद्धान्त है विधि का सिद्धान्त नहीं।

प्लेटो राज्य के विकास का वर्णन करते हुए उसमें "आर्थिक तत्व, सैनिक तत्व तथा दार्शनिक तत्व" तीन प्रकार तत्व का वर्णन करता है, और इसी के आधार पर राज्य में तीनों वर्गो के विकास का वर्णन करता है। समाज के विकास क्रम में उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल तीन वर्गो की उत्पत्ति होती है।

ये तीन वर्ग है उत्पादक वर्ग सैनिक वर्ग एवं शासक वर्ग। प्लेटो कहता है कि उत्पादक वर्ग आर्थिक तत्व का सैनिक वर्ग साहस वर्ग का शासक वर्ग दार्शनिक तत्व का प्रतिनिधित्व करते है। वास्तव में राज्य के ये तीनों वर्ग मनुष्य की आत्मा में अन्तर्निहित क्षुधा साहस तथा ज्ञान के सूक्ष्म तत्वों के विशद रुप है। प्लेटो के अनुसार मानवीय आत्मा के तीन प्रधान तत्व क्षुधा साहस तथा विवेक मानता है। मनुष्य के विराट रुप राज्य राज्य में भी ये तीन तत्व पाये जाते है। राज्य में क्षुधातत्व का प्रतिनिधित्व करने वाला उत्पादक वर्ग है, जिसका एक मात्र कार्य समाज के लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्तिकरना है। राज्य में साहस तत्व का प्रतिनिधित्व करने वाला सैनिक वर्ग है। जिसका एक मात्र कार्य राज्य की रक्षा करना है। राज्य में विवेक अथवा दार्शनिक तत्व का प्रतिनिधित्व शासक वर्ग करता है। दार्शनिक वर्ग का कार्य राज्य का समुचित शासन करना है।

प्लेटो मनुष्य की आत्मा के तीन गुणों की विस्तृत व्याख्या करता है तथा इनका राज्य के तीन वर्गो के साथ सम्बन्ध की बात करता है। आत्मा के तीन तत्वों तथा राज्य के तीन तत्वों में अन्त सम्बन्धों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

व्यक्ति	राज्य (व्यक्ति का विराट रुप)
व्यक्ति की आत्मा में पाये जाने वाले तत्व	राज्य में पाये जाने वाले तीन वर्ग
1.क्षुधा (वासना)	1.उत्पादक वर्ग
2.साहस	2.सैनिक वर्ग (सहायक अभिभावक वर्ग)
3.विवेक	3.शासक वर्ग

मनुष्य की आत्मा के तीन तत्वों का निरुपण कर प्लेटो इन तत्वों का सम्बन्ध समाज में पाये जाने वाले तीन तत्वों और उनका प्रतिनिधित्व करने वाले वर्गो के साथ जोड़ता है। इस धारणा में प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त निहित है। प्लेटो के अनुसार न्याय के दो पक्ष होते है एक व्यक्तिगत न्याय तथा सामाजिक न्याय जब मनुष्य की आत्मा के तीन

तत्व अपने अपने निर्धारित कर्मो को करते हैं और इस क्रम में जब क्षुधा वासना पर साहस और विवेक का नियन्त्रण हो तथा जब साहस विवेक के निर्देशन में कार्य करे व्यक्ति के लिए यही न्याय है। प्लेटो के अनुसार व्यक्तिगत न्याय वह है जब व्यक्ति की वासना पर साहस विवेक का तथा साहस पर विवेक का अनुशासन हो। और सामाजिक न्याय वह है जब समाज के तीनों वर्ग अपने अपने कर्तव्यों का पालन करें जब कृषक उत्पादन का कार्य करें। सैनिक देश की रक्षा करें और दार्शनिक शासक के आदेशों का पालन करें और जब दार्शनिक शासक शासन का संचालन करे, और शासक वर्ग की सर्वोच्चता अन्य वर्गो पर रहे, प्लेटो की मान्यतानुसार यही सामाजिक न्याय है।

प्रत्येक वर्ग का सम्पूर्ण दक्षता से अपने निश्चित कर्तव्य को करना तथा दूसरे वर्ग के कार्यो में हस्तक्षेप न करना ही प्लेटो की परिभाषा में सामाजिक न्याय है। जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन में क्षुधा तथा साहस का संचालन विवेक तत्व से करना न्याय है, उसी प्रकार क्योंकि राज्य अन्ततोगत्वा मन की ही उपज है, राज्य में यही न्याय है। प्लेटो के अनुसार प्रत्येक वर्ग द्वारा अपने सुनिश्चित कार्यो को कुशलतापूर्वक करना ही सामाजिक न्याय है।

न्याय का वास्तविक रुप

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर प्लेटो की न्याय की धारणा के वास्तविक स्वरुप को निम्नलिखित रुप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्लेटो की मान्यता है कि मनुष्य को जन्म से ही कुछ योग्यतायें प्रकृति द्वारा प्राप्त होती है। अतः व्यक्ति को केवल उसी योग्यता के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति तथा वर्ग द्वारा अपने निश्चित कर्मी की कुशलता से करना ही न्याय है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में व्यक्ति के अधिकारों पर नहीं कर्तव्यों पर बल दिया गया है।

2.प्लेटो के अनुसार न्याय वैयक्तिक तथा सामाजिक नैतिकता का सिद्धान्त है। अतः प्लेटो का न्याय सामाजिक शुभ की प्राप्ति का नैतिकता का मार्ग है।

3. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में श्रम विभाजन अहस्तक्षेप तथा कार्यो की विशेषज्ञता के तत्व निहित है।

4. प्लेटो का न्याय सिद्धान्त सामाजिक एकता पर बल देता है। एथेन्स राज्य के विभिन्न बंटे हुए वर्गो में एकता और सामाजिक समरसत्ता स्थापित करना प्लेटो का लक्ष्य था जिसकी पूर्ति का साधन न्याय है।

5. प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का तार्किक परिणाम विवेक की सर्वोपरिता है। इस सिद्धान्त के पीछे सुफरात से प्राप्त प्लेटो की यह मान्यता है कि ज्ञान ही सदगुण हैं दार्शनिक शासक ज्ञान की प्रतिमिूर्ति है अतः राज्य में दार्शनिक शासक का विवेक का, शासन होना चाहिए।

न्याय सिद्धान्त की आलोचना

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का अध्ययन करने से उसकी कुछ दुबलाऐं भी प्रकट होती है जो इस प्रकार है-

1. प्लेटो की न्याय की धारणा अत्याधिक निष्क्रिय है किसी प्राकृतिक गुण की क्षमता के नाम पर व्यक्ति को जीवन पर्यन्त निश्चित स्थान पर अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाँध दिया जाता है। उस निश्चित स्थान से आगे बड़ने अथवा उपर उठने की इस व्यवस्था में कोई गुंजाइश नहीं है।

2. व्यक्तियों की इच्छाओं के संघर्ष अथवा टकरावों का समाधान करने की न्याय सिद्धानत में कोई व्यवस्था नहीं है।

3. प्लेटो का न्याय सिद्धान्त विधि और नैतिकता के बीच की विभाजक रेखा को धूमिलकर देता है। प्लेटो के न्याय के नाम पर नैतिक कर्तव्यों को तथा कानूनी दायित्व को एक ही मान लिया है।

4. प्लेटो व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का निराकरण करने तथा सामाजिक एकता के लक्ष्य की प्राप्ति के नाम पर अत्यधिक एकीकरण व्यवस्था की बात करता है।

पॉपर नामक विद्धान्त, प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में सर्वसत्तावादी समाज के बीज ढूंढता है। वह कहता है कि प्लेटो के समाज में विवेक के नाम पर एक वर्ग विशेष का शासन थोपा जाता है। पॉपर के अनुसार प्लेटो की न्याय की परिभाषा के पीछे आधारभूत स्तर पर एक 'एक सर्वसत्तावादी वर्ग का शासन' की मांग है। प्लेटो का समाज तीन वर्गो की असमानताओं पर टिका हुआ है जिसमें समानता का कोई स्थान नहीं है। लेकिन अन्त में बार्कर का मत है कि "प्लेटो का राजनीतिक सिद्धान्त इस नैतिक सावयव का सिद्धान्त है और उसका न्याय सिद्धान्त ऐसी नैतिकता की संहिता है। जिसके द्वारा वह समाज में जीता है।

2.4 प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त

दार्शनिक द्वारा राज्य का शासन व्यापक शिक्षा के जरिए ही संभव था और यह समक्ष गया कि सही शिक्षा के जरिए ही संभव था और यह समझा गया कि सही शिक्षा के जरिए ही यह सफल हो सकता है। प्लेटो शिक्षा को नैतिक सुधार के जरिए मानव को बदलने का हथियार समझते थे। शिक्षा दूसरों की ओर निःस्वार्थ सेवा भावना भरकर बेहतर होती है और नए समाज का निर्माण होता है। प्लेटो ने इसे गंभीरता से लेते हुए इस पर विस्तृत विचार किया है।

शिक्षा योजना एवं पाठयचर्या का स्वरुप

प्लेटो की शिक्षा योजना के दो स्तर है 'प्रारम्भिक शिक्षा' तथा 'उच्च शिक्षा'। प्लेटो कहता है कि शिक्षा आयु के अनुरुप होनी चाहिए जैसे कि बाल्यावस्था में बालक को प्रयोगात्मक शिक्षा देनी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य भावनाओं को परिष्कृत करके चरित्र का निमार्ण करना है। यह शिक्षा सैनिक वर्ग को तैयार करने की है। प्लेटो की शिक्षा का सम्बन्ध केवल सैनिक वर्ग और दार्शनिक वर्ग की शिक्षा से है। प्लेटो की शिक्षा योजना में सैनिक वर्ग में साहस जागृत करना है तथा पूर्ण संरक्षको के लिए शिक्षा का उद्देश्य उन्हें विज्ञान और दर्शन का अध्ययन करना है जिससे कि इनमें 'विवेक' का जागरण हो।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्लेटो ने सलाह दी कि शिक्षा को राज्य द्वारा नियन्त्रित होना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा को 18 वर्ष की आयु तक संरक्षक वर्ग तक सीमित होना चाहिए। उसके बाद दो वर्षो की अनिवार्य सैनिक शिक्षा होनी चाहिए और इनमें क्षमतावान को उच्चतर शिक्षा मिलनी चाहिए। जहाँ प्राथमिक शिक्षा हमें आस पास के वातावरण के प्रति संवेदी बनाती है, वहीं उच्चतर शिक्षा सच्चाई की खोज में सहायता करती है। प्राथमिक शिक्षा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अनुभव विकसित करती है, नैतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय निर्णय में मदद करती है और शरीर को स्वस्थ और मजबूद बनाती है।

लड़के लड़कियों को समान शिक्षा मिलनी चाहिए तथा शारीरिक अन्तर को छोड़कर प्लेटो को उनकी क्षमता में कोई अन्तर दिखायी नहीं देता। दोनों की क्षमताएं भी समान होती है। इस प्रकार उन्होंने प्राचीन यूनान में स्त्री की गौण स्थिति की सुक्ष्म आलोचना की।

प्राथमिक शिक्षा में संगीत और व्यायाम शामिल थे ताकि व्यक्ति के नम्र और कठोर पक्षों को मिलाकर एक समन्वयपूर्ण वयक्ति का निर्माण हो। शारीरिक शिक्षा भावनाओं और इच्छाओं को स्थिरता प्रदान करके मस्तिष्क के लिए शरीर को तैयार करती है। संगीत तर्क की छिपी शक्ति को विकसित कर भावना को नम्र बनाती थी। कविता और संगीत तथा कला सही काम करने का रुझान पैदा करते थे। इससे हर व्यक्ति बिना अतिवादी बने अपना काम करता।

प्लेटो ने संरक्षक वर्ग में आवश्यक गुणों के विकास के लिए साहित्य और संगीत पर पाबंदी लगाने का सुझाव दिया ताकि उनमें हानि कारक प्रभावों से बचा जा सके। प्लेटो ने जोर दिया कि बच्चों की मृत्यु से नहीं डराना चाहिए नहीं तो युद्धभूमि में वे साहस का प्रदर्शन नहीं कर पाएगें। बच्चों को देवताओं और महान व्यक्तियों की कहानियां बतायी जानी चाहिए ताकि उनका नैतिक विकास हो सके। प्लेटो युवक के जीवन से हर तरह की बुराई और कुरुपता दूर रखना चाहते थे।

सही गुणों में प्रशिक्षण वर्ग के सम्पूर्ण सदस्य निर्मित करेगा इस प्रकार के उम्र के साथ सही व्यवहार विकसित होगा। कला में शिक्षा के बाद दो वर्ष सैनिक शिक्षा दी जाएगी अपव्यय और बर्बादी पर पाबंदी लगाकर आत्मा को मजबूत किया जाएगा। प्लेटो ने एथेनियन व्यवहार पर जोर दिया था उसके तहत सत्रह अठारह से बीस वर्ष की आयु के बीच सैनिक सेवा अनिवार्य थी प्राथमिक शिक्षा इन लोगों को मजबूत कर सहायक सेना का निर्माण करेगी।

उच्चतर शिक्षा

बीस वर्ष की आयु में सबसे अच्छे व्यक्तियों को उच्च शिक्षा दी जाएगी। इसमें गणित, रेखागणित, खगोल विद्या और संगीत शामिल होगा। गणित शुद्ध सच्चाई की खोज में शुद्ध बुद्धि का प्रयोग है। प्लेटो की दृष्टि में सच्चाई विचार में न कि विशेष वस्तुअरें में बसती है। इस दार्शनिक महत्व के अलावा गाणित का व्यावहारिक महत्व भी है अर्थात सठंया का ¬प्रयोग योद्धाओं को अंको का प्रयोग जानना जरुरी है ताकि सेवाओं की व्यूह रचना कर सके। खगोल शास्त्र अन्तरिक्ष पिंडो के अवलोकन तक सीमित नहीं है और संगीत कानों द्वारा विशेष स्वर ताल सुनने तक, बल्कि दोनों ही संवेदनाओं से मस्तिष्क को उपर उठाते है और तर्कशक्ति बढ़ाते है। उच्चतर शिक्षा मुक्त बौद्धिक अनुसंधान की भावना का विकास करती है।

जो बुद्धिवादी श्रेणी में नहीं आते है वे सैनिक बनकर शासक तबके की दूसरी शक्ति बनाते है। उच्चतर शिक्षा का प्रथम चरण दस वर्षो तक चलेगा और उनके लिए होगा जिनका विज्ञान की ओर झूकाव है। तीस वर्ष की आयु में एक ओर चुनाव होगा। जो क्षमता रखते है वे डाइलैक्टिस्स या पराभौतिक तर्क और दर्शन का अगले वर्षो तक अध्ययन करेगें। वे अच्छाई के विचार और अस्तित्व के प्रथम सिद्धान्तों का अध्ययन करेगें। उन्हें शासन का आंशिक अनुभव होगा। वे सैनिक और राजनैतिक जीवन में पैंतीस वर्ष की आयु तक सहायक पदों पर रहेंगे। यह अगले पंद्रह वर्षो तक चलेगा। दार्शनिक 50 वर्ष की आयु तक पूरी तरह तैयार हो जायेगा। वह अपने समय का अधिकांश हिस्सा राजनैतिक जिम्मेदारियों के साथ दर्शन में लगाएगा। चूंकि वह अच्छाई का विचार आत्मसात कर लेगा इसलिए समुदाय की भलाई करने के लायक हो जायेगा। चूंकि प्लेटो ने शासन को वैज्ञानिक प्रशिक्षण का नतीजा बनाना चाहा, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सच्चे ज्ञान वाले लोग ही अच्छे शासक बन सकते है।

प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त का मूल्यांकन

प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त एक ओर सामाजिक दायित्वों को निपुणता से पूरा करने वाली व्यक्तियों एवं वर्गो के प्रशिक्षण की योजना है दूसरी ओर व्यक्ति को उसके तत्व ज्ञान का ज्ञान करा उसे नैतिक और विद्धान बनाने की है। हम कह सकते है कि प्लेटो की शिक्षा प्रणाली नागरिकों के समाजीकरण की विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति को राज्य के निर्धारित उद्देश्य के अनुरुप ढाला जा सके। प्लेटो कहते है कि यदि व्यक्ति को अच्छी शिक्षा दी जाती है तो उसका प्रभाव राज्य की उन्नति पर भी पड़ता है और गलत शिक्षा का विपरित असर पड़ेगा और राज्य में उन्नति की बजाय अवनति होगी।

लेकिन प्लेटो की शिक्षा में गुण के साथ कुछ दोष भी है। सबसे बड़ा दोष यह है कि प्लेटो की शिक्षा समाज के दो वर्गो सैनिक तथा दार्शनिक शासकों के लिए है। समाज के बहुसढंयक उत्पादक वर्षो को इसके लाभों से वंचित रखा गया है। दूसरा कला और साहित्य के मूल पर कुठाराघात किया है। क्योंकि उसके कलेवर और स्वरुप पर राज्य का नियन्त्रण थोप दिया जाता है। कला सृजनात्मक रुप तभी निखरता है जब वह राज्य के प्रतिबन्धों से मुक्त हो। इस अधार पर प्लेटों को फासीवादी विचारों का प्रर्वतक भी कहा गया है। तीसरा व्यक्तित्व के विकास लिए शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ विषयों की विविधता का होना जितना आवश्यक है उतना ही व्यक्ति की रूचि की विविधता का होना भी नितान्त आवश्यक है। प्लेटो की योजना में व्यक्ति की शिक्षा के लिए स्वरुचि की विविधता के अवसर नहीं है।

2.5 पत्नियों और संपत्ति का साम्यवाद:

प्लेटो के अनुसार समाज में इस बात का जोर था क्षमतावान समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने रुझान के अनुरुप कार्य के लिए तैयार करना, पत्नियों और संम्पत्ति के साम्यवाद का उद्देश्य था भ्रष्टाचार, दुर्घटना, पारिवारिक सम्बन्ध, आनुवांशिकता और धन सामाजिक स्थान के लिए मानदंण्ड नहीं बने।

प्लेटो ने संरक्षक वर्ग के लिए निजी सम्पत्ति और निजी परिवार समाप्त कर दिया क्योंकि इससे भ्रष्टाचार, पक्षपात, व्यक्तिवाद, गुटबाजी और दूसरी ऐसी भ्रष्ट आदतें पैदा होती है जो शासकों के बीच पाई जाती है राजनीति का अर्थ व्यक्तिगत बढावा नहीं बल्कि सामूहिक भलाई करना था। इस प्रकार प्लेटो ने शासन और शासकों के लिए उच्च मानदंण्ड स्थापित किए।

प्लेटो कहता है कि संरक्षक वर्ग के लोग बैरकों में सामान्य सैनिकों के समान रहे उनके पास सोना या चांदी न रहे और आवश्यकतानुसार वे एक छोटी सी सम्पत्ति ही रखे। समाज के किसी भी वर्ग के लोग मकान या भंडारधार अर्थात अपनी निजी सम्पत्ति की कोई जगह नहीं होनी चाहिए। वे उत्पादक वर्ग की ओर से सिर्फ एक नियत कोटा पाएंगे जो उनकी जीविका के लिए आवश्यक होगा।

प्लेटो की योजना इस पाइथगोरसवादी मान्यता पर आधारित थी कि स्त्री और पुरूष प्राकृतिक स्वभाव और क्षमताओं में समान थे। प्लेटो स्त्रियों को विधायक और शासक बनाना चाहते थे। उनके सिद्धान्त में दो विचार प्रमुख थे परम्परागत विवाह का सुधार और स्त्री मुक्ति। इसके लिए प्लेटो ने स्थायी विवादों और निजी परिवारों के विलयन का प्रस्ताव रखा। यह सिर्फ संरक्षको को स्त्रियों तक सीमित था।

प्लेटो विवाह को आध्यात्मिक मिलन या प्रेम या आपसी आदर पर आधारित मानने से इकार कर दिया। लेकिन प्लेटो मानते है कि समाज तथा मानव जाति की निरन्तरता के लिए विवाह अति आवश्यक है। इसलिए प्लेटो ने सन्तानोत्पत्ति

के लिए अस्थाई यौन सम्बन्धों की वकालत की। उन्होने स्त्रियों को बच्चो के लालन पालन की जिम्मेदारी से मुक्त का दिया। प्लेटों ने प्रस्ताव रखा कि यौन सम्बन्धों का कठोरता से नियमन किया जाए ताकि सबसे अच्छे और स्वस्थ मनुष्य राज्य के हितों में तैयार किए जा सके।

प्लेटो के अनुसार दोनों लिंगों के सबसे अच्छे व्यक्तियों के अधिकाधिक सम्बन्ध होने चाहिए और निम्न गुण के लोगों के सम्बन्ध कम से कम होने चाहिए। इस बात की जानकारी शासकों को होनी चाहिए कि यह कैसे सम्भव हो।

प्लेटों ने विवाह के लिए आदर्श उम्र पुरूषों में 25 से 55 और स्त्रियों में 20से 40 रखी। उन्होने माता और पुत्र, पिता और पुत्री के बीच समबन्धों पर पाबन्दी लगा दी। स्थाई वैवाहिक समबन्धों को समाप्त करने का उद्देश्य यौन उच्च श्रृखला को बढ़ावा देना नहीं था बल्कि समुदाय की भलाई करना था। अवैध बच्चों के सम्बन्ध में गर्भपात का सुझाव था अर्थात ऐसे बच्चों जिनकी अनुमति राज्य नहीं दी है या जो अनुमति से अधिक उम्र के व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों से जनित हों।

राज्य द्वारा निर्मित और प्रशसित नर्सो के द्वारा बच्चों की देखभाल की जाती है। अभिभावक और बच्चे भी आपसी सम्बन्धों के बारे में नहीं जानते। इसके पीछे जो उद्देश्य था वह कि बच्चे सभी व्यस्कों के प्रति सम्मान का वह स्तर रखे जो अपने पिता के साथ होता है। इसी प्रकार सभी वयस्क बच्चों को उसी तरह प्यार करें मानों वे अपने बच्चे हों। प्लेटो ने जन्म को बहुत कम महत्व दिया और प्लेटो के अनुसार क्षमता आनुवांशिक नहीं होती है। क्षद्म विवाहों, नियंत्रित लाटरी और चुने हुए यौन सम्बन्धों के जरिए उच्च क्षमता वाले व्यक्ति तैयार किये जाते है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्लेटो के इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष है कि वे परिवार और विवाह सम्बन्धी मानवीय भावनाओं का ध्यान नहीं रखते फिर शुरुआती समाजवादियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। प्लेटो ने जोर दिया कि सम्पत्ति के प्रति निर्भव राज्य के कल्याण के लिए जरूरी था। अपनी सम्पत्ति से अधिक लगाव राज्य की एकता और नैतिकता के लिए हानिकारक था। इससे भ्रष्टाचार पैदा होगा। और राज्य विभाजित हो जाएगा प्लेटो राजनीति में आर्थिक कारकों की भूमिका को समझने वाले प्रथम थे। दूसरा दोष है प्लेटो ने सामाजिक वर्ग परिवार और सम्पत्ति की इजाजत दी, लेकिन संरक्षकों के कठोर नियंत्रण में जो किसी प्रकार व्यावहारिक नहीं है।

प्लेटो का साम्यवाद सादा था जैसा कि धर्म स्थलों के जीवन में पाया जाता है। कई उन्हें आधुनिक समाजवाद के संस्थापक भी मानते है। साम्यवाद सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व से बढ़कर था। इसमें शोषण और दमन से मुक्त एक ऐसे समाज की कल्पना थी जो न्याय बराबरी, आजादी और जनतंत्र पर आधारित था।

2.6 प्लेटो के आदर्श राज्य का स्वरुप

आदर्श राज्य की कल्पना प्लेटो की अत्यन्त मौलिक धारणा है। प्लेटो के समय एथेंन्स में व्यक्तिगत स्वार्थपरता का बोलबाला था, सामाजिक एकता का अभाव था गैर राजनीतिक लोगों का राजनीति में हस्तक्षेप था। एथेन्स की इन दुर्बलताओं ने प्लेटो को आदर्श राज्य की रुपरेखा प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। प्लेटो ने तात्कालीन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कार्य विशेषीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

आदर्श राज्य के आधारभूत सिद्धान्त

प्लेटो का आदर्श राज्य जिन सिद्धान्तों और तत्वों पर टिका हुआ है वे मूल सिद्धान्त निम्नलिखित है-

1. न्याय राज्य की आधारशिला:- प्लेटो के आदर्श राज्य की आधारशिला 'न्याय' है। प्लेटो कहता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक वर्ग अपने नैसर्गिक गुणधर्म द्वारा निश्चित कार्य को कुशलतापूर्वक करे तथा दूसरों के कार्यो में हस्तक्षेप न करते हुए अपने कार्य को करे, यही न्याय है। आत्मा के तीन गुणों विवेक साहस और क्षुधा के अनुकूल समाज में दार्शनिक शासक सैनिक तथा कृषक वर्गो का अस्तित्व रहता है। समाज के ये तीनों वर्ग जब अपने कर्तव्यों का पालन करेगें तभी समाज में सामजस्य स्थापित होगा, कार्यकुशलता बढेगी और समाज ठीक प्रकार से चलेगा। इन्हीं सभी गुणों को प्लेटो ने न्याय के गुण के नाम से सम्बोधित किया है संक्षेप में, न्याय प्लेटो के आदर्श राज्य का मूल तत्व है।

2. कार्य विशिष्टीकरण के लिए शिक्षा योजना:- प्लेटो की धारणा है कि शिक्षा के सशक्त रचनात्मक साधन द्वारा व्यक्ति को समाज के आदर्शो एवं कार्यो के अनुकूल ढाला जा सकता है समाज के अन्य वर्गो के लिए तो शिक्षा महत्व है ही फिर भी दार्शनिक शासक के निमार्ण में उसकी महती भूमिका है। दार्शनिक राजा का निमार्ण कसा प्लेटो के दर्शन का अन्तिम लक्ष्य है। प्लेटो यूनानी परम्परा के अनुसार शिक्षा को नागरिक चरित्र निर्माण का प्रबल साधन मानता है प्लेटो के अनुसार शिक्षा राज्य के नियन्त्रण में रहेगी। शिक्षा व्यवस्था अपने विशुद्ध रुप में अनवरत चलती रहे, इसके लिए उसने दार्शनिक शासकों को दायित्व भी सौपा है कि वे राज्य की शिक्षा व्यवस्था को उसी प्रकार बनाये रखे जैसे उन्हे विरासत में प्राप्त हुई है। व राज्य की शिक्षा व्यवस्था में किसी प्रकार के परिवर्तन नहीं आने दें। स्पष्ट है कि एक विशेष प्रकार की शिक्षा प्रणाली प्लेटो के आदर्श राज्य का अविभाज्य अंग है।

3. दार्शनिक शासकों की निरकुंशता विधिका लोप:- प्लेटो के दर्शन का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि प्लेटो के आदर्श राज्य में विधि और जनमत की अपेक्षा की गयी है। प्लेटो के आदर्श राज्य में लिखित कानून का लोप है क्योंकि प्लेटो की यह धारणा है कि स्वंय दार्शनिक शासन कानून की जीवित प्रतिमूर्ति है। उसका ज्ञान ही सर्वोपरि है। किन्तु एक बात याद रखने योग्य है कि प्लेटो का दार्शनिक शासक कानून के अकुंश से मुक्त हुए भी अत्याचारी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। वह स्वेच्छाचारी शासक नहीं है। न तो वह आततायी है और न प्रजा उत्पीड़क वास्तव में प्रजा का पालन कर्ता है। इस प्रकार यह थोड़े से दार्शनिक शासकों का शासन होने से ज्ञानवानो का अल्पतन्त्र है। उपरोक्त के अध्ययन के बाद हम कह सकते है कि प्लेटो के आदर्श राज्य का अत्यावश्यक तत्व दार्शनिक राजा की अवधारणा है।

4. शासक वर्ग के लिए साम्यवादी सामाजिक व्यवस्था:- जब हम प्लेटो के साम्यावादी धारणा का अध्ययन करते है तो पाते है कि प्लेटो शासक वर्ग पूर्ण अभिभावक तथा सैनिक वर्ग के लिए साम्यवादी व्यवस्था को नितान्त आवश्यक मानते है प्लेटो के अनुसार शासक वर्ग के लिए न तो कोई कुटुम्ब होगा और न ही सम्पत्ति की व्यवस्था अच्छे पुरूषों का सम्बन्ध समाज की उच्च स्तर की स्त्रयों के साथ बने ऐसा राज्य का कर्तव्य है। उससे समाज अच्छे लोगो की उत्पत्ति होगी। साम्यावादी व्यवस्था भी प्लेटो में आदर्श राज्य की एक विशिष्ठता है।

2.7 शासन एक कला है

प्लेटो मानता है जिस प्रकार भवन निमार्ण या चित्र कला एक योग्यता वाली कला है उसी प्रकार शासन करने की भी एक रचनात्मक कला है। अतः शासन उन्हीं व्यक्तियों को करना चाहिए जो इस क्षेत्र में निपुणता रखते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्लेटो ने आदर्श राज्य में शासन का एकाधिकार शासन के कलाकार दार्शनिक राजा को सौपा

है। प्लेटो मानता है कि जिस प्रकार शिल्पी की कला की सामग्री सीमित होती है जबकि दार्शनिक कलाकार की निमार्ण सामग्री असीमित है सम्पूर्ण मानव और सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड दार्शनिक की कला की निर्माण सामग्री है। अतः प्लेटो ने सच ही कहा है कि शासन एक कला है। अतः शासन करने का उन्हीं लोगों को अधिकार है जिन्हे इस कला का पूर्ण ज्ञान है।

2.8 द लॉज: प्लेटो का दूसरा सबसे अच्छा राज्य

दॅ लॉज में प्लेटो ने दूसरे सबसे अच्छे राज्य की बात की शायद यह सरकार कि उनको दार्शनिक आदर्श राज्य हासिल नहीं किया जा सकता क्योंकि वह शिक्षा पर अत्यधिक आधारित था और कानून की उपेक्षा करता था। अर्थात द लॉज में उन्होंने राज्य के सम्बन्धों में कानून की स्थिति का विश्लेषण किया। कानून राज्य और प्रजा दोनों पर लागू था। प्लेटो कहता है कि नगर में 5040 परिवार होने थे और प्रत्येक परिवार के पास निश्चित भूमि का क्षेत्र होता था। सबसे लायक बच्चे को जमीन मिलती थी और अतिरिक्त बच्चों को उन परिवारों को देदिया जाता था जिनमें सदस्यों की संख्या कम थी। नगर की जनसंख्या बढ़ने पर नए स्थान पर जाने की योजना थी। प्रत्येक व्यक्ति 35 वर्ष की आयु तक विवाह कर लेता अन्यथा उसे वार्षिक दण्ड या टैक्स देना पड़ता।

द लॉज में आर्थिक असमानता के बुरे नतीजे दूर करने की बात कही गई है। धन को निरन्तर स्थान दिया गया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी व्यक्ति उत्तराधिकार में जितनी सम्पत्ति पाता था उससे केवल वो चार गुणा सम्पत्ति अपने पास रख सकता था। यदि कोई व्यापार या दूसरे तरीके से अधिक सम्पत्ति अर्जित करता था। तो उसे जनकोष में जमा कर दिया जाता था। सभी नागरिक अपनी अपनी सम्पत्ति एक जन संस्था में रजिस्टर करें

प्लेटो कहता है कि श्रम विभाजन में गुलाम खेती करते थे ऐसे व्यक्ति जो नागरिक नहीं थे व्यापार और नागरिक पूरी तरह राजनैतिक कार्य में लगे रहते थे। अर्थतन्त्र और राजकीय ठाँचे में मिश्रित संविधान लागू होता था। सैनिक सेवा के लायक लोग कानून के संरक्षकों के लिए मतदान करते थे।

द लॉज में भी प्लेटो ने शिक्षा की निर्णायक स्थिति पैदा की कानून के संरक्षक स्त्रियों की एक समिति चुनते जिनका काम था समझा बुझाकर जनसंख्या नियंत्रण के लिए विवाह कानूनों का नियमन करना। बच्चे नहीं होने पर दस साल बाद तलाक दिया जा सकता था। कुछ सदस्य बच्चों की देखभाल

करते थे। बच्चों की शिक्षा तीन वर्ष की आयु से शुरु होकर 6 वर्ष की आयु तक प्रशिक्षण दिया जाता था। छः वर्ष के बाद लड़के व लड़कियों को अलग कर दिया जाता था। लेकिन दोनों के शिक्षकों द्वारा राज्य की शिक्षा दी जाती थी। इन शिक्षकों का वेतन राज्य देता था।

प्लेटो ने संगीत और व्यायाम पर जोर दिया। साहित्य और कला पर कठोर पाबंदी, स्त्रियों के लिए समान शिक्षा और सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा पर जोर दिया। उन्होने धर्म पर अधिक ध्यान दिया, उसे राज्य के नियंत्रण में रखा और किसी भी प्रकार की निजी धार्मिक शिक्षा पर पाबंदी लगाई एवं पूजा पाठ राज्य द्वारा अधिकृत पादरी ही कर सकते थे। वे धर्म द्वारा अव्यवस्था फैलाने, महिलाओं और धर्मान्धों पर उनका प्रभाव खत्म करने और नैतिक व्यवहार के पक्ष में धर्म का प्रयोग करने के हक में थे। उन्होंने नास्तिकों के लिए मृत्यूदंण्ड की सलाह दी।

अभ्यास प्रश्न

1.प्लेटो ने दूसरे सबसे अच्छे राज्य की बात अपने किस पुस्तक में की ?

2.प्लेटो ने संगीत और व्यायाम पर जोर दिया। सत्य /असत्य

3.प्लेटो के अनुसार आदर्श राज्य में जनसंख्या कितनी हो ?

4.प्लेटों ने पुरूषों में विवाह के लिए आदर्श उम्र कितनी बताई है ?

5.प्लेटों ने स्त्रियों में विवाह के लिए आदर्श उम्र कितनी बताई है ?

6.प्लेटो के अनुसार आत्मा में कितने गुण होते हैं ?

7.प्लेटो के अनुसार आत्मा में तीन गुण के आधार पर राज्य में कितने वर्ग पाए जाते हैं ?

2.9 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त हमें तत्कालीन यूनानी राज्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है और यह जानने को भी मिलता है कि किस प्रकार से उस समय वहाँ की सामाजिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता व्याप्त थी। जिससे प्लेटो बहुत व्यथित था।इस स्थिति से अपने राज्य को उबारने के लिए एक जिम्मे दार चिन्तक के रूप में एक व्यापक सामाजिक और राजनीतिक ढांचा प्रस्तुत करता है। जिसमे वह आत्मा के तीन तत्वों के आधार पर समाज में तीन वर्गों की बात करता है जो अपनी आत्मा में पाए जाने वाले प्रधान तत्व के आधार पर कार्य करेंगे।इस प्रकार से उसने शासक ,सैनिक और व्यावसायिक वर्ग की बात की। जहा शासक के एक दार्शनिक राजा बनाने लिए एक व्यापक शिक्षा योजना प्रस्तुत की तो दूसरी तरफ वह किसी भी प्रकार के आकर्षण से मुक्त हो इसलि साम्यवादी सिद्धांत भी दिया है जिस्मने राजा के पास न तो अपनी कोई संपत्ति होगी और न ही कोई परिवार जिसके कारण वह विना किसी आकर्षण के अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन निर्लिप्त भाव से करेगा। परन्तु जबा वह इस प्रकार के राज्य की स्थापना में असफल रहा तब उसने द्वितीय आदर्श राज्य अर्थात क़ानून पर आधारित राज्य का सिद्धांत अपनी पुस्तक "द लाज ' में दिया है।

2.10 शब्दावली

सर्वसत्तावादी:- वह सिद्धान्त जो राज्य की सारी शक्ति को एक ही जगह केन्द्रित करने, और लोगों के सम्पूर्ण जीवन पर पूर्ण या लगभग पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने का समर्थन करता है।

राजनीतिक समाजीकरण:- वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने समाज में राजनीतिक जीवन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण बनाता है और जिसके माध्यम से समाज अपने राजनीतिक मानकों और आदर्शों, मान्यताओं और विश्वासों को एक पीढ़ी तक पहुँचाता है।

विधिका शासन:- विधि का शासन ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शासन की शक्ति का प्रयोग केवल कानून में निहित प्रक्रियाओं, सिद्धान्तों और प्रतिबन्धों के अन्तर्गत ही होना चाहिए व अन्य किसी अधार पर नहीं।

श्रम विभाजन:- आर्थिक जीवन के अन्तर्गत वह व्यवस्था जिसमें भिन्न -भिन्न व्यक्ति अपनी -अपनी क्षमताओं के अनुसार भिन्न2 कार्यो के लिए उत्तरदायी बना दिए जाते है।

शासक वर्ग:- उन लोगों का समूह जो पूरे समाज पर अपने प्रभुत्व एवं शक्ति का प्रयोग करते है।

सामाजिक संविदा:- इसके अनुसार मनुष्यों ने आपस में अनुबंध या समझौता करके राज्य का निर्माण किया है ताकि वह उन्हें अराजकता और नियम हीनता की स्थिति से उबार कर समुचित संरक्षण और व्यवस्थित जीवन प्रदान कर सके।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.दॅ लॉज, 2.सत्य, 3.5040, 4. 25 से 55, 5.20से 40, 6.तीन गुण, 7.तीन ,

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ.बी.एल. फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा।

2. डॉ. जे.सी. जौहरी, राजनीति विज्ञान, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।

3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग प्राचीन एवं मध्यकालीन)

के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ।

2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जीवन मेहता, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, 1985 साहित्य भवन आगरा।

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्लेटो के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?

2. प्रजातन्त्र के विषय में प्लेटो के विचारों की विवेचना कीजिए?

3. प्लेटो के आदर्श राज्य के मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ?

4. प्लेटो के साम्यवाद की कल्पना की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ? प्लेटो के साम्यवाद की तुलना आधुनिक साम्यवाद से कीजिए ?

5. प्लेटो की शिक्षा योजना का वर्णन कीजिए और बताइये कि वह किस प्रकार उसके मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है ?

इकाई 3 : अरस्तू

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अरस्तू के विचारों का वैज्ञानिक स्वरूप
3.4 अरस्तू का राज्य सिद्धान्त
3.4.1 राज्यः उत्पत्ति, स्वरूप तथा उद्देश्य
3.5 दासता सम्बन्धी अरस्तू के विचार
3.6 नागरिकता सम्बन्धी विचार
3.7 संविधान के सम्बन्ध में अरस्तू के विचार
3.8 श्रेष्ठ व्यावहारिक संविधान
3.9 अरस्तू के कुटुम्ब तथा सम्पत्ति सम्बन्धी विचार
3.10 अरस्तू के विधि सम्बन्धी विचार
3.11 अरस्तू की न्याय सम्बन्धी धारणा
3.12 अरस्तू के क्रान्ति सम्बन्धी विचार
3.13 अरस्तू का आदर्श राज्य
3.14 पॉलिटी (वैद्यानिक लोकतन्त्र)
3.15 सारांश
3.16 शब्दावली
3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई २ में हमने यह अध्ययन किया है किया है कि किस प्रकार से उस समय की सामाजिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता से प्लेटो बहुत व्यथित था ।इस स्थिति से अपने राज्य को उबारने के लिए एक जिम्मेदार चिन्तक के रूप में एक व्यापक सामाजिक और राजनीतिक ढांचा प्रस्तुत करता है। जिसमे वह आत्मा के तीन तत्वों के आधार पर समाज में तीन वर्गों की बात करता है जो अपनी आत्मा में पाए जाने वाले प्रधान तत्व के आधार पर कार्य करेंगे ।इस प्रकार से उसने शासक ,सैनिक और व्यावसायिक वर्ग की बात की। जहा शासक के एक दार्शनिक राजा बनाने लिए एक व्यापक शिक्षा योजना प्रस्तुत की तो दूसरी तरफ वह किसी भी प्रकार के आकर्षण से मुक्त हो इसलि साम्यवादी सिद्धांत भी दिया है जिस्मने राजा के पास न तो अपनी कोई संपत्ति होगी और न ही कोई परिवार जिसके कारण वह विना किसी आकर्षण के अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन निर्लिप्त भाव से करेगा। परन्तु जब वह इस प्रकार के राज्य की स्थापना में असफल रहा तब उसने द्वितीय आदर्श राज्य अर्थात क़ानून पर आधारित राज्य का सिद्धांत अपनी पुस्तक "द लाज ' में दिया है।

इस इकाई ३ में हम गुरू शिष्य की महान परम्परा की एके महत्वपूर्ण कड़ी अरस्तू के के सामाजिक और राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेंगे और इसमें यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार से वह सर्वप्रथम तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग कर शासन व्यवस्था का अध्ययन कर ,अध्ययन की वैज्ञानिक परम्परा की शुरूआत सामाजिक विज्ञानों में करता है ।इसके साथ –साथ इस इकाई में हम राज्यकी उत्पत्ति, स्वरूप, दासता और नागरिकता, विधि और न्याय सम्बन्धी विचारों के अध्ययन करने के साथ , क्रान्ति सम्बन्धी विचारों के अध्ययन और आदर्श राज्य के सम्बन्ध में भी अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम अरस्तू के अनुसार --

1. राज्य की उत्पत्ति, स्वरूप को जान सकेंगे।
2. अरस्तू के दासता और नागरिकता सम्बन्धी विचार को जान सकेंगे।
3. संविधान के सम्बन्ध में विचार को जान सकेंगे।
4. कुटुम्ब तथा सम्पत्ति सम्बन्धी विचार के बारे में जान सकेंगे।
5. विधि और न्याय सम्बन्धी विचार के बारे में जान सकेंगे।
6. क्रान्ति सम्बन्धी विचार के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
7. आदर्श राज्य के बारे जान सकेंगे।

3.3 अरस्तू के विचारों का वैज्ञानिक स्वरूप

अरस्तू के माता पिता प्रकृति की वैज्ञानिक खोज से प्रभावित थे। अरस्तू के पिता एक चिकित्सक थे उनकी कार्यशैली में वैज्ञानिक विचारों के बीच विद्यमान थे। अतः अरस्तू को पैतृक विरासत में वैज्ञानिक स्वभाव प्राप्त हुआ। ऐसे वैज्ञानिक स्वभाव की दृष्टि से उसने जीवन शास्त्र तथा राजनैतिक का विज्ञानिक पद्धति अपना कर अध्ययन किया। अरस्तू के विचारों का जब हम अध्ययन करते है तो पाते है कि उसने राज्य की बुराईयों के कारणों को ठूँठना, उन्हें दूर करने के उपयों का सुझाव देना, तथ्यों का संग्रह एवं उनका वर्गीकरण और उनकी तुलना करना तथा उन तथ्यों के आधार पर अपने निष्कर्षों को स्थापित करना, अनेक ऐसे उदाहरण है जो यह सिद्ध करते है कि अरस्तू की अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक थी। अतः अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अरस्तू की अध्ययन-पद्धति अनुभवमूलक थी जो उसे वंशागत प्रभाव से मिली थी।

अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अरस्तू ने यूनानी राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया था। अरस्तू ने यूनान के 158 राज्यों के संविधानों की आगमनात्मक पद्धति से तथ्यों को एकत्र कर उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। और संविधानों की तुलना करके उनके गुण एवं दोषों का विवेचन किया था। इस प्रकार हम कह सकते है कि अरस्तू की अध्ययन पद्धति एक वैज्ञानिक थी।

3.4 अरस्तू का राज्य सिद्धान्त

अरस्तू अपने विचारों के आधार पर यह प्रतिपादित करता है कि राज्य एक ऐसा समुदाय या संघ है जिसका अपना एक विकास क्रम होता है परिवार मिलकर ग्रामों का निर्माण करते है और जब ग्राम के समुदाय बनते है तो राज्य की उत्पत्ति होती है। राज्य ''समरूप व्यक्तियों के श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिए संस्था है।'' अरस्तू के अनुसार परिवार मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की और ग्राम उसकी आर्थिक व धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन है।

3.4.1 राज्यः उत्पत्ति, स्वरूप तथा उद्देश्य

1. राज्य एवं नैसर्गिक मानवीय संस्था है- अरस्तू सोफिस्ट विचारकों के विपरित राज्य को एक नैसर्गिक संस्था मानता है। अरस्तू कहता है प्रकृति ने मनुष्य को विवके एवं संवाद की शक्ति प्रदान की है। विवेक और संवाद के कारण मनुष्य, पशु-पक्षियों से भिन्न है इससे इतर वह समुदायों का निर्माण करता है। इस प्रकार कुटुम्ब प्राणियों की प्रथम नैसर्गिक संस्था है। कुटुम्ब से ग्राम और ग्रामों से राज्य बनता है। इस प्रकार राज्य की आधारभूत संस्थाऐं नैसर्गिक है, अतः उससे निर्भित राज्य भी एक नैसर्गिक संस्था है। राज्य की नैसर्गिकता का प्रमाण यह है कि उसकी उत्पत्ति जीवन के लिए हुई तथा सुखी जीवन के लिए इसका अस्तित्व अभी भी बना हुआ है। हम यह भी मान सकते है कि राज्य इसलिए भी एक नैसर्गिक संस्था है क्योंकि वह मनुष्य स्वभाव अन्तर्निहित है।

राज्य समूहों का समूह हैः- अरस्तू की मान्यता है राज्य की दूसरी विशेषता है कि यह समुदायों का समुदाय है। अरस्तू कहता है कि राज्य एक विकसित संस्था है। वह कहता है कि नर-नारी से कुटुम्ब, कुटुम्ब से ग्राम तथा ग्रामों से राज्य का विकास होता है। राज्य विविध संस्थाओं से निर्मित एक संस्था है। यह परिवार और ग्राम जैसे समुदाय से मिलकर बना हुआ एक समुदाय है। अरस्तू के लिए राज्य का स्वरूप उसकी बहुलता से है। इस रूप में अपने विकसित रूप में राज्य समुदायों का एक समुदाय है।

राज्य का नैतिक उद्देश्य

अरस्तू के अनुसार राज्य का राज्य का मूल उद्देश्य व्यक्ति के जीवन की नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है अतः इसका नैतिक उद्देश्य है। ''यद्यपि राज्य का विकास जीवन की भौतिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ है, किन्तु उसका निरन्तर अस्तित्व इसलिए बना है जिससे कि राज्य में मनुष्य के 'श्रेष्ठ जीवन' की आवश्यकताओं की पूर्ति होते रहे।'' अरस्तू कहता है कि राज्य मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति की पूर्ति करता है, विशेषतः उसकी प्रकृति के सर्वोच्च पक्ष है। राज्य एक ऐसी संस्था है जिसके पास वे सारे साधन उपलब्ध है जिससे कि मनुष्य का सम्पूर्ण एवं स्वतंत्र नैतिक विकास होता है। राज्य की अस्तित्व मनुष्य के श्रेष्ठ जीवन के लिए होता है। इस प्रकार अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि राज्य का उद्देश्य नैतिक जीवन की आवश्यकता की पूर्ति करना है।

व्यक्ति की अपेक्षा राज्य की अग्रताः- राज्य के स्वरूप के बारे में अरस्तू कहता है कि ''राज्य व्यक्ति की पूर्ववर्ति संस्था है। इस धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए वह लिखता है कि राज्य एक सम्पूर्णता है, व्यक्ति जिसका एक अंग मात्र है। इसका अस्तित्व ''व्यक्ति से अग्र (पूर्व) है।'' अरस्तू राज्य को सावयवी संस्था मानता है और व्यक्ति इस शरीर का एक अंग मात्र है। यदि सम्पूर्ण शरीर नहीं है तो असके अगं हाथ अथवा पैर का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होगा। यदि हम तार्किक दृष्टि से विचार करे तो अंग सम्पूर्ण की पूर्व कल्पना करता है। पहले सम्पूर्ण की कल्पना होगी तभी अंग की कल्पना की जा सकती है। अतः राज्य व्यक्ति पूर्ववर्ती है।

राज्य आत्मनिर्भर संस्था हैः- अरस्तू की मान्यता है कि ''राज्य एक आत्म निर्भर संस्था है।'' वह राज्य को आत्म-पर्याप्ति की सर्वोच्च संस्था मानता है। अतः यह परिपूर्ण समाज है। उसका मानना है कि राज्य आर्थिक नैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा सभी दृष्टि से स्वतन्त्र संस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी पूर्वता को प्राप्त करता है। वह राज्य की क्रियाओं का भागीदार बनकर उस आत्म-निर्भरता का भागीदार बनता है। इस प्रकार हम कह सकते है यही राज्य का वास्तविक प्रायोजन होता है। मनुष्य के जीवन को कोई भी भौतिक तथा नैतिक आवश्यकता नहीं जिसकी कि पूर्ति राज्य के द्वारा तथा राज्य के अन्तर्गत न की जा सकें। अतः अरस्तू को राज्य को इस प्रकार परिभाषित किया है कि यह कुटुम्बों और ग्रामों को समुदाय है जिसका अस्तित्व ''सुखी और आत्म-निर्भर जीवन के लिए है।

3.5 दासता सम्बन्धी अरस्तू के विचार

इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनान में दास-प्रथा का प्रचलन था। और अरस्तू ने दासता सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करता है। अरस्तू परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता और सन्तान तथा स्वामी और दास मानता है। अरस्तू दास को परिवार का अभिन्न अंग मानता है। दास कौन है? इस संबंध में अरस्तू बताता है कि जो व्यक्ति प्रकृति से अपना नहीं अपितु दूसरे का है लेकिन फिर भी मनुष्य है, वह प्रकृति से दास है और हम उसे जो कि मनुष्य तो है फिर भी दूसरे के कब्जे में है, उसे हम दूसरे के कब्जे की वस्तु कहेगें और जो वस्तु कब्जे की है उसकी परिभाषा यह है कि वह कार्य साधन है, ऐसा कार्य का साधन जो कब्जाधारी से भिन्न है।'' दास कौन है? को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

1.जो व्यक्ति अपनी प्रकृति के कारण स्वयं का नहीं अपितु दूसरे का है, फिर भी मनुष्य है, वह स्वभावतः दास है।

2.दास का गुण बताते हुए वह कहता है कि वह व्यक्ति जो मनुष्य होते हुए भी सम्पत्ति की एक वस्तु है और जो दूसरे के कब्जे में रहता है, वह दास है।

3.तीसरा जो दूसरे के कब्जे की वस्तु है जो कार्य का साधन है, और जिसे वस्तु के कब्जाधारी से पृथक किया जा सके, वह दास है।

दास प्रथा के समर्थन में तर्क ।अरस्तू ने दासता के ओचित्य में विभिन्न प्रकार के तर्क है।

1.दासता नैसर्गिक है

अरस्तू कहता है कि दासता नैसर्गिक है। प्रकृति ने ही मनुष्यों को इस प्रकार बनाया है कि उसमें दो वर्ग का निर्माण होता है स्वामी और दास। अरस्तू बताता है कि जा व्यक्ति शासन चलाने की योग्यता रखते है और आदेश देने वाले होते है उन्हें स्वामी कहते है। और जो उन आदेशों का पालन करते है उन्हें दास कहते है। अरस्तू दासता को इस नैसर्गिक नियम के आधार पर सही मानता है। क्योंकि इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति हमेशा निकृष्ट व्यक्ति पर शासन करते है। दासता को नैसर्गिक बताने के लिए अरस्तू प्रकृति के सर्वव्यापी सिद्धान्त लेता है।

2- दासता स्वामी और दास दोनों के लिए उपयोगी है

अरस्तू मानता है कि दासता स्वामी और दास दोनों के लिए हितकर है। अरस्तू की मान्यता है कि स्वामी का महत्वपूर्ण कार्य राजनिती है। नगर के राजकार्यों में भाग लेकर नैतिक उत्थान में कार्य करना है और कार्य के लिए स्वामी का अवकाश चाहिए होता है। और स्वामी यह कार्य अवकाश तभी ले सकता है जबकि दास उसके घर के कार्यों के लिए श्रम करें। उसी अवकाश के समय में स्वामी नागरिक जीवन का भागीदार बनकर अपने बौद्धिक तथा नैतिक जीवन की उपलब्धि के लिए करता है। और दास भी स्वामी साहचर्य में रहकर सदगुणों को सीखता है। अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, स्वामी के सदगुण की छत्रछाया में दास लाभ को प्राप्त करता है। इस प्रकार दासता स्वामी और दास दोनो के लिए लाभकारी सिद्ध होती है।

3.दासता प्राकृतिक नियमानुकूल है

दासता की प्रामाणिकता की पुष्टि अरस्तू ने प्रकृति के शासन 'शामित नियम' के आधार पर भी की है। वह मानता है कि प्रकृति में हमेशा 'शासक' तथा 'शसित' पदार्थ होते है। उच्च का निम्न पर हमेशा शासन रहता है। इस प्रकार सामाजिक जगत में स्वामी का दास पर शासन प्रकृति नियमाकूल है।

दास कुटुम्ब की सम्पत्ति है ।अरस्तू की मान्यता है कि सम्पत्ति दो प्रकार की होती हैं-

(1) सजीव सम्पत्ति। (2) निर्जीव सम्पत्ति। घर की वस्तुऐं कुटुम्ब की निर्जीव सम्पत्ति है किन्तु दास कुटुम्ब की सजीव सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति के ये दोनों ही प्रकार जीवन के लिए आवश्यक है । अतः दास कुटुम्ब की सजीव सम्पत्ति के रूप में पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है।

दासता के प्रकारः- अरस्तू दासता के दो प्रकार बताता है- नैसर्गिक दासता तथा कानूनी दासता। वे व्यक्ति जो प्रकृति से ही निर्बुद्धि तथा शारीरिक शक्ति प्रधान है, वे नैसर्गिक दास है। वे व्यक्ति जो युद्ध में बन्दी बना लिये जाता है और जिन्हें दास बना लिया जाता है, यह कानूनी दासता है। इस प्रकार प्रकृति और शक्ति द्वारा दास बनाये जाते है। कानूनी दासता के सम्बन्ध में अरस्तू के विचार है कि यूनानियों को विजित दास नहीं बनाया जाए। केवल बर्बर जाति के लोगों को ही कानूनी दास बनाया जाए।

3.6 नागरिकता सम्बन्धी विचार

अरस्तू ने प्लेटो के विपरित नागरिकता को अपने राजनीतिक विश्लेषण का केन्द्र बनाया। राजनैतिक पद हासिल करना एक स्वाभाविक रूझान था। संवैधानिक सरकार के कारण लोग बिना गड़बड़ी के राजनैतिक पद हासिल कर सकते थे।

अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचारों की सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि नागरिकता निवास स्थान से यह तय नहीं होती थी क्योंकि स्थानीय बाहरी और दास नागरिको के साथ रहते हुए भी नागरिक नहीं थे। न ही नागरिकता सामाजिक अधिकारों में हिस्सेदारी से परिभाषित होती थी। नागरिक वह था जिसे विचार विमर्श या न्यायिक पदों में हिस्सेदारी हासिल थी और जो अपने राजनैतिक अधिकारों का प्रभावशाली प्रयोग कर सकता था। नागरिक को संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त थे।

अरस्तू की मान्यता थी कि बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां नागरिक नहीं हो सकते थे क्योंकि वे क्रमशः अपरिपक्व कमजोर और तर्कबुद्धि विहिन थे। प्लेटो के सामान अरस्तू समझते थे कि नागरिकता एक विशेषाधिकार है और उत्तराधिकार में पाया जाता है। नागरिकों को छोटे और सुगठित पोलिस में रहना चाहिए। प्लेटो का पाँच हजार नागरिकों का संगठन काफी बड़ा था क्योंकि उसके लिए असीमित जगह की आवश्यकता थी। छोटे समुदाय में सभी नागरिक एक-दूसरे को जानते, विवादों का निपटारा करते और क्षमता के अनुसार उचित पदों को बटवारा कर सकते थे।

अरस्तू का अच्छा नागरिक संविधान का पालनकर्ता है, जिम्मेदारी वहन करने लायक उसके पास समय होता है, विविध दिलचस्पियाँ होती है और निःस्वार्थ सहयोगी जीवन के गुण होते है। वे नागरिक को ''जनमामलों में हिस्सेदारी की मित्रता मानते है। यह अधिकार निश्चित वर्ग के बाहर दूसरों को नहीं मिल सकता था। वास्तव में यूनानी नागरिकता अधिकारों पर उतनी आधारित नहीं थी जितनी कि जिम्मेदारियों पर।

3.7 संविधान के सम्बन्ध में अरस्तू के विचार

अरस्तू की संविधान की धारणा आधुनिक संविधानों की धारणाओं से अधिक व्यापक है। अरस्तू 'संविधान' को राज्य का निर्धारक तत्व मानता है। संविधान का स्वरूप ही है जो राज्य के स्वरूप की पहचान कराता है। संविधान को परिभाषित करते हुए अरस्तू लिखता है कि ''संविधान सामान्यतः राज्य में पदो के संगठन की एक व्यवस्था है, विशेषतः ऐसे पद की सभी मुद्रों में सर्वोच्च हैं।''

संविधान का वर्गीकरणः- अरस्तू ने संविधान के दो वर्गीकरण को मान्यता दी है। (1) शासकों की संख्या जिनके हाथो में शासन की सत्ता रहती है, (2) शासन का उद्देश्य क्या है? पहले आधार पर संविधान का वर्गीकरण करते हुए अरस्तू बताता है कि शासन की सत्ता एक व्यक्ति, थोड़े से व्यक्ति के शासन को राजतंत्र ;डवदंतमीलद्ध थोड़े व्यक्तियों के शासन को 'अल्पतन्त्र' ;।तपेजवबंतंबलद्ध तथा अधिक लोगों के शासन को 'पालिटी' च्ंसपजल कहता है। संविधान के इन तीनों प्रकारों को आधार 'शासकों की संस्था' है।

किन्तु अरस्तू इस आधार को आकास्मिक मानता है। वर्गीकरण का वास्तविक आधार शासकों को उद्देश्य क्या है? को मानता है। शासन यदि भले ही एक व्यक्ति थोड़ से व्यक्ति अथवा अधिक व्यक्तियों का हो, सार्वजनिक हित से प्ररित होकर कार्यशील है, अरस्तू उसे 'संविधान' मानता है। निजी स्वार्थ से प्ररित होकर किया गया शासन कभी

ठीक नहीं हो सकता। अरस्तू ऐसे संविधान को विकृत संविधान की संज्ञा देता है। तद्नुसार सामान्य हित से प्ररित एक व्यक्ति के शासन को अरस्तू 'राजतन्त्र' थोड़े से व्यक्तियों के शासन को 'अल्पतन्त्र' तथा अधिक लोगों के शासन को पॉलिटी अर्थात 'संयत लोकतन्त्र' बताता है। दूसरी कोटी 'विकृत संविधानों की है।' जब शासक 'निजी हित' से प्रेरित होकर शासन करते है तब तक एक व्यक्ति विकृत शासन निरंकुशतन्त्र, थोड़े से व्यक्तियों का विकृत शासन 'धनिकतन्त्र' और अधिक लोगों का अधिक निर्धन लोगों के हितार्थ विकृत शासन लोकतन्त्र कहलाता है। संख्या के आधार पर तथ उद्देश्य के आधार पर किये गये संविधानों के वर्गीकरण को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

1- शासकों की संख्या 2- उद्देश्य के अनुसार

शासन करने वाले व्यक्तियों की संख्या	स्वाभाविक रूप ('सार्वजनिक हित के लिए)	विकृत रूप (निजी स्वार्थ के लिए)
एक व्यक्ति का शासन	राजतन्त्र (Monarchy)	निरंकुशतंत्र (Tyranny)
कुछ व्यक्तियों का शासन	कुलीनतंत्र (Aristocracy)	धनिकतंत्र (Oligarchy)
बहुसंख्यक व्यक्तियों का शासन	संयत प्रजातंत्र / बहुतंत्र (Polity)	प्रजातंत्र (Democracy)

शुद्ध शासन - उपयुक्त शारणी से स्पष्ट होता है कि ''सार्वजनिक हित'' में किये जाने वाला शासन 'सही' अथवा शुद्ध है। यह शासन जब एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है उसे अरस्तू ''राजतन्त्र'' कहता है। कुछ व्यतियों द्वारा किया गया 'शुद्ध' शासन अल्पतन्त्र है तथा अधिक संख्यकों द्वारा सार्वजनिक हितार्थ किया गया शासन पॉलिटी है। इस आधार पर शुद्ध संविधान के ये ती प्रकार है- राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र, तथा पॉलिटी।

विकृत शासन - उपयुक्त तीनों प्रकार के शासन निजी स्वार्थों की पूर्ति के समय-समय पर विकृत रूप धारण कर लेते है। इस प्रकार राजतन्त्र का विकृत रूप निरंकुशतन्त्र, कुलीनतन्त्र का विकृत रूप धनिकतन्त्र तथा सयंत लोकतन्त्र (पॉलिटी) का विकृत रूप भीड़त का अर्थात लोकतन्त्र हो जाता है। निष्कर्ष रूप से यह कह जा सकता है कि अरस्तू ने कुल 6 प्रकार के शासनों का वर्णन किया है जिनमें अपने उद्देश्य के अनुसार तीन शुद्ध तथा तीन विकृत प्रकार हैं।

3.8 श्रेष्ठ व्यावहारिक संविधान

अरस्तू संविधानों को 6 प्रकार में वर्गीकृत करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से श्रेष्ठ संविधान खोजता है। मनुष्य के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए अधिकांश राज्यों के लिए व्यावहारिक संविधान की खोज करना अरस्तू के चितंन का आधार है। अरस्तू के अनुसार ''राजनीतिक समाज का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप वह है जिसमें सत्ता का निवास मध्यवर्ग में हो। ''अरस्तू की मान्यता है कि श्रेष्ठता मध्यमान में पायी जाती है लेकिन इसके साथ शर्त है कि समाज में मध्यवर्ग काफी बड़ा है। अतः न तो धनी लोगों का शासन ही उचित है और न ही अत्यधिक निर्धन वर्ग के लोगों का। श्रेयस्कर राज्य इन दोनों के मध्य का है जिसे अरस्तू पॉलिटी के नाम से सम्बोधित करता है। पॉलिटी का शासन मध्यवर्ग पर आधारित है। उसके विचारानुसार 'पॉलिटी' का शासन संयत तथा मध्यममार्गी है। अतः यह व्यावहारिक भी है और श्रेष्ठ भी। संयत लोकतन्त्र को अरस्तू वर्गतन्त्र और भीड़तन्त्र का मध्यमान भी मानता हैं ऐसे गुणों से युक्त मध्यवर्ग पर आधारित 'पॉलिटी' को अरस्तू सामान्य रूप से व्यावहारिक श्रेष्ठ संविधान स्वीकार है।

3.9 अरस्तू के कुटुम्ब तथा सम्पत्ति सम्बन्धी विचार

अरस्तू मानता है कि कुटुम्ब एवं सम्पत्ति को राज्य की एकता के नाम पर समाप्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि प्लेटों ने अपनी साम्यवाद की योजना में किया है। अरस्तू प्लेटों के कुटुम्ब और सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों की आलोचना करते हुए कहता है कि कुटुम्ब तथा निजी सम्पत्ति व्यक्ति के लिए परम आवश्यक है। अरस्तू के कुटुम्ब और सम्पत्ति विणयक विचारों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उसका वैचारिक दृष्टिकोण व्यक्तिवादी एवं मानवीय आवश्यकताओं को समझने वाला यथार्थवादी दृष्टिकोण है।

परिवार सम्बन्धी विचारः- अरस्तू परिवार को मनुष्य की नैसर्गिक संस्था मानता है जिसके द्वारा उसके जीवन की नितान्त प्रारम्भिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है। परिवार में पति, पत्नी सन्तान तथा दास सम्मिलित है। परिवार का चौथा आवश्यक तत्व 'अर्जन' है। इन तत्वों के अभाव में परिवार की कल्पना की जा सकती है। यद्यपि कुटुम्ब व्यक्ति के भौतिक जीवन की आधारशिला है तथापि उसका प्रबन्ध एक नैतिक कला है तथा जिसका उद्देश्य परिवार के सदस्यों की नैतिक श्रेष्ठता को प्राप्त करना है। अरस्तू की मान्यता है कि यदि परिवार का साम्यवादीकरण करके उसे छिन्न-भिन्न किया जाता है तो उसके सदस्यों की नैतिक श्रेष्ठता' की पहली पाठशाला ही नष्ट हो जायेगी। इस आधार पर अरस्तू प्लेटो की आलोचना करता है कि उसके साम्यवाद की योजना परिवार को नष्ट करके व्यक्ति के जीवन की प्राथमिक नैतिक संस्था तथा उसका नैतिकरण करने वाली प्रथम संस्था को नष्ट कर देती हैं।

सम्पत्ति के साम्यवाद के विरूद्ध अरस्तू के विचारः- अरस्तू प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद का योजना का भी आलोचक है। अरस्तू सम्पत्ति के सार्वजनिक स्वामित्व व्यवस्था ही उपयुक्त है जिसमें सम्पत्ति पर व्यक्ति का निजी स्वामित्व होता है। अरस्तू की समपत्ति सम्बन्धी धारणा है कि वैयक्तिक रूप से उस पर ''स्वामित्व हो किन्तु उसका उपयोग सामूहिक हित'' के लिए हो। अरस्तू का मानना है कि जब सम्पत्ति पर निजी स्वामित्त होता है तब कलहों को आधार पर क्रम हो जाते हैं सम्पत्ति के कारण व्यक्ति में दानशीलता, मैत्री, आतिथ्य सेवा अथवा उदारता जैसे नैतिक गुणों का विकास होता है। जिसके पास निजी सम्पत्ति है वह व्यक्ति राज्य के साथ अपने हित को एक मानता है तथा सम्पत्तिहीन व्यक्ति राज्य के प्रति एकता के भाव नहीं रख सकता। निजी सम्पत्ति की भावना व्यक्तियों को अधिक उद्यम करने की प्रेरणा देती है जिसमें मनुष्य बालू रेत को भी सोने में बदल देता है। सम्पत्ति के सम्बन्ध में अरस्तू सबसे प्रबल तर्क यह है कि सम्पत्ति की संस्था युगों से चली आ रही हैं अतः युगों के संचित ज्ञान को ठोकर मारकर उसका तिरस्कार करना बड़ी भूल है। इस प्रकार विविध तर्क देकर अरस्तू सम्पत्ति के निजी स्वामित्व का समर्थन करता है।

3.10 अरस्तू के विधि सम्बन्धी विचार

अरस्तू के अनुसार राज्य में विधि की सम्प्रभुता होनी चाहिए। उसकी मान्यता है कि निजी शासन, चाहे वह एक व्यक्ति को हो अथवा अनेक व्यक्तियों का, विधि के शासन समान श्रेष्ठ नहीं हो सकता। कानून का शासन पूर्व-निश्चित लिखित नियमों द्वारा संचालित होता हैं कानून के शासन में मनमानी तत्व का अभाव रहता है। अरस्तू कानून को ''वासना से अप्रभावित विवके'' मानता है और इस अधार पर यह प्रतिपादित करता है कि ''विधि का शासन किसी व्यक्ति के शासन की अपेक्षा श्रेयस्कर है।'' अतः अरस्तू का निष्कर्ष है कि कानून में ऐसा 'अवैयक्तिक तत्व' है जो किसी श्रेष्ठतम व्यक्ति के शासन में भी संभव है। विधि के शासन की अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हुए अरस्तू बताता है कि कानून को संविधान के अनुकूल होना चाहिए। तभी कानून न्यायापूर्ण होता है कि अरस्तू सतत रूप से 'विधि शासन' की दृढ़ समर्थक है। अरस्तू के शब्दों में ''विधि का शासन किसी एक व्यक्ति के शासन की अपेक्षा वाछंनीय

है, भले ही व्यक्तियों का शासन उचित लगता हो तब भी व्यक्तियों को विधि का संरक्षक अथवा विधियों का सेवक ही बनना चाहिए।''

अरस्तू विधिको विवके का ही दूसरा रूप मानता है। कानून स्वार्थों से युक्त विवेक की वाणी है। क्योंकि कानून विवेक-सम्मत होता है, अतः राज्य में विधि का शासन होना चाहिएं अरस्तू क विधि की सर्वोच्चता सम्बन्धी विचार प्लेटो के ब्लॉज में प्रतिपादित विचारों के समान ही है, किन्तु कानून की सम्प्रभुता को स्वीकार कर अरस्तू ने प्लेटो के रिपब्लिक की उस धारणा को स्पष्ठ रूप से खंडित किया है कि राज्य में ज्ञान का अथवा दार्शनिक राजा का शासन सर्वश्रेष्ठ होता हैं अरस्तू मूर्त व्यक्ति के शासन की अपेक्षा अमूर्त विधि के शासन

3.11अरस्तू की न्याय सम्बन्धी धारणा

अरस्तू की न्याय की धारणा में सामाजिक नैतिकता तथा कानूनी दायित्व के तत्वों का समावेशन है। न्याय व्याख्या करते हुए अरस्तू लिखता है कि 'न्याय सदगुण का व्यावहारिक प्रयोग है।'' इसका अर्थ यह है कि अरस्तू की दृष्टि में 'सदगुण और न्याय' पर्यायवाची है। उसके अनुसार जब सदगुण व्यक्ति के व्यवहार में प्रकट होता है, यही न्याय है।

न्याय के दो प्रकार-सामान्य और विशिष्ट न्यायः- अरस्तू ने न्याय के दो प्रकार बताये है- 'सामान्य न्याय' तथा 'विशिष्ट न्याय'। सामान्य न्याय से तात्पर्य सम्पूर्ण श्रेष्ठता से है। इस सम्पूर्ण श्रेष्ठता का प्रयोग व्यक्ति अपने पड़ोसी के साथ व्यवहार में करता है। पड़ौसियों के प्रति नैतिक व्यवहार तथा नैतिक सदगुण का आचरण ही सामान्य न्याय है। 'विशिष्ठ न्याय' सामान्य न्याय का ही अंश है। इसका सम्बन्ध श्रेष्ठता के विशिष्ठ पक्ष से है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समभाव से अथवा समता के साथ व्यवहार करता है।

''अरस्तू विशिष्ठ न्याय के कभी दो रूप मानता है। वितरणात्मक न्याय तथा परिशोधनात्मक न्याय।'' अरस्तू की न्याय की धारणा का वर्गीकरण इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

न्याय

सामान्य न्याय विशिष्ठ न्याय

वितरणात्मक न्याय परिशोधनात्मक न्याय

वितरणात्मक न्याय

अरस्तू के राजनीतिक सिद्धान्त में वितरणात्मक न्याय की धारणा का विशेष महत्व है। वितरणात्मक न्याय वह व्यवस्था है जिसके द्वारा राज्य अपने सदस्यों के बीच सरकार के पदों सम्मानों तथा अन्य दूसरे प्रकारों के लाभों को वितरित करता है। वितरणात्मक न्याय पदों के वितरण का वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा व्यक्ति को उसके द्वारा राज्य को दिये गये योगदान के अनुपाता में उसे पुरस्कार दिया जाता है, अधिक योगदान के अनुपात में अधिक पुरस्कार तथा कम योगदान के अनुपात में कम पुरस्कार। अरस्तू की धारणा है कि वितरणात्मक न्याय राज्य में असमानता को बढ़ावा नहीं देता अपितु जो योग्य है उन्हें अयोग्यों से असमान स्वीकार कर उनकी योग्यता के अनुपातों में पद तथा प्रदन्त करता है। अरस्तू की समानता की यही धारणा है कि राज्य के सभी संवैधानिक अधिकारधारी अपनी योग्यतानुसार ही राज्य के लाभों को प्राप्त कर सकें। अतः योग्यता के अनुपात में राज्य के पदों का लोगों में वितरण करना ही अरस्तू का 'वितरणात्मक न्याय' का सिद्धान्त है। वर्कर के अनुसार , ''विशिष्ठ न्याय (वितरणात्मक न्याय)

समान व्यक्तियों के समुदाय का ऐसा गुण है जो एक ओर अपने सदस्यों को उनके योगदान के अनुसार पद एवं अन्य पुरस्कार वितरित करता है।''

विशिष्ट न्याय का दूसरा पक्ष सुधारात्मक न्याय है। सुधारात्मक न्याय राज्य की उस व्यवस्था को कहते है। जिसके द्वारा व्यक्तियों में पारस्पारिक लेन-देन के सम्बन्धों का नियमन किया जाता है। सुधारात्मक न्याय का दायरा 'राज्य और व्यक्ति' नहीं है, यह 'व्यक्ति और व्यक्ति' के बीच का दायरा है।

3.12 अरस्तू के क्रान्ति सम्बन्धी विचार

प्लेटो परिवर्तन को पतन और भ्रष्टाचार से जोड़ते थे, दूसरी ओर अरस्तू परिवर्तन का अरिवार्य और आदर्श की शिक्षा में गति मानते थे। प्लेटो के विपरित वे प्रगति को सम्पूर्णता की ओर विकास समझते थे लेकिन साथ ही अनावश्यक ओर निरतंर परिवर्तन के खिलाफ थे। अरस्तू का परिवर्तन सम्बन्धी विचार विज्ञान और प्रकृति के अध्ययन का नतीजा था।

क्रान्तियों के सामान्य कारणों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया-

(1) मनोवैज्ञानिक कारण (2) मस्तिष्क में उद्देश्य (3) राजनैतिक उथल-पुथल और आपसी टकराव को जन्म देने वाली परिस्थितियां।

मनोवैज्ञानिक कारण औलिगार्की में समानता और जनतंत्र में असमानता की इच्छा है। उद्देश्यों में मुनाफा सम्मान, घमण्ड, डर किसी रूप में बेहतरी घृणा, राज्य के किसी हिस्से में असंतुलित विकास चुनाव के जोड़-तोड़, उदासीनता विरोध का डर, राज्य के अवपयवों के बीच टकराव होते हैं। क्रान्तिकारी परिस्थितियों को जन्म देने वाले अवसर घमण्ड, मुनाफा और आदर के लिए इच्छा, श्रेष्ठता, डर घृणा और राज्य के इस या उस अवयव का असमान विकास है।

हर संविधान में विशेष कारण खोज निकाले गए। जनतन्त्र में कुछ लफ्फाज जनता को भड़काकर धनिकों पर हमला करते थे। इस कारण का निदान का दमन और शासकों में मन-मुटाव से अस्थिरता पैदा होती थी। कुलीनतन्त्र में सरकार समिति करने का अर्थ अस्थिरता का कारण था। विद्रोह तब पैदा होता है जब-

(1) आम जनता स्वयं को शासको के बराबर समझती है। (2) जब महान व्यक्तियों का शासकों द्वारा अपमान किया जाता है। (3) जब क्षमतावान लोगों को सम्मान से दूर रखा जाता है। (4) जब शासक वर्ग के अन्दर कुछ गरीब होते है और परिवर्तन का शिकार बनते है। गरीबों से उचित व्यवहार न होने पर वे विद्रोह करके कुलीनतन्त्र को जनतन्त्र में बदल देते है।

राजतन्त्र में क्रान्ति का निदान कानून के प्रति वफादारी की भावना भसा है। ओलिगार्की और कुलीनतन्त्रों में निदान नागरिक समाज और संवैधानिक अधिकारों वाले लोगों के साथ शासकों के अच्छे सम्बन्ध है। किसी को भी अन्य नागरिकों की तुलना में बहुत ऊँचा उठाना चाहिए क्योंकि धन के मुकाबले पदों में असमानता लोगो को क्रान्ति की ओर धकेलती है। सबको कुछ सम्मान दिया जाय। निरंकुश तानाशाह विभाजन और शासक की नीति के जरिए, धनी और गरीबों के बीच वर्गीय घृणा तेज करके तथा खुफियों का जाल बिछाकर अस्थिरता पर विजय पाते हैं। ऐसे शासक

को धार्मिक दीख पड़ना चाहिए, गरीबों के रोजगार के लिए जन कार्य करने चाहिए, फिजूल खर्चों में कटौती करनी चाहिए और परम्पराओं का पालन करना चाहिए।

अरस्तू ने बताया कि क्रान्तियाँ और बगावत आमतौर पर सरकार की छवि के कारण होती हैं। सरकारी पदों का व्यक्तिगत फायदे के लिए दुरूपयोग नहीं किया जाना चाहिए। संवैधानिक स्थायित्व के लिए पदाधिकारियों में तीन गुण होने चाहिए, एक संविधान के प्रति वफादारी, दो असाधारण प्रशासनिक क्षमता, तीन चरित्र की एकाग्रता, अच्छाई और न्याय-प्रियता। उन्होंने सरकारी प्रचार में शिक्षा, कानून, न्याय और समानता इत्यादि पर जोर दिया।

3.13 अरस्तू का आदर्श राज्य

अरस्तू ने भी प्लेटो की भॉति अपने ग्रन्थ 'पॉलिटिक्स' के अन्तिम चरणों में 'राजनीतिक आदर्शों' तथा श्रेष्ठ एवं सुखी जीवन का विवेचन किया है। अरस्तू तीन प्रकार के शुभों' की कल्पना करता है- बाहन शुभ, शारीरिक शुभ तथा आत्म शुभ। अनुभव यह सिद्ध करता है कि इन हितो अथवा शुभों में आत्मा के शुभ की प्राथमिकता रहती है। साहस, विवेक एवं अन्य प्रकार के नैतिक गुण आत्मिक शुभ के अभिन्न तत्व हैं। इस आधार पर अरस्तू का निष्कर्ष है कि ''राज्यों तथा व्यक्तियों दोनों ही के लिए जीवन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग शुभतापूर्ण जीवन है।'' अरस्तू के विचारानुसार आदर्श संविधान वह है जिसमें दार्शनिक वृत्ति तथा व्यावहारिक गुणों से सम्पन्न सभी प्रकार में लोगों को ऐसे अवसर मिलें जिससे कि वे अपने श्रेष्ठतव को प्राप्त कर सकें तथा सुखी जीवन जी सकें।

आदर्शराज्य के आवश्यक तत्व

1. जनसंख्याः- आदर्श राज्य के लिए अरस्तू इतनी जनसंख्या को आवश्यक मानता है जो कि आकार अथवा मात्रा में न हो और न ही कम। राज्य की आबादी इतनी पर्याप्त होनी चाहिए जिसमें कि राज्य के नागरिकता के कार्यों का निष्पादन भली प्रकार से हो सके। राज्य के सिविल कार्य यह निर्धारित करते हैं कि राज्य की आबादी कितनी होनी चाहिए। अधिक आबादी राज्य की महानता का परिचायक नहीं होती। अतः अरस्तू की सिविल कार्य को करने में एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप में पहचान सकें तथा राज्य को आत्मनिर्भर बने रहने में सहयोग दे सकें।

राज्य का भू-प्रदेशः- अरस्तू के अनुसार राज्य का भू-प्रदेश भी जनसंख्या के समान न हो तो बहुत कम हो और न ही अत्यधिक बड़ा। राज्य की भूमि इतनी हो जिस पर कि नागरिक अवकाश का जीवन बिता सकें नागरिकों के भरण-पोषण से सम्बन्धित इतनी फसल उस भूमि पर उत्पन्न हो, जिससे कि वे अपना जीवन आत्म निर्भरता, मित्राचार तथा उदारता के साथ जी सकें। भूमि के सर्वेक्षण के आधार पर राज्य की सुरक्षा का प्रबंध किया जा सकता है। नगर की आयोजना की जा सकती है तथा आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से तथा उसके आस-पास के इलाकों के साथ संबंधों का निर्धारण किया जा सकता है।

राज्य की सामाजिक संरचनाः-अरस्तू आदर्श राज्य के आवश्यक तत्वों में राज्य की समुचित सामाजिक संरचना को भी एक आवश्यक तत्व मानता है। वह राज्य की संरचना के दो प्रमुख आधार मानता है। 'समाकलन अंग' ; तथा उनके 'सहायक सदस्य' ; वह नागरिकों को 'समान अंग' के रूप में मानता है। दासो और अन्य सेवाओं को करने वालों कृषकों तथा औजार इत्यादि बनाने वालों को वह 'सहायक सदस्यों' के नाम से पुकारता है। नागरिक राज्यों के कार्यों में भाग लेते हुए श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करते है। सहायक सदस्य उस श्रेष्ठ जीवन की सुविधओं और सेवाओं की व्यवस्था करते हैं। राज्य की संरचना के इन दोनों अंगों द्वारा सेवाओं को समाज के लिए प्रदान किया जाना आवश्यक

है। ये सेवाएं इस प्रकार है- कृषि, कला एवं शिल्प, राज्य की सुरक्षा, भू-स्वामित्व, सार्वजनिक पूजा तथा नागरिक एवं राजनैतिक जीवन की सेवा। आदर्श राज्य की सामाजिक संरचना इतनी सक्षम हो कि जीवन की इन आवश्यकताओं की पूर्ति उसकी संस्थाओं द्वारा की जा सके। इन सेवाओं की पूर्ति के लिए अरस्तू ने यहां तक भी निश्चित किया है कि कौर सी सेवा किसके द्वारा निष्पादित की जायेगी।

4- आदर्श राज्य की शिक्षा व्यवस्थाः- प्लेटो की भॉति अरस्तू की भी यह मूल धारणा है कि शिक्षा वह उचित साधन है जिसके द्वारा नागरिकों को विवेकशील बनाया जाता है तथा उनके स्वभाव में सदगुणों के जीवन के आदर्शों के अनुसार ढ़ालने की व्यवस्था है। अरस्तू प्लेटो की भॉति नागरिकों तथा शासकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा-योजना प्रस्तुत नहीं करता अपितु एक ही प्रकार की शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था करता है। उसकी यह धारणा है कि सभी व्यक्ति समाज में एक समान स्वतन्त्र नागरिक है। उसकी शिक्षा प्रणाली अवश्य ही आयु के आधार पार व्यक्तियों के भेद को स्वीकार करती है। उसकी मान्यता है कि बाल्यवस्था के लोगों के लिए तदनुकूल शिक्षा हो तथा प्रौढ़ो के लिए उनकी आयु के अनुसार शिक्षा हो। समाज के बड़े लो शासन के कार्यों से जुड़े रहते है किन्तु जो तरूण है वे शासनाधीन रहते हैं। आज के तरूण ही कल के शासक होगें। अतः उन्हें अपने स्वतन्त्र राज्य की आज्ञाओं का पालन करना सीखना आवश्यक है। संक्षेप में, शिक्षा का उद्देश्य 'उत्तम नागरिक' तथा 'उत्तम व्यक्ति' का निर्माण करना है। अरस्तू सभी नागरिकों के लिए एक समान शिक्षा योजना का स्थापना करना आवश्यक है। स्पष्ट है कि अरस्तू शिक्षा प्रणाली को राज्य के नियन्त्रण में रखने के पक्षपाति है। नागरिकों को जीवन उसके स्वयं के जीवन तक ही सीमित रहता है अपितु राज्य के अन्य सदस्यों से जुड़ा रहता है। इस सामाजिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए अरस्तू स्पार्टा की राज्य द्वारा नियंत्रित शिक्षा-पद्धति का समर्थन अपने शिक्षा सिद्धान्त में करता है।

5- विधि के शासन की श्रेष्ठताः- अरस्तू की दृष्टि में व्यक्ति के शासन की अपेक्षा विधि का शासन सदैव श्रेष्ठ रहता है। विधि का शासन तथा समुचित व्यक्तिगत सम्पत्ति अरस्तू के आदर्श राज्य के आधार-स्तम्भ है। मध्यम वर्ग की श्रेष्ठता के साथ ही अरस्तू विधि के शासन की श्रेष्ठता को भी आदर्श राज्य का आवश्यक तत्व मानता है। अरस्तू प्लेटो की विधि से मुक्त दार्शनिक शासन की धारणा को दोषपूर्ण मानता है।

संक्षेप में, अरस्तू द्वारा प्रस्तुत आदर्श राज्य की यही रूप रेखा है। अरस्तू के आदर्श राज्य की धारणा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उसका चिन्तन केवल व्यवहारपरक ही नहीं, अपितु आदर्श तत्वों से भी मुक्त होता है। यही आदर्श तत्वों की समानता है जो प्लेटो और अरस्तू को, उनके विचारों में कई प्रश्नों पर असामानता होते हुए भी, उन्हें एक धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है। दोनों ही विचारों को लक्ष्य यही कि ऐसे आदर्श राज्य की खोज की जाय जो व्यक्ति को श्रेष्ठ नैतिक जीवन की उपलब्धि करा सकें।

3.14 पॉलिटी (वैद्यानिक लोकतन्त्र)

अरस्तू की दृष्टि में विभिन्न प्रकार के सावधानों में पॉलिटी सर्वश्रेष्ठ व्यावहारिक संविधान है। पॉलिटी में मध्यम वर्ग के लोगों का बाहुल्य रहता है। अरस्तू के दर्शन में मध्य-मार्ग के प्रति गहरी आस्था है। अरस्तू की ऐसी मान्यता है कि वह राजनैतिक समाज सर्वश्रेष्ठ होता है जिनमें मध्यम वर्ग के नागरिकों का वर्चस्व होता है। वे राज्य सुशासित रहते है जिनमें मध्यम वर्ग विशाल मात्रा में पाया जाता है। अरस्तू का यह दृढ़ विश्वास है कि मध्यम वर्ग राज्य का मेरूदण्ड होता है। जिस राज्य की सम्प्रभु शान्ति मध्यम वर्ग में होती है, उस राज्य में स्थायित्व होता है। उपयुक्त आधारों पर अरस्तू इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अन्य शासकों की अपेक्षा व्यावहारिकता की दृष्टि से पॉलिटी एक आदर्श शासनस व्यवस्था है क्योंकि इसमें मध्यम वर्ग की श्रेष्ठता रहती है।

अभ्यास प्रश्न

1. अरस्तू को किसने ''प्रथम राजनैतिक वैज्ञानिक कहा है''?

2. पॉलिटिक्स की रचियता कौन है ?

3. राजनीति शास्त्र के अध्ययन में तुलनात्मक पद्धति का जनक किसे कहा जाता है ?

4. ''स्त्री-पुरूष तथा स्वामी और दास के योग से जो समूह बनता है वही परिवार है। '' किसने कहा है?

3.15 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अरस्तू ने यूनानी राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया था। अरस्तू ने यूनान के 158 राज्यों के संविधानों की आगमनात्मक पद्धति से तथ्यों को एकत्र कर उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके साथ ही उसने राज्य की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया है \जिसमे वह कहता है कि -राज्य एक ऐसा समुदाय या संघ है जिसका अपना एक विकास क्रम होता है परिवार मिलकर ग्रामों का निर्माण करते है और जब ग्राम के समुदाय बनते है तो राज्य की उत्पत्ति होती है। राज्य ''समरूप व्यक्तियों के श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिए संस्था है।''

अरस्तू अपने समय में प्रचलित सामाजिक परम्पराओं से अपने को पूरी तरह से पृथक नहीं कर पाया और दासता सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करता है। अरस्तू परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता और सन्तान तथा स्वामी और दास मानता है। इस प्रकार अरस्तू दासतासंबंधी विचार में प्रगतिशील है क्योंकि वह उन्हें परिवार का अभिन्न अंग भी मानता है।

अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचारों को भी बड़े ही विस्तार से प्रस्तुत करता है जिसमें महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि नागरिकता निवास स्थान से यह तय नहीं होती थी क्योंकि स्थानीय बाहरी और दास नागरिको के साथ रहते हुए भी नागरिक नहीं थे। न ही नागरिकता सामाजिक अधिकारों में हिस्सेदारी से परिभाषित होती थी। नागरिक वह था जिसे विचार विमर्श या न्यायिक पदों में हिस्सेदारी हासिल थी और जो अपने राजनैतिक अधिकारों का प्रभावशाली प्रयोग कर सकता था।

जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके है कि 158 संविधानो का अध्ययन कर अरस्तू ने सविधान के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रकट किये है जिसमें वह 'संविधान' को राज्य का निर्धारक तत्व मानता है। और वह कहता है कि संविधान का स्वरूप ही है जो राज्य के स्वरूप की पहचान कराता है।

अरस्तू की न्याय की धारणा में सामाजिक नैतिकता तथा कानूनी दायित्व के तत्वों का समावेशन है। न्याय व्याख्या करते हुए अरस्तू लिखता है कि 'न्याय सदगुण का व्यावहारिक प्रयोग है।'' इसका अर्थ यह है कि अरस्तू की दृष्टि में 'सदगुण और न्याय' पर्यायवाची है।

इसके अतिरिक्त अपने गुरू प्लेटो के विपरीत अरस्तू मानता है कि कुटुम्ब एवं सम्पत्ति को राज्य की एकता के नाम पर समाप्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि प्लेटों ने अपनी साम्यवाद की योजना में किया है। अरस्तू प्लेटों के कुटुम्ब और सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों की आलोचना करते हुए कहता है कि कुटुम्ब तथा निजी सम्पत्ति व्यक्ति के लिए परम आवश्यक है। अरस्तू के कुटुम्ब और सम्पत्ति विणयक विचारों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उसका वैचारिक दृष्टिकोण व्यक्तिवादी एवं मानवीय आवश्यकताओं को समझने वाला यथार्थवादी दृष्टिकोण है।

अरस्तू प्लेटो के विपरीत राज्य में विधि की सम्प्रभुता होनी चाहिए। उसकी मान्यता है कि निजी शासन, चाहे वह एक व्यक्ति को हो अथवा अनेक व्यक्तियों का, विधि के शासन समान श्रेष्ठ नहीं हो सकता। कानून का शासन पूर्व-निश्चित लिखित नियमों द्वारा संचालित होता हैं कानून के शासन में मनमानी तत्व का अभाव रहता है।

इसके अतिरिक्त अरस्तू ने परिवर्तन की प्रवृत्तियों का भी अध्ययन किया और क्रांति के सन्दर्भ में अपने विचार विस्तार से व्यक्त किये है।

अंततः उसने आदर्श राज्य की धरना प्रस्तुत की है जिसमे उसने एक आदर्श राज्य के लिए आवश्यक तत्वों जैसे किस प्रकार की भौगोलिक संरचना हो .कितनी जनसंख्या हो और किस प्रकार की की संवैधानिक व्यस्था हो इस पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये है।

3.16 शब्दावली

1. राजतन्त्र- ऐसी शासन-व्यवस्था जिनमें शासन की शक्ति या प्रभुसत्ता एक ही व्यक्ति, अर्थात राज या रानी के हाथों में रहती है।

2. पॉलिटी- ऐसी शासन-प्रणाली जिनमें शासन की शक्ति निर्धन एवं साधारण लोगों के हाथों में रहती है।

3. सम्प्रभु- किसी राज्य के अर्न्तगत वह व्यक्ति या निकाय जिसे देश के समस्त क्षेत्र और समस्त व्यक्तियों पर सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हो।

3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मैक्सी 2. अरस्तू 3. अरस्तू 4. अरस्तू

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ.बी.एल. फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा।

2. डॉ. जे.सी. जौहरी, राजनीति विज्ञान, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।

3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग प्राचीन एवं मध्यकालीन) के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ।

3.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जीवन मेहता, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, 1985 साहित्य भवन आगरा।

3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अरस्तू के सम्पत्ति और परिवार सम्बन्धि विचारों की व्याख्या कीजिए?

2. अरस्तू के राज्य तथा सरकार में क्या अंतर बताया है? अरस्तू के सरकार के वर्गीकरण का भी वर्णन कीजिए?

3. प्लेटो तथा अरस्तू के न्याय की कल्पना की तुलना कीजिए तथा अपने विचार भी बताईये?

4. अरस्तू के शिक्षा सम्बन्धि विचारों की व्याख्या कीजिए?

5.अरस्तू के न्याय सिद्धान्त की विवेचना कीजिए

इकाई 4 : संत आगस्टाइन , मार्सीलियो ऑफ़ पडुआ

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.4 आगस्टाइन के राजनैतिक विचार
4.4.1 दो नगरों का सिद्धान्त
4.4.2 राज्य संबंधी विचार
4.4.3 सम्पति एवं दासता संबंधी विचार
4.4.4 आगस्टाइन के राजनीतिक चिन्तन का प्रभाव
4.5 मार्सीलियो के राजनीतिक विचार
4.5.1 मार्सीलियो के राज्य संबंधी विचार
4.5.2 शासन संबंधी विचार
4.5.3 कानून संबंधी विचार
4.5.4 चर्च संबंधी विचार
4.5.5 मूल्यांकन
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मकप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मध्य युग को राजनीतिक चिन्तन का 'अंधकार युग' कहा जाता है। यह ऐसा समय था जब चर्च एवं राज्य के बीच संघर्ष चल रहा था। घोर अनिश्चितता, अस्थिरता का दौर था। जन सामान्य दो चक्कियों के बीच पिस रहा था। इसी समय आगस्ताइन , मार्सीलियो तथा एक्वीनास जैसे विचारकों ने अंधेरे में नई रोशनी का संचार किया। इन्होंने राजनीति के विभिन्न विषयों राज्य की उत्पति, राज्य के कार्य, शासन प्रणाली,दण्ड, कानून तथा चर्च एवं राज्य के संबंध में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया।

इसके पूर्व अनिश्चतता के माहौल में तर्क के ऊपर अंधश्रद्धा प्रभावी हो गई थी। इनके आने के बाद से तर्क पुनः प्रभावी हुआ और धीरे-धीरे अंधेरा छटा। इन तीनों विचारकों ने पोप एवं चर्च को सीमित करने का प्रयास किया। इन तीनों ने दो सत्ताओं को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। जहां आगस्ताइन एवं एक्वीनास का रवैया चर्च के प्रति नर्म है। वे राज्य को चर्च के अधीन मानते है। परन्तु वहीं मार्सीलियो ने चर्च को राज्य के अधीन सिद्ध कर दिया। ये तीनों विचारक इस दृष्टि से और महत्वपूर्ण हो जाते है कि वे पहले बार चर्च एवं राज्य के बीच संबंधों की न केवल तार्किक व्याख्या करते है वरन वे शासन के अन्य पहलूओं जैसे दण्ड, कानून, राज्य की उत्पति आदि पर महत्वपूर्ण विचार रख एक नये उजाले और नये युग का सूत्रपात करते है।

4.2 उद्देश्य

1 मध्य युग के राजनैतिक व्यवस्था से परिचित कराना।

2. इस अध्याय के द्वारा आगस्टाइन के राजनैतिक विचारों का अध्ययन करना।

3. मार्सीलियो के चर्च एवं राज्य संबंधी महत्वपूर्ण विचारों का अध्ययन करना।

4.4 आगस्टाइन के राजनैतिक विचार

संत आगस्टाइन का जन्म 354 ई0 में उत्तरी अफ्रीका के नगर ' थिगेस्टे' (Tegaste) में हुआ था। कार्थेज विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वह मैनिकियन सम्प्रदाय का सदस्य बना। आत्मसंतुष्टि न होने से उसने इस धर्म को त्याग दिया। इसके उपरान्त इटली के नगर मिलान में अपना निवास बनाया। यहीं पर वह विशप एम्ब्रोज के सम्पर्क में आकर इसाई धर्म स्वीकार किया। उसकी संतुष्टि, विश्वास निरन्तर ईसाई धर्म में मजबूत होता चला गया। 386 ई. में उस्सने मसीही धर्म को अपना लिया। 391 ई0 में उसे अफ्रीका के नगर हिप्पो का पादरी नियुक्त किया गया।

आगस्टाइन उस समय ईसाई धर्म से जुड़ा था जब लोगों का विश्वास धर्म में निरन्तर कम होता जा रहा था। चर्च में धर्माधिकारियों में निरन्तर नैतिकता का संकट उत्पन्न होता जा रहा था। यह वह समय था जब चर्च को चुनौती मिलती जा रही थी। आगस्टाइन ने इनको चुनौती के रूप में लेते हुए ईसाई धर्म की रक्षा के लिये प्रसिद्ध ग्रन्थ De-civitate अथवा City of God (ईश्वरीय नगर) की रचना की। यह 22 भागों में विभाजित ग्रन्थ था जिसमें पहले 10 भागों में आलोचकों को जबाब दिया गया है। अगले चार अध्यायों में लौकिक और ईश्वरीय नगर की उत्पति पर प्रकाश डाला गया है। इसके आगे उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक विचारों का उल्लेख किया है। उसने

अपने ग्रन्थ में यह सिद्ध किया कि रोम का पतन ईसाई धर्म के कारण नहीं वरन मूर्तिपूजक समाज के नैतिक पतन के कारण हुआ है। ईसाईयत ने तो इसके पतन को कम कर दिया। उसका यह भी तर्क था कि रोम की पराजय में ईश्वरीय प्रेरणा भी जिम्मेदार है। यह सत्ता रोम के स्थान पर 'ईश्वरीय नगर' की स्थापना चाहती है। उसके द्वारा दिये गये प्रमुख सिद्धान्त तथा विचार निम्न है-

4.4.1 दो नगरों का सिद्धान्त (Theory of Two Cities)

आगस्टाइन का यह मत था कि प्रत्येक व्यक्ति दो नगरों का सदस्य होता है। पहले वह सांसारिक नगर (city of earth) का सदस्य है तथा बाद में वह ईश्वरीय नगर (city of god) का सदस्य है। ये दोनों मानव शरीर के दो रूपों से सम्बन्धित है। सांसारिक नगर का संबंध मानव शरीर अथवा भोग से है तथा ईश्वरीय नगर उसकी आत्मा है। मनुष्य की आत्यात्मिक और नैतिक उत्थान ईश्वरीय नगर की सदस्यता से ही है। यह ईश्वर द्वारा संचालित है। वह कहता है कि ईश्वर नगर की सदस्यता ईश्वर की प्रेरणा से ही है। ईश्वर की प्रेरणा तथा आशीर्वाद चर्च की सदस्यता से ही है। आगस्टाइन का ईश्वरीय नगर की कल्पना ईसाई चर्च राज्य की कल्पना के रूप में की है। उसने ईश्वरीय नगर की सदस्यता चर्च की सदस्यता से अधिक व्यापक है। इसमें चर्च से जुड़े हुए व्यक्ति ही सम्मिलित होते है। आगस्टाइन की यह मान्यता थी कि चर्च ईश्वरीय नगर का अंश मात्र ही है। आगस्टाइन ने चर्च एवं राज्य के बीच घनिष्ठ संबंध बताया है। फोस्टर के शब्दों में-'' यह ईश्वरीय नगर का वह भाग है जिसमें वह सभी सदस्य सम्मिलित है जो अभी अपनी विश्वयात्रा ही कर रहे है और वे सब जो ईश्वरीय राज्य के सदस्य है , इससे गुजर चुके है।''आगस्टाइन की यह मान्यता थी कि चर्च से ही गुजर कर ही ईश्वरीय नगर की सदस्यता ग्रहण की जा सकती है।

सेवाइन के शब्दों में-''संत आगस्टाइन के अनुसार मानव इतिहास सदा से दो समाजों के पारस्परिक संघर्ष द्वारा नियन्त्रित होता रहा है। एक ओर संसार का नगर है जो मनुष्य को अधोमुखी प्रवृति काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि पर आधारित है। दूसरी तरफ ईश्वर का नगर है जो स्वर्गीय शान्ति और आध्यात्मिक मुक्ति की आशा की आशा के ऊपर आधारित है।''

आगस्टाइन की यह मान्यता थी कि चर्च एक संगठित संस्था है। मनुष्य की मुक्ति और ईश्वरीय जीवन से साक्षात्कार तभी संभव है जब हम चर्च को समस्त विश्वासी व्यक्तियों का एक सामाजिक संघ स्वीकार करें। मानव इतिहास में ईश्वर की करूणा चर्च के माध्यम से ही कार्य करती है। यह सिद्धान्त दो प्रकार की जीवन पद्धति का प्रतीक है। ईश्वरीय राज्य ईसाई चर्च व्यवस्था एवं आध्यात्मिक जीवन पद्धति का प्रतीक है जो शाश्वत और अनश्वर है। जबकि सांसारिकराज्य गैर ईसाईयत द्वारा संगठित लौकिक एवं भौतिक है जो नश्वर और क्षणभंगुरी है।

ईश्वरीय जीवन के आवश्यक तत्वः- ईश्वरीय राज्य के प्रमुख तत्व निम्न है-

1.धर्म अथवा न्याय:- वह धर्म तथा न्याय को एक दूसरे का पर्यायवाची मानता था। वह धर्म तथा न्याय को विभिन्न इकाइयों परिवार, राज्य, सम्प्रदाय आदि के बीच व्यवस्था बनाये रखने के उद्देश्य से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्य पालन का धारणा में निहित है। वह धर्म तथा न्याय को सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक मानता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार करने चाहिए। इसके बावजूद राज्य सर्वोच्च नहीं है। राज्य से भी ऊपर एक संस्था है और वह है सार्वभौम समाज जिसका प्रत्येक मनुष्य सदस्य होता है। सार्वभौम समाज ही सम्पूर्ण आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। उसके अनुसार न्याय का क्षेत्र देशकाल की सीमाओं से बंधा नहीं है। यह सर्वव्यापक और सर्वकालिक है।

2.शान्ति- आगस्टाइन का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व शान्ति है। वास्तविक शान्ति वह अवस्था है जिसमें सम्पूर्ण समाज में सद्भावना,प्रेम, सामजस्य, विद्यमान होता है। इससे व्यक्ति का जीवन पूर्णतः सुखमय और संतोषप्रद हो जाता है। वह दो प्रकार की शन्ति की बात करता है। इसमें मुख्य रूप से सांसारिक शन्ति तथा आध्यात्मिक शन्ति शमिल है। सांसारिक शन्ति केवल इस समाज में रहकर अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से प्राप्त की जा सकती है। जबकि आध्यात्मिक शान्ति भौतिक शान्ति से ऊपर तथा श्रेष्ठ है। इसका मार्ग भौतिक शन्ति से ही निकलता है। यह अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण कर ही इसे प्राप्त कर सकता है।

4.4. 2 राज्य संबंधी विचार

आगस्टाइन की यह मान्यता थी कि मनुष्य के उत्थान के लिये , सुरक्षा के लिये ही ईश्वर द्वारा राज्य की स्थापना की गई है। अतः राज्य का निर्माता ईश्वर है। तथा राजा उसका प्रतिनिधि है। प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि राजा गलत आदेश देता है तो उसकी अवज्ञा की जानी चाहिए। आगस्टाइन राज्य को मनुष्य की मुक्ति का साधन मानता है। यूनानी और रोमन विचारकों की तरह आगस्टाइन राज्य के महत्व को स्वीकार करते हुये भी उसे न्याय का आधार नहीं मानता है। राज्य ईसाई धर्म को मानने वाला तथा न मानने वाले दोनों हो सकता है। न्याय तथा धर्म ईसाई राज्य में ही उपलब्ध होते है। यह राज्य का गुण न होकर चर्च का गुण है। यही कारण है कि चर्च राज्य से उच्च तथा श्रेष्ठ है। अतः सभी राज्य अधिकारियों को धर्म के अधीन ही कार्य करना चाहिए।

आगस्टाइन के राज्य संबंधी विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वह पहले के ईसाई धार्मिक गुणओं की तरह राज्य को आवश्यक बुराई नहीं मानता है। यह मनुष्य के पाप मुक्त जीवन को सुनिश्चित करने तथा अन्य भौतिक साधनों की पूर्ति का साधन मानता है। राज्य को अपरिहार्य मानने के बावजूद वह उसे चर्च के नियन्त्रण में रखने का पक्षधर है।

4.4.3 सम्पति एवं दासता संबंधी विचार

आगस्टाइन अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह व्यक्तिगत सम्पति के अधिकार का समर्थन करता है। वह स्पष्ट करता है कि व्यक्तिगत सम्पति के अभाव में मनुष्य लौकिक सुख एवं पारलौकिक सुख से वंचित हो जाता है। वह आगे स्पष्ट करता है कि मनुष्य को उतनी ही संपति रखना चाहिए जितनी इस उददेश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। इससे अधिक संपति रखने वालों को इसका प्रयोग स्वहित में न कर जनहित में करना चाहिए।

अन्य यूनानी विचारकों की तरह आगस्ताइन दास प्रथा को समर्थक था परन्तु वह यूनानी विचारकों की तरह प्राकृतिक नहीं मानता है। वह इसे सीधे धर्म से जोड़ते हुए स्पष्ट करता है कि यह मनुष्य द्वारा किये गये पापपूर्ण कार्य का ईश्वरीय दण्ड है। यह मनुष्यों को दण्डस्वरूप आत्मा का परिष्कार करने के लिये दिया जाता है। यह मनुष्य के पतन, असफलता, गिरावट का परिणाम है। दासता के समय मनुष्यों को अपनी पूर्ण क्षमा के साथ परिश्रम करना चाहिए जिससे उसको मिल रहा दण्ड जल्द ही समाप्त हो सके। यह मनुष्य के पापों का ईश्वरीय उपचार है। प्रत्येक दास को अपने स्वामी की पूरी क्षमता से सेवा करनी चाहिए। फोस्टर के शब्दों में-'' आगस्टाइन का दासता सिद्धान्त असन्तोषजनक और समझ से परे है। क्योंकि यदि उसके विचारों को स्वीकार कर लिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि प्रथम व्यक्ति (आदम) द्वारा किये गये पाप के कारण सम्पूर्ण मानव समाज को दासवृत्ति करनी चाहिए। वह स्वामी और दास का अंतर कैसे होता है इसको स्पष्ट नहीं कर पाता है।''

4.4.4 आगस्टाइन के राजनीतिक चिन्तन का प्रभाव

आगस्टाइन के विचारों का लम्बे समय तक प्रभाव रहा। उसने राजसत्ता पर धार्मिक सत्ता की श्रेष्ठता स्थापित की। उसने ईसाई धर्म के गौरव एवं महत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उसने ईश्वरीय नगर का विचार प्रस्तुत कर ईसाई समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत किया। चर्च द्वारा ही मानव के कल्याण की बात कर चर्च की श्रेष्ठता को

स्थापित किया। उसने रोमन एवं यूनानी विचारकों के बीच समन्वय स्थापित किया। गैटेल के शब्दों में-'' उसने प्लेटो के आदर्श राज्य के दर्शन को, सिसरो के विश्वराज्य के विचार को तथा ईसाईयत के धर्म प्रेरित राज्य के सिद्धान्त को समन्वित कर अपने ईश्वरीय राज्य की स्थापना की।''

आगस्टाइन द्वारा तीनों विचारधारों के बीच किया गया यह समन्वय बाद की पीढ़ियों के लिये प्रेरणा स्त्रोत रहा है। उससे रोमन, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट विचारक नये तत्वों को प्राप्त करते रहे। उसका 'ईश्वरीय नगर' का विचार लम्बे समय तक ईसाई समाज का आदर्श बना रहा। ब्राइस के शब्दों में -'' पवित्र रोमन साम्राज्य का निर्माण 'ईश्वरीय नगर' की नींव पर हुआ है।'' मैक्सी के शब्दों में -'' मध्ययुगीन यूरोप की राजनीतिक विचारधारा पर किसी अन्य व्यक्ति ने इतना प्रभाव नहीं डाला जितनी चौथी शताब्दी के अफ्रीका के इस महान संत ने डाला था।''

4.5 मार्सीलियो के राजनीतिक विचार

मध्य युग का सम्पूर्ण चिन्तन लौकिक एवं पारलौकिक सत्ता के मध्य संघर्ष का है। यह दोनों सत्ताओं के बीच सर्वोच्चता का संघर्ष था। चौदहवीं शताब्दी आते-आते लौकिक सत्ता अथवा राजसत्ता का पलड़ा भारी होता चला गया। फ्रांस के राजा फिलिप चर्तुथ ने अपनी सत्ता को अत्याधिक मजबूत किया और पोप के प्रभाव एवं आदेश को खारिज किया। इसी समय मार्सीलियेा जैसे विचारकों ने राजतंत्र की सर्वोच्चता को और अधिक मजबूती प्रदान की।

मार्सीलियो का जन्म इटली के पाडुआ नगर में 1210 ई0 को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने चिकित्सा शास्त्र में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। उसे आर्क विशप का पद भी दिया गया जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। अपने जीवनकाल में उसने वकील, सैनिक, राजनीतिक आदि की भूमिका का निर्वहन किया। उसने एविग्नोन स्थित पोप मुख्यालय की यात्रा कर चर्च का नंगा सच, वहां का भ्रष्टाचार देखा। यहीं से उसकी राजतंत्र के पक्ष में विचार मजबूत हुआ। उसके विचार पूर्णतः मौलिक तथा कुछ हद तक क्रान्तिकारी थे। उसके संबंध में प्रोफेसर मूरे ने कहा है-'' मासीलियो चौदहवीं शताब्दी का सबसे मौलिक विचारक था जिसने न केवल अपने समय के वरन उसके बाद आने वाले यूरोप को देखा था।''उसने अपने विचार अपनी रचना '' डिफेन्सर पेसिस'' नामक पुस्तक में रखे । पोप ने इस पुस्तक को चर्च विरोधी मानते हुए इस पर प्रतिबंध लगा कर मार्सीलियो को बहिष्कृत कर दिया। अपनी रक्षा के लिये मार्सीलियो ने जर्मनी में बेवेरिया के शासक लुइस के यहाँ शरण ली। यही पर उसने डिफेन्सर पेसिस का संक्षिप्तीकरण करते हुए डिफेन्सर माइनर की रचना की। यही पर 1342 ई0 में उसका देहावसान हो गया। मार्सीलियो के ऊपर तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव था। इटली के बिखराव से वह दुखी था। वह इटली के पतन के लिये वह पोप को जिम्मेदार मानता था। कतिपय यही कारण था कि वह इटली पर से पोप के प्रभाव को कम करने के लिये वह अपनी रचनाओं को प्रकाशित करता है। यह यही नहीं रूकता वरन चर्च को राज्य के अधीन करने की वकालत करता है। उसके यह विचार अत्यंत क्रान्तिकारी थे तथा अन्य मध्ययुगीन विचारकों से बहुत आगे थे। दो सौ वर्षो जर्मनी के विचारक ऐरेस्टस के विचारों मे भी इसकी झलक मिलती है। कतिपय यही कारण था कि सेवाइन उसे '' प्रथम ऐरेस्टियन'' घोषित किया। इसके अतिरिक्त उसके ऊपर अरस्तू तथा एवरोवाद के प्रकृतिवादी एवं बुद्धिवाद विचारों का भी प्रभाव पड़ा। उसने अपने ऊपर अरस्तू के प्रभाव को स्वीकार करते हुए अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है '' उसके ग्रन्थ को पालिटिक्स के उस भाग का पूरक माना जा सकता है जिसमें अरस्तू ने क्रान्ति एवं नागरिक उपद्रव के कारणों का विवेचन किया है।''

4.5.1 मार्सीलियो के राज्य संबंधी विचार

मासीलियो का राज्य संबंधी विचार यूनानी विचारकों से मिलता जुलता है। वह राज्य को सजीव सत्ता मानता है। वह राज्य की उत्पति परिवार से मानता है। यह मानता है कि कृषक, शिल्पकार, उद्योगपति, सैनिक, पुरोहित आदि किसी समाज के विभिन्न वर्ग है, आपसी सहयोग के आधार पर विविध कार्य करते है। राज्य का स्वास्थ्य सभी अंगों के समुचित एवं व्यवस्थित कार्य करने पर निर्भर है। जिस प्रकार अंगों में असंतुलन स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है उसी प्रकार राज्य में भी संतुलन सांमजस्य होना आवश्यक है। मार्सिलियो राज्य के उद्देश्य संबंधी विचार भी अरस्तू से मिलते है। अरस्तू की तरह वह मानता है राज्य को सुरक्षा ही नहीं वरन श्रेष्ठ जीवन की दिशा में अग्रसर होना चाहिए। अरस्तू के श्रेष्ठ जीवन एवं मार्सीलियो के श्रेष्ठ जीवन में अंतर है। मार्सीलियो का श्रेष्ठ जीवन लोक एवं परलोक तक फैला है। अरस्तू का श्रेष्ठ जीवन बुद्धि एवं विवेक पर आधारित है। जबकि दूसरे प्रकार का जीवन श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है। सांसारिक जीवन में व्यवस्था के लिये विवेक की आवश्यकता होती है जबकि पारलौकिक जीवन में मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्म और श्रद्धा की आवश्यकता होती है।

समाज के विभिन्न वर्गों का उल्लेख करते हुए वह प्रत्येक के अपने कार्यक्षेत्र का उल्लेख करता है। वह स्पष्ट करता है कि कृषक, शिल्पी, पूंजीपति वर्ग समाज की भैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते है, सैनिक और प्रशासक राज्य रक्षा , पुरोहित तथा पादरी धर्मशास्त्र का अध्ययन कर लोगों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते है। वह मुक्ति का मार्ग दिखाते है। उनका कार्य आध्यात्मिक है। वह सांसारिक क्षेत्र में कार्य नहीं कर सकते । इसी तर्क के आधार पर वह पादरियों पर राज्य के नियन्त्रण का पक्षधर था। वह चर्च को राज्य का एक विभाग मानता था। वह पहला विचारक था जिसने चर्च को राज्य के अधीन रखा। सेवाइन के शब्दों में-'' राजनीतिक दृष्टि से मार्सीलियो के निष्कर्ष का महत्वपूर्ण अंश यह है कि लौकिक संबंधों में वह (पादरी वर्ग) अन्य वर्गों के समान एक वर्ग है। मार्सीलियों तार्किक दृष्टिकोण से ईसाई पादरियों को अनय अधिकारियों के भाँती समझता है।''

4.5.2 शासन संबंधी विचार

मार्सीलियो के अनुसार उत्तम शासन वह है जो सामूहिक हित के लिये जनता की इच्छा के अनुसार शासन करता है। अपने हित में जनता के विचारों की अनदेखी कर किया गया शासन निकृष्ट शासन होता है। वह अरस्तू के उस विचार को नहीं मानता कि कुछ लोग केवल शासन के लिये ही बने है तथा कुछ लोग शासित होने के लिए बने है। वह किसी एक शासन प्रणाली का समर्थक नहीं था। उसकी मान्यता थी कि विभिन्न शासन प्रणलियां विभिन्न देश, काल में उपयोगी तथा सही हो सकती है। वह शासन के दो अंग कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका को मानता है। कार्यपालिका की दृष्टि से वह निर्वाचित राजतंत्र को और व्यवस्थापिका की दृष्टि से वह प्रतिनिधियात्मक सभा को श्रेष्ठ मानता है। वह मर्यादित (नियन्त्रित) राजतंत्र का समर्थक था तथा वह चाहता था कि राजतंत्र अपने कार्यों के लिये व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हो। वह स्पष्ट करता है कि यदि राजा जनकल्याण सुनिश्चित नहीं करता तो उसे पद से हटा देना चाहिए।

4.5.3 कानून संबंधी विचार

मासीलियों ने कानून के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण विचार दिये। मार्सीलियो ने मध्य युग में प्रचलित न्याय की अवधारणा ''सामूहिक हित के लिये विवेक का आदेश'' को अस्वीकार करते हुए कानून की एक अलग परिभाषा प्रस्तुत की। उसके अनुसार -'' कानून विधायक का बल प्रवर्ती आदेश है जिसका पालन न्यायालयों के द्वारा कराया जाता है।''मार्सीलियो मध्ययुग का पहला विचारक था जिसने कानून की विधिशास्त्रीय परिभाषा दी। उसने आगे कानून की व्याख्या करते हुए कानून को दो भागों में बांटा है:-

1.दैवीय कानून

2.मानवीय कानून

दैवीय कानूनः- वह दैवीय कानून को ईश्वरीय आदेश मानता है। वह इसको पूर्ण मानता है तथा इसमें संशोधन एवं परिवर्तन की सभांवना को अस्वीकार करता है। यह वह कानून है जो मनुष्यों को बताता है कि वह क्या करें तथा क्या न करें? इस विधि में मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ शासन प्राप्त करने तथा संसार के वांछनीय परिस्थितियों के निर्माण का उपाय भी बताया जाता है। वह दैवीय कानूनों को वह सांसारिक जीवन से अलग रखते हुए जीवन के अंतिम लक्ष्य के लिये आवश्यक मानता है।

मानवीय कानूनः- वह मानवीय कानून को सम्पूर्ण नागरिकों का अथवा उसके प्रबुद्ध भाग का आदेश मानता है। ये कानून मानवीय हितों को ध्यान में रखकर व्यापक जनहित में जारी किये जाते है। मानवीय कानून मानव द्वारा मानवों के सांसारिकहितों की पूर्ति के लिये जारी किये जाते है। यह व्यापक जन हित में समाज के ऊपर नियन्त्रण लगाने को सही ठहराते है। यह मानव को क्या करना है? तथा क्या नहीं करना है? इसको सुनिश्चित करवाता है। यह ऐसा आदेश होता है जिसमें उल्लंघन करने वालों का दण्डित किया जाता है।

मार्सीलियो का कानून संबंधी विचार पूर्वतः आधुनिक है। वह काननों को अलग ही नहीं करता वरन इसको तोड़ने वालों को दण्ड की व्यवस्था करता है। वह स्पष्ट करता है कि दैवीय कानूनों का उल्लंघन करने पर मृत्यु के बाद उस व्यक्ति को दण्ड मिलता है। यह दण्ड ईश्वर द्वारा दिया जाता है। जबकि मानवीय कानून के उल्लंघन होने पर दण्ड इसी संसार में राजसत्ता द्वारा दिया जाता है। मानवीय कानूनों के उत्पति में वह दैवीय अथवा प्राकृतिक कानूनों का अंश नहीं देखता है। वह मानता है कि यह मानवीय विवेक से निर्मित होता है।

वह मानवीय कानूनों को मानवीय बुद्धि की उपज मानता है। अतः उसे लागू करने वाला शक्ति का स्त्रोत होता है। यह स्त्रोत सत्ता का प्रबुद्ध स्त्रोत होता है। प्रबुद्ध अंश के संबंध में वह स्पष्ट करता है कि -''मैं कहता हूँ कि समाज में संख्या तथा गुणवत्ता दोनों की दृष्टि से प्रबुद्ध अंश की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। ''

वह प्रबुद्ध अंश के संबंध में स्पष्ट करता है कि यह जनता का वह भाग है जो संख्या का नहीं वरन गुण की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह सभी मनुष्यों की पूर्ण समानता का पक्षधर नहीं था। वह मानता था कि समाज के ' प्रधान व्यक्ति' साधारण व्यक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण है। वह समानता के सिद्धान्त को पूर्ण अर्थों में स्वीकार नहीं करता है।

वह मानता था कि शासन में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका विभागों का निर्माण नागरिकों के द्वारा होता है। व्यवस्थापिका भी नागरिकों की देन होती है। उसी से कार्यपालिका का गठन होता है। यदि कार्यपालिका उचित रूप से कार्य नहीं करती तो व्यवस्थापिका को उसे हटाने का अधिकार है। व्यवस्थापिका को यह अधिकार देने के बाद यह व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता का समर्थन करता है। उसने कार्यपालिका को मजबूत ही नहीं किया वरन उसमें एकता पर बल दिया जिससे कानून व्यवस्था, शान्ति को बनाये रखा जा सके। यही कारण है कि वह प्रजांतत्र पर राजतंत्र को वरीयता देता है। वह राजतंत्र में भी वंशानुगत राजतंत्र की अपेक्षा निर्वाचित राजतंत्र को बेहतर मानता है। वह एकीकृत एवं स्वतंत्र कार्यपालिका का समर्थक है। यही कारण है कि उसके दर्शन में स्वत्रंत चर्च की कोई गुजाइंश नहीं है। वह चर्च की राजसत्ता का सतर्थन करता है। वह राजतंत्र का समर्थक है परन्तु निरकुश राजतंत्र को अस्वीकार करता है। उसकी मान्यता है कि यदि राजा मनमानी करता है तो जनता उसकी मनमानी (निरकुंशता) पर रोक लगाकर उसे दण्डित कर सकती है।

4.5.4 चर्च संबंधी विचार

मार्सीलियो के विचार अपने युग से आगे के थे जिसने राजनीतिक चिन्तन को एक नई दिशा प्रदान की। वह मध्ययुग की निराशा, अस्थिरता तथा अव्यवस्था के लिये दो सत्ताओं के संघर्ष को जिम्मेदार ठहराता था। उसकी मान्यता थी कि चर्च के हस्तक्षेप के कारण ही राजनैतिक अस्थिरता तथा राजनैतिक सत्ता का पतन हो रहा है। तत्कालीन घटनाओं से प्रभावित होकर उसने राजनैतिक सत्ता की मजबूती का समर्थन किया। अपनी पुस्तक ' डिफेन्सर पेसिस' में दूसरे भाग में वह चर्च संबंधी पूर्णतः मौलिक विचार रखता है।

चर्च सत्ता पर प्रबल प्रहार करते हुए उस पर जन प्रभुसत्ता तथा प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त लागू किया। उसने पोप के सभी अधिकारों को अनावश्यक तथा राज्य विरोधी बताया। उसने पोप के अधिकारों को चुनौती देते हुए कहा कि चर्च के सभी अधिकारों का केन्द्र पोप नहीं हो सकता है। चर्च की शक्तियों का केन्द्र सामान्य परिषद है। यह किसी व्यक्ति विशेष का संगठन नहीं वरन ईसाई धर्म में विश्वास रखने वाले करोड़ो लोगों के विश्वास का प्रतीक है। इस सामान्य परिषद में पादरी एवं सामान्य लोग दोनों ही सम्मिलित है। वह कहता है कि जिस प्रकार राज्य की शक्ति उसके सभी नागरिकों द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका में निहित होती है। उसी प्रकार चर्च की शक्ति भी ईसाईयों के द्वारा निर्वाचित सामान्य परिषद में होती है। इस सामान्य परिषद के पास ही चर्च संबंधी सभी निर्णय लेने का अधिकार , विवादों के निपटारे का अधिकार तथा चर्च से बहिष्कृत करने का अधिकार होना चाहिए। सामान्य परिषद द्वारा ही अन्य अधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। पोप भी अपने कार्यो के लिये सामान्य परिषद के प्रति जबावदेह है। यदि पोप भी भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण का दोषी होता है तो परिषद उसे भी पद से हटा सकती है। इस प्रकार मार्सीलियो ने पोप को सामान्य परिषद के अधीन कर एक नये युग का सूत्रपात किया ।

मार्सीलियो राज्य की व्यवस्थापिका की तरह इस सामान्य सभा को भी सर्वोच्च नहीं मानता है। वह सदैव इस बात का पक्षधर था कि इसके सदस्य किसी तटस्थ स्थान पर बाइबिल के अनुसार धार्मिक विषयों एवं सिद्धान्तों का निरूपण करेगें। मार्सीलियो ने न केवल पोप निर्बाध सत्ता पर अंकुश लगाया वरन यह यह सिद्ध किया कि पोप के अधिकारों एवं शक्तियों का स्त्रोत ईश्वरीय नहीं है। उसने पोप को सर्वोच्च न मानकर उसे चर्च का केवल प्रशासक घोषित किया। उसने पोप की सर्वोच्चता को अस्वीकार किया साथ ही पीटरी सिद्धान्त जिसमें कहा गया कि पीटर ने रोम के चर्च की स्थापना की, को गलत सिद्ध किया। उसने यह भी सिद्ध किया कि पोप का अन्य चर्च पर भी कोई अधिकार नहीं है। मार्सीलियो ने पादरियों का अधिकार केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक मामलों तक सीमित रखने तक सीमित था। वह कहता था कि धार्मिक अधिकारियों को किसी प्रकार के भौतिक अधिकार प्राप्त नहीं है। उसने चर्च के कानून एवं अधिकारों को मानने से इन्कार कर दिया। उसने दो प्रकार के कानून का हवाला देते हुए कहा कि परलोक का कानून अथवा ईश्वरीय कानून तथा दूसरा इहलोक में लागू होने वाला मानवीय कानून। ईश्वरीय कानून का उल्लघंन करने पर दण्ड का अधिकारी ईश्वर है तथा इहलोक में दण्ड अधिकारी राजा है। धर्म अधिकारियों को दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं है। मार्सीलियो चर्च के पास किसी प्रकार की संपति का विरोधी था। वह तर्क देता है कि प्रभु यीशु भी कोई संपति नहीं रखते थे। यदि चर्च को दान से संपति प्राप्त होती है तो उसका उपयोग भोग एवं वैभव के लिये नहीं वरन जन कल्याण में होना चाहिए। वह चर्च की अतिरिक्त संपति पर राजकीय नियन्त्रण का हिमायती था। वह चर्च के राजनैतिक कार्यों का विरोधी था। वह चर्च की बाध्यकारी शक्ति को समाप्त करने का पक्षधर था ।

4.5.5 मूल्यांकन

मध्ययुग के राजनैतिक चिन्तन में मार्सीलिया को बहुत महत्व है। उन्होंनें अपने समय की चिन्तन की धारा को बदल कर नये युग का सूत्रपात किया। उन्होंने चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार, विलास तथा अनैतिकता का न केवल विरोध किया वरन नये विचारों के द्वारा चर्च को पूर्णतः राज्य के अधीन कर दिया। धर्माधिकारियों के द्वारा राजनैतिक कार्यों में दखल देने का उसने विरोध किया। वह पोप के द्वारा असंयमित आचरण का विरोधी था। मार्सीलियो की यह मान्यता थी कि पोप केवल धार्मिक गुण है और उसका अधिकार क्षेत्र चर्च के अन्दर है। वह अन्य चर्चों तथा धर्माधिकारियों को निर्देशित नहीं कर सकता। वह राज्य के मामलों में भी दखल नहीं दे सकता। चर्च की अत्याधिक संपति पर वह राज्य के नियन्त्रण का हिमायती था। वह कानूनों को दैवीय आधार पर स्वीकार करने को तैयार नहीं था यदि उसका आधार मानवीय नहीं है। शासन संबंधी उसके विचार मध्ययुग से आगे पूर्णतः आधुनिक है। वह लोकतंत्रवादी है। वह राजाओं को व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बनाता है। वह सीमित तथा चयनित राजा का समर्थक था। पोप के ऊपर सामान्य परिषद के नियन्त्रण का हिमायती था। उसी के विचारों में राष्ट्रीय लोकतन्त्र के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ। पोप को सामान्य परिषद के अधीन करने के विचार के कारण ही परिषदीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। 16वीं शताब्दी में मार्टिन लूथर के नेतृत्व धर्म सुधार आन्दोलन भी मार्सीलियो से प्रभावित था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उसका योगदान अमूल्य है।

अभ्यास प्रश्नः-

1.दो नगरों के सिद्धान्त का समर्थक कौन था?

2.डिफेन्सर पेसिस के रचियता कौन था?

3.निम्न में से किसको प्रथम एरेस्टियन कहा जाता था?

1. मार्सीलियो 2. आगस्टाइन 3 .अरस्तू 4. एक्वीनास

4.निम्न में से किसने चर्च को पूर्णतः राज्य के अधीन माना था?

1. आगस्टाइन 2. संत बनार्ड 3. मार्सीलियो 4. एक्वीनास

4.7 सारांश

500 ई0 से 1500 ई0 तक के काल को मध्ययुग कहा जाता है। यह वह समय था जब राजनीतिक अस्थिरता, चर्च एवं राज्य के बीच संघर्ष, नैतिकता का पतन हो रहा था। यह वह दौर था जब सम्प्रभु कौन है इसका फैसला ही नहीं हो पा रहा था। चारों ओर अनिश्चितता का वातावरण था। इसी समय कुछ राजनीतिक चिन्तकों ने आगे आकर अपने राजनीतिक चिन्तन से युग को स्थिरता तथा नई रोशनी देने का प्रयास किया। इनमें सबसे पहले संत आगस्टाइन का नाम आता है जिन्होंने संघर्ष को समाप्त करने एवं व्यवस्था लाने के उद्देश्य से कुछ सिद्धान्त दिये। इसमें सर्वाधिक

महत्वपूर्ण दो तलवारों का सिद्धान्त था। यह वह सिद्धान्त था जिसमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक कार्यों हेतु चर्च तथा लौकिक कार्यों के लिये राजसत्ता के महत्व को स्वीकार किया गया। वह चर्च एवं राज्य में सामजस्य का विचार देता है। वह अपने पूर्व के विद्वानों की तरह राज्य को आवश्यक बुराई नहीं मानता है। वह राज्य को मानव जीवन के लिये आवश्यक मानता है। वह कहता है कि ईश्वर द्वारा राज्य का निर्माण किया गया है। वह चर्च एवं राज्य के बीच चर्च को अधिक महत्व देता है। मार्सीलियो ने चर्च एवं राज्य के बीच संबंधों में नया दृष्टिकोण रखा। उसकी मान्यता थी कि चर्च का कार्य धार्मिक है अतः उसे राजनीतिक कार्यों में दखल नहीं देना चाहिए। वह मानता था कि धर्म के अत्याधिक हस्तक्षेप के कारण ही इटली का पतन हुआ। वह राज्य को शक्तिशाली एवं सम्प्रभु रखने का हिमायती था। वह चर्च को राज्य के अधीन रखने की वकालत करता है। कतिपय यही कारण है कि वह ' प्रथम ऐरेस्टियन' कहलाता है। वह राज्य की उत्पति परिवार से मानता है तथा राज्य का कार्य विभिन्न समूहों के बीच सांमजस्य रखने को बताता है। वह राज्य के द्वारा मानव जीवन की रक्षा तथा सत जीवन की ओर प्रेरित करने का माध्यम मानता है। धार्मिक क्षेत्र के लोगों को सांसारिक क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए। ऐसी उसकी मान्यता थी। वह शासन के संबंध में राजा के ऊपर सकारात्मक नियन्त्रण का पक्षधर था। वह सीमित राजतंत्र का समर्थक था। वह चर्च के व्यापक सुधारों का हिमायती था। चर्च में पोप को केवल एक प्रशासानिक अधिकारी मानता है। धर्म संबंधी निर्णय लेने की शक्ति सामान्य परिषद को सौंपता है। वह पोप की संपति को नियन्त्रित करने , शक्तियों को सीमित करने तथा गलत कार्य करने पर सामान्य परिषद द्वारा दण्डित करने का पक्षधर था।

4.8 शब्दावली

लौकिकः- जो दिखायी पड़ता हो , जो सामने स्पष्ट हो लौकिक कहा जाता है।

सीमित राजतंत्रः- राजा के ऊपर यदि कानून का नियन्त्रण हो तो ऐसा राजतंत्र सीमित राजतंत्र कहलाता है।

शाश्वत कानूनः- यह ईश्वर की देन कहा जाता है। इसमें माना जाता है कि सम्पूर्ण व्यावस्था ईश्वरीय आदेश से इस कानून में निहित है।

4.9 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1. संत आगस्टाइन 2.मार्सीलियो 3.मार्सीलियो 5.मार्सीलियो

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता जीवन- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन
2. सिंह वीरकेश्वर प्रसाद- प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक
3. जैन पुखराज- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन

4.11सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सूद जे0पी0- राजनीतिक चिन्तन का इतिहास

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आगस्टाइन के राजनीतिक विचारों पर एक निबंध लिखिये।
2. मार्सीलियो के राज्य एवं चर्च संबंधी विचारों की व्याख्या कीजिये।
3. मार्सीलियो के राजनीतिक विचारों की व्याख्या कीजिये।

इकाई -5 संत टॉमस एक्वीनास

इकाई संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 संत टॉमस एक्वीनास का जीवन परिचय एवं पुस्तकें
5.3 संत टॉमस एक्वीनास के राजनैतिक विचार
5.3.1 राज्य संबंधी विचार
5.3.2 शासन संबंधी विचार
5.3.3 राज्य के कार्य
5.3..4 राजसत्ता एवं धार्मिक सत्ता में सम्बन्ध
5.3.5 कानून संबंधी विचार
5.3.6 न्याय संबंधी धारणा
5.3.7 दासता संबंधी विचार
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबन्धात्मकप्रश्न

5.0 प्रस्तवना

संत टॉमस एक्विनास को मध्य युग का सबसे महान राजनीतिक चिन्तक कहा जा सकता है. पिछली इकाई में भी हमने चर्चा की कि मध्य युग में चर्च एवं राज्य के बीच संघर्ष चल रहा था। घोर अनिश्चितता, अस्थिरता के दौर में आगस्ताइन , मार्सीलियो तथा एक्वीनास जैसे विचारकों ने अंधेरे में नई रोशनी का संचार किया। संत टॉमस एक्विनास ने अपने समय से पहले के विधिवेत्ताओं, धर्मशास्त्रियों, टीकाकारों, ईसाई प्रवर्तकों. चर्च और राज्य के समर्थकों के विचारों और दृष्टीकोणों में एकता और क्रमबद्धता स्थापित करके, इनको एक पद्धति का रूप प्रदान किया। इसी लिए उसे एक समन्वयक माना जाता है।

5.1 उदेश्य

1. संत टॉमस एक्विनास के जीवन परिचय व पुस्तकों के विषय में जानेगे।
2. संत एक्वीनास के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करना।
3. संत एक्वीनास के कानून के सिद्धान्त का अध्ययन करना।

5.2 संत टॉमस एक्वीनास का जीवन परिचय एवं पुस्तकें

एक्वीनास का जन्म इटली के नेपल्स नामक राज्य के एक्विनो नगर में 1225 ई0 में हुआ था। उनके पिता एक्विनो सम्राट और फ्रांस के राजा के संबंधि थे , इसलिए इनका बचपन सुख में बिता। 5 वर्ष की आयु में उन्हें मोंटेकेसिनो की पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया गया 12 वर्ष तक वही रहे। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उसने अरस्तू के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उनकी माता-पिता उन्हें उच्च शिक्षा देकर उच्च राज्य अधिकारी बनाना चाहते थे किंतु टॉमस में बचपन से ही वैराग्य प्रधान धार्मिक प्रवृत्ति प्रबल थी। इसीलिए 1244 ई. में अपने परिवार के कड़े विरोध के बावजूद उन्होंने डोमिनिकनआर्डर की सदस्यता ले ली। धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये वह पेरिस गया और पेरिस विश्व विद्यालय में उन्होंने धर्म शास्त्र का अध्ययन किया। पेरिस में उन्हें तत्कालीन युग के महान विद्वान अल्बर्ट महान के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

पेरिस विश्वविद्यालय उन दिनों भिक्षु को कोई उपाधि नहीं देता था , टॉमस को भी उपाधि नहीं दी गयी पर पोप की बिशेष सिफारिस पर 1256 ई0 में उसे पेरिस विश्वविद्यालय से 'मास्टर ऑफ़ थियोलोजी' की उपाधि प्राप्त हुई। इसके बाद एक्विनास ने अपना सारा जीवन ईसाई धर्म को समार्पित कर दिया। टॉमस ने अध्ययन अध्यापन और लेखन के पवित्र व्यवसाय को अपनाया। इटली में अनेक स्थानों में शिक्षण कार्य किया इसी अवधि में उनका संपर्क विलियम ऑफ मोरवेक से हुआ जिन के सहयोग से उन्होंने अरस्तु पर अनेक टिकाए लिखी। उसके जीवन काल में सम्राट तथा पूर्व के मध्य का संघर्ष बहुत बढ़ने लगा था। बह अपने समय में राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और तर्कशास्त्र का प्रकांड विद्वान माना जाता था। लेखन व शिक्षण का काम करते हुए 47 वर्ष की आयु में 1274 ई0 में इनकी मृत्यु हो गई।

एक्वीनास के ऊपर तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा। अरस्तू के प्रभाव के कारण उसमें स्वतंत्रचिन्तन, सन्देहवाद तथा नास्तिकता की भावना बढ़ने लगी। उसने ईसाई धर्म के द्वन्द्व को समाप्त करने का कार्य किया। उसने मध्यकालीन चिन्तन तथा यूनानी चिन्तन के मध्य समन्वय करते हुए अरस्तू तथा आगस्टाइन के परस्पर विरोधी विचारों के बीच में सामजस्य स्थापित किया। उसके विचारों में साम्यवाद के तत्व मिलते है। गैटेल के शब्दों में-'' उसने विवेक तथा अर्न्तज्ञान में संबंध स्थापित करने और चर्च के सिद्धान्तों का यूनानी ज्ञान के पुनरूत्थान से प्रकाश में आये तर्क संगत अधर्मी दर्शन में तालमेल बिठाने का प्रयास किया।'

14 वीं शताब्दी में जॉन 22वे ने थॉमस एक्विनास को ईसाई धर्म के संतों में प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया।16 वीं शताब्दी में पायस पंचम ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ द चर्च' की उपाधि प्रदान की। 19वीं शताब्दी में लियो 13वें ने अपने आदेश द्वारा धर्मशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए उनके ग्रंथ का अध्ययन अनिवार्य घोषित कर दिया।

संत टॉमस एक्विनास की प्रमुख रचनाएँ

कैटलिन के अनुसार "थॉमस ने कुल मिलाकर 60 ग्रंथों की रचना की "

1. एथिक्स (Ethics)
2. पॉलिटिक्स (Politics)
3. ऑन किंगशिप (On Kingship)
4. टू द किंग ऑफ़ साइप्रस (To the King of Cyprus)
5. सुम्मा थियोलोजिया (Summa Theologiae)
6. रूल ऑफ़ प्रिंसेस (Rule of Princess)
7. सुम्मा कॉण्ट्रा जेंताइल्स (summa Contra Gentiles)

राजनीति शास्त्र से संबंधित उनके विचार एथिक्स तथा पॉलिटिक्स की टीकाओं में मिलते हैं। फ़ोस्टर की शब्दों में "एक्विनास विश्व के महानतम व्यवस्थित दार्शनिकों में से एक था उसका कार्य सबको साथ साथ रखना था जो कि पहले अलग-अलग पड़ा हुआ था और जो पहले कम या अधिक रूप में टुकड़ो-टुकड़ों में था उससे एक भव्य भवन निर्मित करना था"

5.3 संत टॉमस एक्वीनास के राजनैतिक विचार

संत टॉमस एक्विनास के दर्शन का मूल समन्वय था , उसने अनेक विरोधी तत्वों और सिध्दांतों में समन्वय लाने का प्रयास किया। उसकी राजनीतिक बुद्धि का प्रमाण इस बात से मिलता है कि बड़े-बड़े राजा उससे शासकों के कर्तव्य को बताने की प्रार्थना करते थे। पोप ने अनेक अवसरों पर धर्म संबंधी कठिनाइयों उपस्थित होने पर उसकी सलाह ली और प्रत्येक अवसर पर उसकी सलाह उपयोगी सिद्ध हुई। यही कारण है कि विद्वानों की सभा में उसके शब्दों का देववाणी के समान आदर किया जाता था संभवत ज्ञान का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं था जिसमें उसकी श्रेष्ठता स्वीकार न की गई हो।एक्विनास का विशेष महत्व इस बात में है कि उसने दो पुराने आचार्यों अरस्तु के दर्शन शास्त्र और अगस्टाइन धर्म शास्त्र के परस्पर विरोधी सिद्धांत में एकता स्थापित की। उसने यूनान की बुद्धि वाद तथा ईसाई धर्म की श्रद्धा का समन्वय किया।

5.3.1 राज्य संबंधी विचार

एक्वीनास ने राज्य के संबंध में जो विचार दिये वह आगस्टाइन के विचारों के ठीक उलटे थे। उसने आगस्टाइन के विचारों का खण्डन किया कि राज्य की उत्पति पाप के कारण हुई है और यह आवश्यक बुराई है। वह अरस्तू के विचारों से प्रभावित होते कहता है कि मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण राज्य की उत्पति हुई है। राज्य समाज के संचालन के लिये आवश्यक है। यह आवश्यक बुराई नहीं है। वह राज्य संबंधी विचारों में अरस्तू से प्रभावित है परन्तु कई बिन्दुओं पर वह अरस्तू से अलग विचार रखता है। वह अरस्तू के

नगर-राज्य संबंधी धारणा को स्वीकार नहीं करता। वह बदली परिस्थितियों में नगर-राज्य से मिलकर बनने वाले प्रांतों से आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने का समर्थक था। उसने नगर राज्य के स्थान पर प्रांतों का समर्थन किया जिसको उसने '' रेगनम (राज्य)'' पुकारा। वह मध्य युग में राष्ट्र राज्य का समर्थन करने वाला था। वह राज्य की प्रभुसत्ता का अंतिम स्त्रोत ईश्वर को मानता है।

5.3..2 शासन संबंधी विचार

शासन व्यवस्था संबंधी विचार अरस्तू से प्रभावित है। वह अरस्तू की तरह वह सबका कल्याण करने वाली शासन प्रणाली को श्रेष्ठ तथा न्यायपूर्ण मानता है तथा केवल शासक हित में शासन करने को अन्यायपूर्ण तथा निकृष्ठ मानता है। अरस्तू राज्य का अंतिम लक्ष्य सद्गुणी जीवन की प्राप्ति मानता है। एक्वीनास भी मानव का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति मानता है। अरस्तू लोकतंत्र को श्रेष्ठ शासन प्रणाली मानता है। जबकि एक्वीनास राजतंत्र केा सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली मानता है। वह इस संबंध में तर्क देता है कि जिस प्रकार विश्व पर एक ईश्वर का , शरीर पर हृदय का, मधुमक्खियों पर रानी मक्खी का शासन होता है उसी प्रकार मनुष्य पर एक व्यक्ति का शासन श्रेष्ठ होगा। वह दूसरा तर्क देता है कि लोकल्याण के लिये समाज में एकता एवं शान्ति आवश्यक है। यह राजतंत्र में ही संभव है। वह तीसरा तर्क राजतंत्र के पक्ष में देता है कि लोकतंत्र में फूट एवं झगड़ा की संभावना बनी रहती है जबकि राजतंत्र में इसकी संभावना नहीं रहती। अतः वह राजतंत्र का प्रबल समर्थन करते हुए वह निर्वाचित राजतंत्र को सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली मानता है। वह राजतंत्र के निरकुंश हो जाने की संभावना को खारिज कर देता है। वह निरंकुश शासकों को मृत्यु दण्ड देने का पक्षधर नहीं है। वह कहता है कि ऐसी व्यवस्था करने से वध किये जाने वालों में अधिकार योग्य शासक ही होगें।वह राजा को नियन्त्रित करने के लिये राजा द्वारा ईश्वरीय नियमों का पालन अनिवार्य करता है। वह कहता है कि राजा को ईश्वरीय नियमों के अनुसार ही आगे बढ़ना चाहिए।

5.3.3 राज्य के कार्य

एक्वीनास ने राज्य के कार्यों पर व्यापक प्रकाश डाला है। उसके राज्य के कार्यों के संबंध में विचार यूनानी , रोमन तथा ईसाई धर्म के विचारों से मिलते-जुलते है। दूसरे शब्दों में कहे तो यह तीनों धाराओं का मिश्रण है। उसके अनुसार राज्य के प्रमुख कार्य निम्न है-

1.राज्य का प्रमुख कार्य उत्तम जीवन जीने की व्यवस्था करना है। राज्य में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना। राज्य को वाहय आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करना है। राज्य को ऐसी नीति बनानी चाहिए जिसमें कानून तोड़ने वाले को दण्डित करने तथा पालन करने वाले को पुरस्कार की व्यवस्था हो।

2.राज्य के अन्दर आवागमन के साधन को सुरक्षित बनाना। उन्हें उपद्रवियों से सुरक्षित रखना है।

3.मुद्रा पद्धति के चलन तथा नापतौल की विशेष व्यवस्था को बनाना।

4.समाज कमजोर लोगों, गरीबों के भरण पोषण को करना। यह राज्य का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

5.3.4 राजसत्ता एवं धार्मिक सत्ता में सम्बन्ध

एक्वीनास राजसत्ता एवं धार्मिक सत्ता के पूर्ण पृथक्कीकरण का पक्षधर नहीं था। वह कहता है कि मनुष्य के दो लक्ष्य होते है- पहला सांसारिक सुख पाना तथा दूसरा आत्मा का सुख पाना। दोनों सुखों की प्राप्ति के लिये दो तरह की सत्ताओं की व्यवस्था की गई है। इसमें सांसारिक सुख के लिये राज्य की व्यवस्था है तथा आत्मीय सुख के लिये चर्च की स्थापना की गई है। राज्य भौतिक सुख पाने का साधन है। जबकि चर्च आध्यमिक उन्नति तथा मुक्ति का साधन है। अतः राज्य को चर्च के नियन्त्रण में रहकर उसके निर्देशानुसार कार्य करना चाहिए।

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि एक्वीनास राज्य की तुलना में चर्च को अधिक महत्व प्रदान करता है। दोनों में संघर्ष अवस्था में जिस प्रकार भौतिक सुखों की तुलना आध्यात्मिक सुध अधिक महत्वपूर्ण है उसी प्रकार राज्य की तुलना में चर्च अधिक महत्वपूर्ण है। वह यह कहता है कि दोनों सत्ताएं संघर्ष के लिये नहीं वरन सहयोग के लिये है। इनका अंतिक उद्देश्य मानव का सम्पूर्ण कल्याण करना है। एक्वीनास के अनुसार -'' चर्च सामाजिक संगठन का मुकुट है। वह लौकिक संगठन का प्रतिद्वन्द्वी नहीं है वरन उसकी पूर्णता का प्रतीक है।''

5.3.5 कानून संबंधी विचार

एक्वीनास के कानून के संबंध में बहुत विस्तृत एवं महत्वपूर्ण विचार दिये है। उसके पूर्ण कानून के संबंध में ऐसे स्पष्ट विचार दिखायी नहीं पड़ते है। उसकी कानून संबंधी व्याख्या अत्यंत व्यापक है। यह अरस्तू, स्टोवक, आगस्टाइन आदि के विचारों का अद्भुत मिश्रण है। डनिग के शब्दों में -'' एक्वीनास का कानून एवं न्याय सिद्धान्त वह धारा है जिसके माध्यम से अरस्तू, स्टोइक, आगस्टाइन , सिसरो, रोम के साम्राज्य वादी विधिवेताओं आदि के सिद्धान्त समन्वित रूप से आधुनिक युग को संम्प्रेषित किये गये है।''

एक्वीनास के कानून संबंधी विचारों पर कोकर का मत है-'' राजनीतिक चिन्तन के लिये सामान्यतः एक्वीनास का कानून विषयक विवेचन सम्भवतः उसकी महानतम देन है।'' एक्वीनास ने अपने कानून संबंध विचारों में यूनानी तथा रोमन विचारधाराओं का समन्वय किया। जहां यूनान में कानून विवेक का परिणाम है वहीं रोम में इसे बुद्धि पर आधारित सम्राट अथवा व्यक्ति विशेष की इच्छा की अभिव्यक्ति का साधन मानते है। उसने दोनों ही धाराओं के बीच समन्वय स्थापित करते हुए इसे बुद्धि का परिणाम तथा व्यक्ति विशेष की इच्छा का परिणाम भी माना। वह कानून की व्याख्या करते हुए कहता है- '' कानून विवेक का वह अध्यादेश है जिसे लोकहित की दृष्टि से उस व्यक्ति के द्वारा उद्घोषित किया जाता है जो समाज की देखभाल करने का अधिकारी होता है।'' उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि उसने दोनों पूर्व प्रचलित धाराओं में समन्वय स्थापित किया।

कानून के प्रकार:- एक्वीनास ने कानून के चार प्रकार बताये हैः

1.शाश्वत कानूनः- शाश्वत कानून ईश्वरीय विवेक का प्रतीक है। समस्त सृष्टि इस कानून के अनुसार निर्मित है तथा इसके अधीन है। मनुष्य की सीमित क्षमता होने के कारण उसे पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ है। अतः ईश्वर प्राकृतिक कानून के माध्यम से उसे शाश्वत कानून से परिचित कराता है।

2.प्राकृतिक कानूनः- इस कानून के द्वारा मनुष्य भले-बुरे, सत्य-असत्य के बीच भेद करता है। इसी के माध्यम से वह सत्य को प्राप्त करता है तथा असत्य से मुक्त होता है। शाश्वत कानून सभी के लिये समान होता है। यह मनुष्य की विभिन्न प्राकृतिक इच्छाओं तथा विभिन्न वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त होता है। मनुष्यों की समस्त प्राकृतिक इच्छाओं जैसे समाज में रहना, आत्मरक्षा करना, संतान उत्पति करना, विवेक का विकास करना आदि प्राकृतिक कानून से ही संभव है।

3.दैवीय कानूनः- एक्वीनास ने दैवीय कानून को स्पष्ट करते हुए कहा कि मानव के जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक उद्देश्यों के लिये नहीं हुआ है वरन वह आध्यत्मिक लक्ष्यों को भी प्राप्त करना चाहता है। यह उद्देश्य दैवीय कानून के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। यह ऐसे कानून है जो मनुष्य को पूर्णत प्रदान करते है। यह परम सुख की प्राप्ति के साधन है। यह बहुत महत्वपूर्ण और श्रेष्ठकर होते है।

4.मानवीय कानून:- एक्वीनास मानवीय कानून को अत्याधिक महत्व वहीं देता है। वह इसे अन्य कानूनों से निम्न मानता था। वह कहता है कि यह मानवीय विवेक की देन है। अतः यह मानवीय हितों की पूर्ति का साधन है। यह

मानवों के लिये अनिवार्य होते है। यह समाज में व्यवस्था, समाज का संचालन करता है। यह राज्य द्वारा प्रतिपादित दण्ड व्यवस्था का प्रतीक होता है। मानवीय कानून मानवीय विवेक द्वारा निर्मित होते है। साथ ही व्यापक समाजहित में प्रयोग में लाये जाते है।

इन कानूनों की कसौटी प्राकृतिक होता है। मानवीय एवं प्राकृतिक कानून में इस प्रकार एक संबंध स्थापित हो जाता है । यदि मानवीय कानून प्राकृतिक कानून के विरूद्ध होता है तो वह सही और न्यायपूर्ण नहीं होगा। इस प्रकार वह सिद्ध करता है कि मानवीय कानून प्राकृतिक कानून का प्रतिबिम्व है। वह स्पष्ट करता है कि प्राकृतिक कानून के विरूद्ध मानवीय कानूनों का अस्तित्व नहीं हो सकता है। मानवीय कानून का उद्देश्य लोककल्याण तथा जनसहभागिता होती है। यह तभी हो सकता है जब वह प्राकृतिक कानूनों के अनुरूप हो। उसने मानवीय कानून के तीन आधार बताये है -

1.यह जनकल्याणकारी होने चाहिए ।

2.यह वैद्य शासक द्वारा निर्मित होने चाहिए ।

3.यह सभी पर समान रूप से लागू होने चाहिए ।

एक्वीनास का कानून परिवर्तन संबंधी दृष्टिकोण अत्यन्त कठोर था। वह कानून को स्थायी बनाने का पक्षधर था। उसका स्पष्ट मत था कि समाज में होने वाली हलचलों का प्रभाव कानून पर नहीं पड़ना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो इसके दुष्परिणाम समाज को भुगतने पड़ते है। कई बार इससे अराजकता की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। बहुत आवश्यक होने पर ही लोकहित में मानवीय कानून में परिवर्तन किया जा सकता है।

5.3.6 न्याय संबंधी धारणा

एक्वीनास के न्याय संबंधी विचारों पर रोम के विधि व्यवस्था का प्रभाव दिखायी पड़ता है। वह कहता है कि -'' न्याय प्रत्येक व्यक्ति को उसको अधिकार प्रदान करने की निश्चित तथा सनातन इच्छा है।''

एक्वीनास की न्याय संबंधी धारणा में अरस्तू का भी प्रभाव पड़ता है। वह कहता है कि न्याय समानता पर आधारित होना चाहिए। यह समानता प्राकृतिक तथा मानवीय आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए।

5.3.7 दासता संबंधी विचार

अन्य मध्ययुगीन विचारकों की तरह एक्वीनास ने भी दास व्यवस्था पर अपने विचार रखे। मध्य युग में दास व्यवस्था समाज में प्रचलित थी। यह समाज का हिस्सा थी। एक्वीनास ने दासता संबंधी विचारों में अरस्तू से प्रभावित नहीं दिखता। जहां अरस्तू दासता को प्राकृतिक एवं दासों के हित में मानता था। वह दासता को स्वीकार करते हुए कहता था कि जन्म से सभी व्यक्ति समान नहीं होते है, सभी की क्षमता अलग-अलग होती है। कुछ अपनी क्षमता से स्वामी बन जाते है तो कुछ सेवक बन जाते है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था को वह प्राकृतिक मानता है। दूसरी ओर एक और मध्ययुगीन विचारक आगस्टाइन दासता को ईश्वरीय दण्ड मानते है। वे तर्क देते है कि दासता पापों का परिणाम है जो ईश्वर द्वारा दण्ड स्वरूप प्रदान किया गया है।

एक्वीनास इन दोनों विचारकों से अलग यह तर्क देता है कि दासता के द्वारा वीरता की अभिवृद्धि होती है। युद्ध में सैनिक दासता के तत्व के कारण वीरता से लड़ते है। वे विजेता होते है तो उन्हें नये दासों का लाभ होता है जो उन्हें वीरता एवं विजयी होने के लिये प्रेरित करता है। पराजित होने पर उनके दास बनने की संभावना हो जाती है। अतः वे वीरता का परिचय देते है।

5.4 सारांश

एक्वीनास के उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका चिन्तन चर्च एवं धर्म से प्रभावित है साथ ही अरस्तू के धर्मनिरपेक्ष चिन्तन का भी प्रभाव है। वह कई स्थानों पर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। कई स्थानों पर दोनों के बीच समन्वय करने के प्रयास में विरोधाभास, उत्पन्न हो जाता है। कई बार इसी आधार पर आलोचक उसकी आलोचना भी करते है।

इसके बावजूद यह आलोचना सही प्रतीक नहीं होती क्योंकि उसके सम्पूर्ण चिन्तन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। उन परिस्थितियों को समझना चाहिए जिसमें वह अपने विचार रख रहा था। वह अपने युग का एक मौलिक एवं प्रतिनिधि विचारक है। उसके ऊपर अपने युग का प्रभाव दिखायी पड़ता है। वह समन्वयवादी है। वह अरस्तू , रोमन आदि विचाराधाराओं का समन्वय करता है। यही उसके चिन्तन की प्रमुख विशेषता है जो उसके चिन्तन को अत्याधिक उपयोगी तथा अपने युग का प्रतिनिधि विचारक बना देती है।

एक्वीनास ने नगर राज्य के स्थान पर राष्ट्र राज्य का विचार दिया। वह शासन जनहित में हो इसका हिमायती था। वह राजतंत्र को सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली मानता है। वह एक व्यक्ति के शासन का समर्थक था। राजा द्वारा सुरक्षा, उत्तम जीवन तथा अर्थ के सभी कार्य किये जाने का पक्षधर था। वह चर्च एवं राज्य के संबंधों में चर्च को आध्यात्मिक कार्य देने तथा राज्य को भौतिक कार्य देने का पक्षधर था। वह आध्यात्मिक कार्य को अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए राज्य को चर्च के अधीन किये जाने का हिमायती था। कानून की विस्तृत व्याख्या उसकी राजनीति शास्त्र को महत्वपूर्ण देन है। दासता को वह स्वीकार करता है परन्तु प्राकृतिक नहीं मानता है।

अभ्यास प्रश्न

1 .सुम्मा थियोलिजिका का रचियता कौन था?

2 .कानून की सर्वाधिक वृहद व्याख्या निम्न में से किसने की?

1. अरस्तू 2. मार्सीलियो 3. एक्वीनास 4. आगस्टाइन

5.5 शब्दावली

सुम्मा थियोलॉजीया- धर्म शास्त्र का सारांश

डोमिनिकन आर्डर – प्रचारकों का आदेश (रोमन कैथोलिक भिक्षुकों का आदेश)

5.6 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1.एक्वीनास, 2.एक्वीनास

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता जीवन- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन

2. सिंह वीरकेश्वर प्रसाद- प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक

3. जैन पुखराज- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन

4. गाबा ओ.पी., राजनीतिक-चिंतन की रुपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, 2017

5. फड़िया, बी. एल., पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गाबा ओ.पी., राजनीतिक-चिंतन की रुपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, 2017

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक्वीनास के विधि संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिये।
2. एक्वीनास के राजनीतिक विचारों की व्याख्या कीजिये।
3. क्या एक्वीनास अपने युग का प्रतिनिधि विचारक था? स्पष्ट कीजिये।

इकाई -6 : मैकियावेली

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मैकियावेली के विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
6.4 इटली की दुरावस्था पर मैकियावेली के विचार
6.5 मैकियावेली की अध्ययन प्रणाली
6.6 मनुष्य स्वभाव के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार
6.7 नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्त
6.8 धर्म और राजनीति के प्रति मैकियावेली का दृष्टिकोण
6.9 इतिहास और परिवर्तन
6.10 राज्य के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार
6.11 शासन सम्बन्धी विचार
6.12 राज्य का विस्तार
6.13 सर्वशाक्तिमान विधायक की अवधारणा
6.14 विधि की अवधारणा
6.15 सेना का राष्ट्रीयकरण
6.16 राष्ट्रीयता की अवधारणा
6.17 अपने युग के शिशु के रुप में मैकियावेली
6.18 प्रथम आधुनिक विचारक के रुप में
6.19 सारांश
6.20 शब्दावली
6.21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.24 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इसकी पूर्व वाली इकाई में बताया जा चुका है कि मध्ययुग की व्यवस्था तथा उसके मूल्यों को समाप्त करने तथा आधुनिक काल का शिलान्यास करने का पूनर्जागरण के बहुआयामी आन्दोलन ने किया था। पूनर्जागरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप यूरोप के जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आने लगे। साथ ही इटली की सामाजिक और राजनैतिक जीवन भी मैकियावेली के विचार क्षैतिज को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको मैकियावेली के राजनीतिक विचारों को जानने और समझने में सहायता मिलेगी, और आप यह जान सकेंगें कि देश काल और परिस्थिति किस प्रकार से विचार को प्रभावित करती है। साथ ही जानेंगें कि मैकियावेली ने राजनीतिक उद्देश्य को सिद्धि के लिए किस हद तक नैतिक मानदण्डों की अवहेलना करने तक की भी इजाजत देता है।

अन्ततः आप को यह जानने को मिलने कि मैकियावेली अपने चिन्तन में किस हद तक मध्यकालीन मान्यताओं से अलग हुआ और राजनीति में धर्मनिरपेक्ष को शामिल करने की वकालत की।

6.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन का उद्देश्य है

1. मैकियावेली के राजनीतिक और सामाजिक विचारों को समझने में सहायता मिलती है।

2. इटली की दुर्दशा और उसके लिए माप और चर्च को उत्तरदायी मानना।

3. आधुनिक काल में राजनीति के अध्ययन के लिए पर्यवेक्षणात्मक तथा ऐतिहासिक पद्धति को

6.3 मैकियावेली के विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मैकियावेली 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ऐसे समय में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है जब एक ओर मध्ययुगीन व्यवस्था का अन्त और दूसरी ओर नव जागरण काल का उदय हो रहा था। हम जानते है कि मध्ययुग के चिन्तन में धर्म, ईश्वर, परलोक पोप को सत्ता सर्वभौग ईसाई समाज, जैसे प्रश्नों का बोलबाला था। तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था सामन्तवादी प्रथा पर टिकी हुई थी। नगरों का स्वरुप भी स्वायत्तशासी था। सामन्तों के आपसी युद्धों के कारण समाज में स्थिरता और शान्ति का अभाव था। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षो तक पश्चिमी यूरोप के देशों में निरकुश राजतंत्रीय शासन का अभ्युदय हो गया था। क्योंकि सर्वग मध्ययुगीन संस्थाओं का अधोपतन हो रहा था। निरकुश राजाओं ने चर्चा के पदाधिकारियों को अपने कानूनी नियंत्रण में ले लिया था। इसी साथ इस अवधारणा का भी विकास हुआ कि राजा ही राज्य में सम्प्रभु है जो समस्त राजनीतिक सत्ता का अन्तिम स्रोत है।

इन विध्वंसकारी परिवर्तनों की अभिव्यक्ति मैकियावेली के राजनीतिक सिद्धान्त में अत्यन्त स्पष्टता से होती है। मैकियावेली का राजनैतिक चिन्तन सोलहवीं शताब्दी का दर्पण है जिसमें तत्कालीन समाज की व्यवस्था तथा उसमें आये विध्वंसकारी परिवर्तनों को स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। अपने युग की उभरती राजनीतिक प्रवृतियों को मैकियावेली ने समझा तथा उन नवीन प्रवृतियों को अपनी राजनीतिक चिन्तन में समा लिया। उसके विचार 16वीं शताब्दी में उभरती नवीन प्रवृतियों से अत्यधिक प्रभावित है।

6.4 इटली की दुरावस्था पर मैकियावेली के विचार

मैकियावेली के काल में इटली की भयंकर दुर्दशा थी। इटली तब पाँच राज्यों नेपल्स, मिलन, वेनिस, फ्लोरेन्स तथा केन्द्र में पोप द्वारा शासित राज्य में विभातिज था। इटली के इन राज्यों की आन्तरिक एवं बाह्य स्थिति शोचनीय थी। स्पेन, जर्मनी और फ्रांस के शासकों का इटली पर समय -समय पर आक्रमण करना, इन राज्यों की आपसी कटुता जिसके लिए विदेशी ताकतों को इटली के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए आमंत्रित किया जाना, इत्यादि कारणों से इटली की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त बुरी थी। मैकियावेली इटली की ऐसी दुर्दशा के लिए पोप और चर्च को उत्तरदायी मानता है। वह इस बात से दुःखी था कि जब कि यूरोप के अन्य देशों में राष्ट्रीय एकीकरण हो गया किन्तु इटली का एकीकरण नहीं हो रहा है। इस समस्या के लिए वह पोप की नीतियों को जिम्मेदार मानता था। उसका मानना था कि न चर्च न तो स्वंय इतना शक्तिशाली है कि पूरे इटली का एकीकरण कर सकें और न वह किसी अन्य सत्ता को ऐसा करने का अवसर देती है। इसलिए इटली किसी एक प्रमुख के अधीन सुदृढ़ राज्य नहीं बन सकता है। सारांश यह है कि तब इटली में ऐसा वातावरण बन चुका था जहाँ व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का अकुंश नहीं था न न्यास का और न कानून का। इटली के इस प्रकार के पतित जन जीवन एवं भ्रष्ट राजनीतिक जीवन को दृष्टिगत रखकर मैकियावेली अपने विचारों का प्रतिपादन करता है और यह कामना भी करता है कि देश का कोई राजनेता उसके ग्रन्थ 'प्रिंस' का अध्ययन कर देश को सुदृढ़ राज्य बनायेगा।

6.5 मैकियावेली की अध्ययन प्रणाली

आधुनिक काल में मैकियावेली ऐसी पहला विचारक था जिसने मध्ययुग में प्रचलित निगमात्मक पद्धति का परित्याग किया। उसने अपने समय की सांसारिक समस्याओं को अध्ययन का विषय बनाया तथा उन समस्याओं का

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयास किया। समकालीन घटनाओं का तटस्थ दृष्टि से पर्यवेक्षण करते हुए उन घटनाओं को प्राचीन इतिहास की घटनाओं के साथ जोड़ते हुए उसने अपने निष्कर्षो का प्रतिपादन किया। मैकियावेली की धारणा थी। कि मनुष्य स्वभाव सदा और सर्वत्र एक जैसा ही है। अतः वर्तमान अथवा भविष्य की समस्याओं को समझाने के लिए भूतकाल के इतिहास का सहारा लेना चाहिए। ऐसा करते समय हमें यह समझने का अवसर मिलता है कि प्राचीन काल में अमुक2 परिस्थितियों में कैसी नीतियों का पालन किया गया जिनसे क्या सफलता मिली या असफलता मिली थी। उसकी मान्यता थी कि उन परिणामों के प्रकाश में हम अपनी समकालीन घटनाओं का विवेचन कर अपने निष्कर्ष निकाल सकते है। इसी कारण मैकियावेली को आधुनिक काल में राजनीति के अध्ययन के लिए पर्यवेक्षणात्मक तथा ऐतिहासिक पद्धति को अपनाने वाला पहला विचारक माना जाता है।

6.6 मनुष्य स्वभाव के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार

मैकियावेली की मान्यता है कि मनुष्य "सामान्यतः कृतहन, स्वार्थी सनकी, धोखेबाज, कायर और लोभी होता है। मनुष्य मात्र का नैसर्गिक गुण उसकी अहंवादी प्रवृति है। अहंवाद एक सार्वभौम मानवीय सत्य है। अपने अहम की रक्षा के के लिए मनुष्य दूसरों से उग्रता के साथ प्रतिस्पर्ध करता है। अपने अहम की रक्षार्थ, अर्थात अपने जीवन अपनी सम्पत्ति तथा अपने सम्मान की रक्षा के लिए वह औरों से संघर्ष करता है।

यह दृष्टिाकोण काल्विन तथा हॉक्स आदि विचारकों से काफी मिलता जुलता है। ऐसा प्रतीत होता है। कि ईसाइयों के मनुष्य के पापी होने के समकालीन सिद्धान्त का भी मैकियावेली पर प्रभाव पड़ा। मैकियावेली यह मान कर चलता है कि मनुष्य का अहम तथा उसकी स्वार्थ प्रवृतियां ऐसी प्रेरणादायी शाक्तियाँ है जो उसे आगे बढ़ने के लिए विवश करती है। मनुष्य आनन्द चाहता है। और कष्ट तथा दुख से बचने की बराबर कोशिश करता रहता है। मनुष्य कृतध्न कायर व लालची होता है। वह अच्छा बनने की तभी कोई कोशिश करता है जब ऐसा करने में उसे कोई लाभ प्रतीत हो। मैकियावेली का कहना था कि भय मानव जीवन को प्रेम से भी अधिक प्रभावित करता है। इसलिए राजा को प्रजा वत्सल नहीं वरन् ऐसा बनना चाहिए कि लोग उससे बारबार डरते रहें। जब तक वे डरेंगे तभी तक राजा से प्रेम करेंगें और उसके आदेश मानेंगें। परन्तु भय घृणा और अपमान के बीच अत्यन्त सुस्पष्ट रेखा खींचते हुए उसका कहना था कि शासक को चाहिए कि वह अपने कार्यो से प्रजा को भयभीत तो रखे लेकिन ऐसा न कर बैठे कि राज्य का कोई वर्ग उससे घृणा करने लगे तो उसकी मान हानि का प्रयत्न करें।

मानव स्वभाव के विषय में मैकियावेली के उपरोक्त विचार इटली की तत्कालीन स्थिति से प्रभावित हुए थे। परन्तु मैकियावेली के विचारों से अनेक विरोधात्मक प्रवृत्तियां देखने को मिलती है।

6.7 नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्त

मैकियावेली ही आधुनिक काल का ऐसा विचारक है जिसने राजनीति को धर्म और नैतिकता के सर्वथा पृथक किया है। मैकियावेली के अनुसार, यदि शासक को अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यदि अनैतिक साधनों का प्रयोग करना पड़े तो ऐसा करना वांछित है सत्ता प्राप्ति के लिए यदि शासक को हत्या धोखाधड़ी वचन भंग अथवा क्रूरता इत्यादि साधनों का प्रयोग करना पड़े तो शासक को ऐसा करना नहीं हिचकिचाना चाहिए। एक शासक की सफलता का मूल्यांकन इस आधार पर नहीं होता कि उसने नैतिकता का धार्मिकता का मार्ग अपनाया और जिससे अपनी सत्ता को खो दिया। इससे उसकी असफलता सिद्ध होगी। किन्तु यदि शासक हत्या इत्यादि का सहारा लेकर भी अपने राज्य की रक्षा कर पाता है तो इतिहास उस शासक की सराहना करेगा। नैतिकता के सम्बन्ध में मैकियावेली

के विचारों का अध्ययन करने से स्पष्ट होगा कि वह नागरिकों के लिए एक प्रकार की नैतिकता का तथा शासकों के लिए दूसरे प्रकार की नैतिकता का मापदण्ड निर्धारित करता है। मैकियावेली का नैतिकता सम्बन्धी दोहरा मापदण्ड है- व्यक्तियों की नैतिकता और शासकों की नैतिकता व्यक्ति के लिए वह नैतिकता को आवश्यक मानता है। किन्तु शासकों के लिए नैतिकता की आवश्यकता नहीं मानता शासकों के लिए उसका मापदण्ड राजनीतिक सफलता है भले ही वह साधन कितने ही अनैतिक क्यों न हों। उसकी मान्यता है कि शासक नैतिकता से ऊपर होता है, नैतिकता के नियमों से शासक बधां नहीं होता। उसका कथन है कि शासक के लिए विश्वास को निभाना बहुत ही प्रशंसनीय है किन्तु राज्य की सत्ता को बनाये रखने के लिए विश्वासघात और छल अत्यन्त आवश्यक है।

6.8 धर्म और राजनीति के प्रति मैकियावेली का दृष्टिकोण

धर्म के प्रति भी मैकियावेली का दृष्टिकोण नैतिकता के समान ही है। वह राजनीति को धर्म से पृथक करता है। प्रिंस की अपेक्षा डिस्कोर्सज में मैकियावेली धर्म को राज्य की स्थिरता के लिए उपयोगी तत्व माना है। मैकियावेली धर्म को राज्य की सुव्यवस्था के साधन के रुप में स्वीकार करता है। धर्म के महत्व को स्वीकार करते हुए मैकियावेली डिस्कोर्सेज में लिखता है जो राजा तथा गणराज्य अपने को भ्रष्टाचार से मुक्त रखना चाहते है, उन्हें धार्मिक संस्कारों की शुद्धता को बनाये रखना चाहिए और उनके प्रति उचित अद्धाभाव रखना चाहिए क्योंकि धर्म हानि होते हुए देखने से बढ़कर किसी देश के विनाश का और कोई लक्षण नहीं होता। इस हद तक मैकियावेली धर्म के महत्व को स्वीकार अवश्य करता है किन्तु जब धर्म राजनीतिक सत्ता के मार्ग में बाधक हो, तब ऐसे धर्म का परित्याग करने का वह समर्थन करता है। स्पष्ट है कि मैकियावेली धर्म और राजनीति के बीच एक विभाजक रेखा निर्धारित करता है।

6.9 इतिहास और परिवर्तन

इतिहास के सम्बन्ध में मत प्रकट करते हुए मैकियावेली परिवर्तन के सिद्धान्त का निरूपण किया है। इतिहास में कोई वस्तु स्थिर नहीं है। मनुष्य इतना लोभी और वासनामय है कि उसकी इच्छांए लगातार बढ़ते ही जाती है। इनका बढ़ना ही परिवर्तनों का कारण है। इस प्रकार के पतिरवर्तनों की क्रमबद्ध कथा ही इतिहास है। चूँकि परिवर्तनों का मूल कारण वासनाएँ है और इतिहास इन्हीं परिवर्तनों का विवरण है अतः मानव जाति के कृत्यों का इतिहास गौरवमय या उज्जवल नहीं है। अपनी बुराईयों के कारण ही मानव जाति दिन प्रति दिन अधिकाधिक अधः पतन के र्गत में गिरती जा रही है। इतिहास की गति मानव जाति के उस अंतिम विनाश और प्रलय की ओर ही इंगित करती है जिसकी और वह बढ़ती जा रही है। अतः मैकियावेली इतिहास को मानव जाति के छल कपट और स्वार्थो का लेखा जोखा मानता है। इतिहास चक्रवत घूमता है। एक अच्छी चीज आती है कालान्तर में वह भ्रष्ट हो जाति है तो उसका स्थान दूसरी वस्तु ले लेती है। इस प्रकार इतिहास का चक्र घुमता रहता है। अरस्तु ने भी लगभग ऐसी ही बात कही थी। उसने राज्यों का जो वर्गीकरण किया था उसमें बतलाया था कि राजतंत्र के बाद अभिजात्यतंत्र और अभिजात्य तंग के भ्रष्ट होने के बाद प्रजातन्त्र और फिर राजतंत्र आता है। फिर भी मैकियावेली ने अरस्तु का कहीं उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकार एक आलोचक के शब्दों में उसने बिना कृतज्ञता प्रकट किये चोरी की है।

6.10 राज्य के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार

मैकियावेली राज्य को कृत्रिम संस्था मानता है। मैकियावेली की राज्य की धारणा उसकी मनुष्य सम्बन्धी धारणा से जुड़ी हुई है। मैकियावेली के अनुसार मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है। तथा उसमें वस्तुओं के संग्रहण करने की प्रवृति

होती है। इसी कारण मनुष्यों में प्रतिस्पर्धा रहती है जो समाज में अशान्ति और अव्यवस्था का कारण होती है। मैकियावेली की मान्यता है कि समाज में अशान्ति और अव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए राज्य की स्थापना मनुष्यों के द्वारा की गई है। वह कहता है कि राज्य मनुष्य की स्वार्थी प्रवृतियों को नियंत्रित करने के लिए स्थापित की गयी मानव कृत संस्था है। राज्य आवश्यकता की उपज है नैसर्गिक नहीं मैकियावेली का यह भी मत है कि अन्य सामाजिक संगठनों की तुलना में राज्य एक उच्च संस्था है। मैकियावेली की राज्य की धारणा की विवेचना करते समय उसकी इस दुर्बलता को भी ध्यान में रखना होगा कि उसने सम्प्रभुता जैसी राज्य की शक्ति का कहीं वर्णन नहीं किया है। राज्य की बाध्यकारी शक्ति का उसने जिस तरह से वर्णन किया है उससे केवल इतना ही संकेत मिलता है कि वह सम्प्रभुता की शक्ति को राज्य में निहित मानता है। सम्प्रभुता की वह कहीं व्याख्या नहीं करता। सम्प्रभुता की व्याख्या न करते हुए भी वह राज्य की शक्ति को स्वीकार करता है जिसका प्रयोग राजतंत्र में राजा के द्वारा अथवा गणतंत्र में प्रजा के द्वारा किया जाता है।

6.11 शासन सम्बन्धी विचार

अरस्तू और सिरसों की भाँति मैकियावेली भी सरकारों को शुद्ध अशुद्ध इन दो भागों में बाटता है। शुद्ध सरकार के प्रकार है राजतंत्र कुलीनतंत्र और गणतंत्र निरकुशतंत्र, धनिकतंत्र और लोकतंत्र क्रमशः इनके विकृत रुप है। स्पष्ट है कि मैकियावेली भी अरस्तु का अनुसरण करते हुए सरकारों को शुद्ध और विकृत मानकर उनके छह प्रकारों को मानता है। सिरसो की भाँति मैकियावेली भी स्वीकार करता है कि "मिश्रित संविधान" श्रेष्ट होता है। शासन के 6 प्रकारों को स्वीकार करते हुए भी वह केवल राजतंत्र और गणतंत्र की तथा डिसकोर्सेज में गणतंत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है। राजतंत्र और गणतंत्र के सम्बन्ध में मैकियावेली के क्या विचार है उनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

6.11.1 राजतंत्र

राजतंत्र व्यवस्था की मैकियावेली प्रिंसिपेलिटी के नाम से सम्बोधित करता है। मैकियावेली ने राजतंत्र के दो स्वरूपों को माना है। पहले प्रकार का वह राजतंत्र है जिसमें कोई राजा दूसरे राज्य को परास्त कर उस पर अपना शासन स्थापित करता है। दूसरा कोटि का राजतंत्र वशांनुगत राजतंत्र है जिसमें अपने पैतृक अधिकार के कारण कोई उत्तराधिकारी राज्य की सत्ता प्राप्त करता है। राजतंत्र का समर्थन मैकियावेली ने तत्कालीन इटली की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया है। उसके मतानुसार इटली की राजनीतिक अवस्था को सुचारू बनाने के लिए राजतंत्र का समर्थन किया है। मूल रूप से तथा साधारण परिस्थितियों में वह गणतंत्रीय शासन को अच्छा मानता है।

6.11.2 गणतंत्र

मैकियावेली डिसकोर्सेज में वह स्वीकार करता है कि गणतंत्र श्रेष्ट कोटी का शासन है क्योंकि इस व्यवस्था में अनेक गुण को देखता है। गणतंत्र में जनता की राजनीतिक जीवन में भागीदारी होती है, तथा विधि के माध्यम से शासन संचालित होता है। वह मानता है कि कानून द्वारा शासित राज्य स्थायी होता है। राज्य में स्थायित्व के लिए वह बल के प्रयोग का समर्थक है फिर भी यदि बल का संयत रुप से प्रयोग किया जाये तो वह उचित है। मैकियावेली व्यक्ति की अनेक स्वतंत्रताओं का समर्थन डिसकोर्सेज में करता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की स्वतंत्रता शासकों को चुनने की स्वतंत्रता, विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा शासन में सार्वजनिक हित के सुधारों को प्रस्तावित करने की नागरिकों की स्वतंत्रता इत्यादि स्वतंत्रताओं का वह समर्थक है। मैकियावेली यह भी मानता है कि नागरिकों की शासन के कार्यो में भागीदारी होनी चाहिए। उसने स्पष्टतया स्वीकार किया है कि जिस शासन में अधिकांश लोग

भागीदार होते है वह शासन स्थायी होता है। वह वंशानुगत राजतंत्र की अपेक्षा जनता द्वारा चुने हुए राजतंत्र को अच्छा मानता है गणतंत्रीय शासन की अपेक्षा नागरिकों का भ्रष्टाचार रहित मत अधिक प्रभावशाली होता है इन विचारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित ही होगा कि भले ही प्रिंस में मैकियावेली के प्रति पादित विचार कितने ही निरकुंशवादी एवं सनकी क्यों न हो डिसकोर्सेज में उसने गणतंत्र एवं उदारवादी शासन का समर्थन किया है।

6.12 राज्य का विस्तार

राज्य के निरन्तर विस्तृत होते रहने की आवश्यकता बतलाते हुए मैकियावेली ने बतलाया कि मनुष्य का स्वभाव पारे की भाँति होता है। वह बारबार बढ़ते रहना चाहता है। यदि वैभव और व्यवस्था है तो राज्य को भी बढ़ना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव चचल होता है वह स्थिर नहीं रह सकता अतः ऐसी कोई वस्तु शाश्वत या दीर्घजीवी नहीं हो सकती जो स्थिर रहे। अतः प्रिंस तथा डिसकोर्सेज में मैकियावेली ने यह समझाने की चेष्टा की कि राज्य मे अधिकृत प्रदेश को निरन्तर बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। एक ही राजा के छत्र के नीचे शासितों की संख्या निरन्तर बढ़ती रहनी चाहिए। ऐसा उस समय तो बराबर ही होना चाहिए जब केन्द्रीय राजसत्ता को अपनी ही देश के किसी भूभाग को अपने अन्तर्गत लाना हो। उपरोक्त बात मैकियावेली ने इटली की दशा को देखते हुए कहीं थी। राजा को साम, दाम दण्ड और भेद की चारों नीतियों को काम में लाना चाहिए। उसे यदि आवश्यकता पड़े तो सेना का प्रयोग करने से भी नहीं चूकना चाहिए। शान्ति व्यवस्था और सुरक्षा की दृष्टि से राज्य के भूमि भाग को बढ़ाते रहना चाहिए।

6.13 सर्वशाक्तिमान विधायक की अवधारणा

आधुनिक भाषा में हम जिसे शासक कहते है मैकियावेली उस शासक को विधि दाता के नाम से सम्बोधित करता है। विधि दाता अर्थात विधायक, पर मैकियावेली की अपूर्व श्रद्धा है। उसका विश्वास है कि किसी सफल राज्य की स्थापना केवल एक व्यक्ति केवल एक सर्वशक्तिमान विधायक द्वारा की जा सकती है। उसकी मान्यतानुसार विधि दाता सर्वशक्तिमान है। विधि दाता द्वारा स्थापित राज्य तथा कानूनों के निर्माण से नागरिकों का चरित्र भी निर्धारित होता है। जैसे विधि दाता के कानून होंगे वैसा ही चरित्र उसके राज्य के सदस्यों का होगा। विधायक की बुद्धिमता और दूरदृष्टि के सहारे समाज की रक्षा ओर विकास संभव है। जिस तरह राज्य के संचालन हेतु उस पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं होते उसी प्रकार समाज रचना और समाज के विकास कार्य में भी विधि दाता पर किसी प्रकार की सीमाएँ नहीं है। विधि दाता यदि अपने कार्य में दक्ष है तो वह समाज व्यवस्था की रचना और उसके उत्थान के लिए सब कुछ कर सकता है। ऐसा करने में उस पर कोई बन्धन नहीं है। वह पुराने संविधान को बदल सकता है राज्य की पुर्नरचना कर सकता है, आबादी मनचाहे तरीके से स्थानान्तरित कर सकता है नैतिकता के नये मापदंड स्थापित कर सकता है, और शासनतंत्र को परिवर्तित कर नई पद्धतियों की व्यवस्था कर सकता है। मैकियावेली के विधि दाता की धारणा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि इन विचारों में सम्प्रभु की झलक है। आधुनिक काल में हम सम्प्रभुता की जिस धारणा की चर्चा करते है मैकियावेली सम्प्रभुता की उस प्रकार की औपचारिक परिभाषा तो प्रस्तुत नहीं कर सका फिर भी उसने राज्यों की सर्वोच्च कानूनी शक्ति के लक्षणों का वर्णन सर्वशक्तिमान विधि दाता की अवधारणा के रूप में किया है। मैकियावेली की इस कमी को हॉब्स ने अपनी सम्प्रभूता की धारणा द्वारा पूरा किया है, मैकियावेली की इस कमी को हॉब्स ने अपनी सम्प्रभुता की धारणा द्वारा पूरा किया है, मैकियावेली ने सर्वशक्तिमान विधायक के जिन लक्षणों का वर्णन किया है हॉब्स उन्हीं लक्षणों के आधार पर सम्प्रभुता की विधिवत धारणा प्रस्तुत करता है।

6.14 विधि की अवधारणा

मैकियावेली विधानमण्डल को सर्वशक्तिमान मानता है। उसकी इस अवधारणा में विधि की अवधारणा भी सन्निहित है। मैकियावेली ने बतलाया है कि लोग विधि के आदेशों को भय के कारण मानते है। मैकियावेली की विधि की परिभाषा बहुत सीमित थी। वह केवल नागरिक विधि के अस्तित्व को ही स्वीकार करता था। उसका कहना था कि विधियाँ शासक द्वारा बनायी जाती है अतः उनका स्रोत शासक है। शासक या राज्य की उत्पति के पहले विधियाँ नहीं थी। अराजकता और विधि व्यवस्था का अभाव पर्यायवाची शब्द है। अराजकता की अवस्था में समाज और राज्य के सारे अंग विश्रिन्खलित हो जाते है। विधि का कार्य इन्ही विश्रिन्खलित अंगों के बीच सामंजस्य और समन्वय की स्थापना करना है। मध्य युग के विभिन्न लेखकों की भांति मैकियावेली ने विधि को प्राकृतिक, ईश्वरीय परम्परागत आदि वर्गो में विभक्त नहीं किया नागरिक विधि की अवधारणा को बतलाने के बाद उसने आगे और कुछ नहीं लिखा। उसका विधि और विधानमण्ड सम्बन्धी दर्शन भी अत्यन्त सीमित है। वह शासक को ही विधानमण्डल सम्बन्धी दर्शन भी अत्यन्त सीमित है। वह शासक को ही विधानमण्डल मानता है।

6.15 सेना का राष्ट्रीयकरण

सेनाओं के सम्बन्ध में भी मैकियावेली के विचार अत्यनत महत्वपूर्ण है। उसके समय में तीन प्रकार की सेनाएँ हुआ करती थी।

1. राष्ट्रीय सेनाएँ 2. राज्यिक सेनाएँ 3. किराये पर लड़ने वाली सेनाएँ

समकालीन इटली में जितनी विदेशी फौज लड़ने बाती थी, वे सब राष्ट्रीय सेनाएँ होती थी। ये सेनाएँ बहुधा स्पेन, फ्रांस और जर्मनी की होती थी। इनका मुकाबला इटली की छोटी2 रियासतों की सेनाओं को करना पड़ता था। इन सेनाओं में फूट भी रहती थी। इनके अलावा कुछ सेनाएँ किराये पर भी लड़ा करती थीं। इटली की सामरिक पराजयों के कारणों का निदान करते हुए मैकियावेली ने रियासती सेनाओं और किराये पर लड़ने वाली सेनाओं के बहुत से दोष गिनाये है। उसका कहना था कि ऐसी सेनाएँ दब्बू, कायर, लालची, और महत्वाकांक्षी होती है। इसकी प्रेरणा देने वाला लक्ष्य राष्ट्र की सेवा भाव नहीं बल्कि धन होता है। अतएव इस प्रकार की सेनाओं पर भरोसा करके इटली राष्ट्र राज्यों का सामना नहीं कर सकता। यदि इटली को स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो उसे भी फ्रांस आदि की भांति राष्ट्रीय सेनाओं का संघठन करना चाहिए और किराये तथा अन्य प्रकार की सेनाओं पर निर्भर रहना चाहिए।

6.16 राष्ट्रीयता की अवधारणा

आधुनिक युग में मैकियावेली ही ऐसा विचारक था जिसने राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। किन्तु आलोचक ने इस सम्बन्ध में बड़े परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये है। एलन का कहना है कि मैकियावेली ने यह नहीं बतलाया कि राष्ट्र राज्य में कौन कौन से अंग होते है। विचारों की अस्पष्टता मैकियावेली की एक बहुत बड़ी त्रुटि है। एलन के मत के विपरित हरनशाँ का कहना है कि वस्तुतः राष्ट्र राज्य का जनक मैकियावेली ही था। यह बात इस अर्थ में स्वीकार की जा सकती है कि मैकियावेली ने ही सबसे पहले राष्ट्र राज्य की रूपरेखा दी। चाहे वह रुप रेखा अस्पष्ट ही क्यों न थी।

6.17 अपने युग के शिशु के रुप में मैकियावेली

मैकियावेली को प्रो. डर्निंग ने अपने युग का शिशु कहा है। मैकियावेली जिस युग में पैदा हुआ था वह युग पुनर्जागरण का था जिस काल की प्रवृत्तियों का प्रभाव मैकियावेली के चिन्तन पर पड़ा था। 14 शताब्दी से 16 वीं शताब्दी का काल था जिस काल के विचारों ने मध्ययुगीन मान्यताओं को छोड़कर एक बार फिर से यूनानी मान्यताओं को स्वीकार करना आरम्भ किया। यूनानी चिन्तन के पुनः प्रसार के कारण मध्ययुगीन व्यवस्था टूटने लगीं और मध्ययुगीन चिन्तन बिखरने लगा तथा नवीन बौद्धिक सांस्कृति और राजनीतिक मूल्यों का प्रभाव यूरोप में दिखाई पड़ने लगा। यह काल प्रबद्धता और बन्धनमुक्ति का काल था। यूनानी चिन्तन के पुनः आविर्भाव के साथ ही मनुष्य समाज, प्रकृति, ईश्वर, कला साहित्य और राजनीति को देखने की नयी कसौटियाँ नये मापदण्डों का आविर्भाव हुआ। समाज की अपेक्षा अब व्यक्ति को महत्व दिया जाने लगा। मानव आबादी दृष्टिकोण के विकास के कारण अब माने जाने लगा कि मनुष्य ही सभी चीजों की कसौटी है। चर्च के नियंत्रण के विरुद्ध भी स्वतंत्रता की भावना का उदय होने लगा। यूरोपीय जगत में पूनर्जागरण की परिणामस्वरुप जिन नये विचारों का और दृष्टिकोण का जन्म हो रहा था। मैकियावेली उन विचारों से प्रभावित था। ये नवीन प्रवृत्तियाँ मैकियावेली के चिन्तन में प्रकट हुई। इसलिए उसे अपने युग के शिशु के रुप में मान्यता दी जाती है। मैकियावेली अनेक भाँति से अपने युग का प्रतिनिधि विचारक था। यह उसके दृष्टिकोण से स्पष्ट हो जाता है। मनुष्य स्वभाव का चित्रण, अध्ययन की ऐतिहासिक प्रणाली को चुनना, चर्च तथा पोप की सत्ता का खुला विरोध, राजनीति को धर्म तथा नैतिकता से पृथक करना, राष्ट्रीय राज्य की महत्ता को स्वीकार करना, सर्वशक्तिमान विधिदाता की अवधारणा का प्रतिपादन करना राष्ट्रीय सेना का विचार तथा सामन्तवादी वर्ग को राष्ट्रीय एकता में बाधा मानकर उस पर राजा के अंकुश को लगाना इत्यादि उसके ऐसे विचार थे जिन पर अपने युग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पुनजार्गरण युग जो वैचारिक अथवा बौद्धिक प्रवृत्तियाँ थी, मैकियावेली के विचारों में उन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उसे अपने युग का शिशु कहा गया है।

6.18 प्रथम आधुनिक विचारक के रुप में

राजनीतिक विचारों के इतिहास में मैकियावेली को पहला आधुनिक विचारक अथवा आधुनिक राजनीतिक वैज्ञानिक कहा गया है। इस मान्यता को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते है।

1. मैकियावेली के पहले राजनीति का अध्ययन अनुभवमूल नहीं था। मध्ययुग के प्रायः सभी लेखक स्वंय सिद्ध मान्यताओं को स्वीकार कर उस आधार पर अपने राजनीतिक विचारों की व्यवस्थाएँ निर्मित करते हुए दिखायी पड़ते है। इसकी तुलना में मैकियावेली मध्ययुग की अध्ययन पद्धति को छोड़कर पर्यवेक्षणीय ऐतिहासिक एवं अनुभवमूलक पद्धति का प्रयोग करता है। आधुनिक काल में इस प्रकार की वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करने वाला मैकियावेली पहला विचारक माना जाता है।

2. मैकियावेली की आधुनिक विचारक मानने के समर्थन में यह कहा जाता है कि उसने राजनीति और नैतिकता को पृथक किया है। मैकियावेली की मान्यता है कि राजनीति का एक स्वतंत्र दायरा है। राजनीति का दायरा सत्ता है। राजनीति का लक्ष्य सत्ता को प्राप्त करना सत्ता प्राप्त कर उसे दृढ़ बनाना तथा सत्ता का विस्तार करना है। इसकी तुलना में नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य के निजी व्यवहार के नैतिक पक्षों से जुड़े निर्णयों से रहता है। इस आधार पर मैकियावेली इस विचार का प्रतिपादन करता है कि राजनीति के उद्देश्य एवं साधन नैतिकता के उद्देश्यों एवं साधनों से सर्वथा पृथक है। राजनीति के क्षेत्र में संलग्न व्यक्तियों, शासकों और राजनीतिज्ञों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे राजनीति में नैतिकता के साधनों का प्रयोग करें। मैकियावेली के लिए साधनों का नैतिक - अनैतिक होना निरर्थक मापदण्ड है।

राजनीति को नैतिक और धर्म से पृथक करने के पीछे मैकियावेली का विचार था कि वह राजनीति को मध्ययुगीन बंधनो से मुक्त कर दे। मैकियावेली का यह प्रयास भी उसकी आधुनिक मानसिकता का परिचायक है।

3. मैकियावेली ने प्रिंस से अपेक्षा की कि कोई देशभक्त राजा इटली को राष्ट्रीय राज्य के रुप में संगठित करेगा। मेडीसी परिवार के शासक लोंरजो को सम्बोधित करते हुए उसने लिखा था, देखिए इटली की भूमि उस ध्वज के नीचे खड़े होने की बिनती कर रही है जो उसे विजय दिला सके यह मातृभूमि आपके घराने की ओर इस आशा से देख रही है। यदि आप उन आदर्शो का प्रयोग करेंगें जिनकी चर्चा मैने प्रिंस में की है तो यह कार्य आपके लिए तनिक भी कठिनल नहीं होगा। वे साधन दयावान एवं उचित है। जो मातृभूमि का उद्धार करें । मैकियावेली ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय सेना की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया था। राष्ट्रीय एकता का विचार भी मैकियावेली की आधुनिकता का द्योतक है।

4. आधुनिक राज्य की धारणा का प्रतिपादक आधुनिक काल की राजनीतिक व्यवस्था राज्य की धारणा पर आधारित है। मैकियावेली को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने राज्य की धारणा को सर्वप्रथम अर्थ प्रदान किया। राज्य का आधुनिक अर्थ ऐसी राजनीतिक सम्प्रभु शक्ति है। जिसमें अपने नागरिकों और क्षेत्रों पर एकाधिकार है तथा जो शक्ति अन्तर्राजीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी सर्वोच्च एवं निर्बाध है। राज्य की धारणा का इस प्रकार का अर्थ मैकियावेली के ग्रंथों द्वारा ही प्रदान किया गया है। राज्य से जुड़ी हुई सम्प्रभुता की धारणा के लक्षणों की व्याख्या भी मैकियावेली द्वारा सर्वप्रथम की गयी है। राज्य और उसकी सम्प्रभु शक्ति के महत्व को पहिचानने वाले विचारकों में मैकियावेली आधुनिक काल का अग्रणी विचारक था।

5. व्यक्ति के आत्महित पर बल मैकियावेली का आधुनिक काल के उन विचारकों में प्रथम स्थान है जिन्होंने व्यक्ति के आत्महित अथवा स्वार्थ को राजनीति का केन्द्र बनाया। मैकियावेली मानता है कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी अथवा अहंवादी है इस तथ्य को शासक को पहिचानना चाहिए तथा शासन की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिए जिससे कि व्यक्ति के आत्म हित को आघात न लगे।

अभ्यास प्रश्न के उत्तर में उपरोक्त का अध्ययन कर लिखिए

प्रश्न 1 'प्रिन्स' नामक ग्रन्थ की रचना किसने की ?

प्रश्न 2 मैकियावेली का जन्म किस सन् में हुआ था?

प्रश्न 3 मैकियावेली ने किस अध्ययन प्रणाली को अपनाया था ?

प्रश्न 4 डिस्कोर्सेज में मैकियावेली किस व्यवस्था का समर्थन करता है ?

प्रश्न 5 मैकियावेली राज्य को .....संस्था मानता है।

6.19 सांराश

उक्त ईकाई के अध्ययन से यह आप समझ गये होगें कि किसी भी राजनीतिक विचारक के राजनीतिक चितंन पर उसके समय की परिस्थितियां प्रभावित करती है। आपने देखा कि मैकियावेली मानव स्वभाव का बुरा चित्रण करता

है। मैकियावेली मानव स्वभाव का बुरा चित्रण इसलिए प्रस्तुत करता है क्योंकि उसने इटली की दुर्दशा को देखा और उसके लिए पोप और चर्च को उत्तरदायी माना। वह इटली का एकीकरण करना चाहता है लेकिन चर्च व पोप को उस कार्य लिए अक्षम मानता है। मैकियावेली ने अपने समय की सांसारिक समस्याओं को अध्ययन का विषय बनाया तथा उन समस्याओं का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने के प्रयास किया। साथ ही मैकियावेली ने धर्म और नैतिकता का राजनीति से विच्छेद कर अपने विचारों को मध्ययुगीन विचारधारा से सर्वथा भिन्न बना दिया उसने राज्य की रक्षा के लिए नैतिकता तथा धर्म की धारणाओं को ताक पर रख दिया सिसरो की भाँति मैकियावेली भी मिश्रित संविधान को श्रेष्ठ मानता है और गणतन्त्र शासन को श्रेष्ठ मानता है अन्त में मैकियावेली ही इटली में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने वाला पहला विचारक था।

6.20 शब्दावली

गणतन्त्र:- वह शासन प्रणाली जिसमें सत्ता का अन्तिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है। ताकि उसका प्रयोग जन हित को बढ़ावा देने के लिए किया जाए।

आधुनिकीकरण:- वह प्रक्रिया जिसमें कोई समाज पंरपरागत मूल्यों और संस्थाओं से आगे बठकर आधुनिक युग के अनुरूप जीवन पद्धति अपना लेता है।

सामन्तवाद:- मध्ययुगीन यूरोप में प्रचलित वह राजनीतिक व्यवस्था जिसके अन्तर्गत राज्य शक्ति स्थानीय जमीदारों मनसबदारों, इत्यादी में बंटी रहती थी। और अपना पर उत्तराधिकार के रुप आधारित थी।

राष्ट्रीयता:- वह स्थिति जिसमें कोई व्यक्ति किसी विशेष राष्ट्र राज्य का सदस्य माना जाता है, चाहे वह स्वयं उस राज्य में जन्मा हो, या उस राज्य से सम्बंन्ध रखने वाले परिवार से।

6.21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मैकियावेली, 2. 1469, 3. अनुभूति प्रधान व ऐतिहासिक पद्धति , 4 गणतंत्रीय शासन , 5. मानवकृत और कृत्रिम संस्था .

6.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता जीवन- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन
2. सिंह वीरकेश्वर प्रसाद- प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक
3. जैन पुखराज- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन

9.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सूद जे0पी0- राजनीतिक चिन्तन का इतिहास

9.24 निबंधात्मक प्रश्न

1. धर्म व नैतिकता के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचारों की विवेचना कीजिए ?

2. मैकियावेली आधुनिक युग का प्रथम विचारक क्यों माना जाता है ?

3. मैकियावेली सही अर्थो में अपने युग का शिशु था। समीक्षा कीजिए।

4. मैकियावेली के राज्य और सरकार के सम्बन्ध में विचारों की विवेचना कीजिए।

इकाई-7 : जीन बोदाँ- (1530-1596)

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 जीन बोदाँ का जीवन परिचय और कृतियाँ
7.4 अध्ययन पद्धति
7.5 राज्य सम्बन्धी विचार
7.6 नागरिकता सम्बन्धी विचार
7.7 सम्प्रभुता सम्बन्धी विचार
7.7.1 संप्रभुता की सीमा सम्बन्धी विचार
7.8 जीन बोदाँ का राज्य एवं शासन के सम्बन्ध में विचार
7.9 जीन बोदाँ का सहिष्णुता सम्बन्धी विचार
7.10 जीन बोदाँ का क्रान्ति सम्बन्धी विचार
7.11 जीन बोदाँ का राजा तथा प्रजा के बीच संविदा सम्बन्धी विचार
7.12 जीन बोदाँ और मैकियावली की आधुनिकता के अग्रदूत के रूप में तुलना
7.13 सारांश
7.14 शब्दावली
7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.18 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मानवतावादी ईश्वरवादी और न्यायविद् जीन बोंदा सोलहवीं शताब्दी के सबसे प्रमुख राजनीतिक विचारकों में से एक थे। मेकियावली और लूथर ने राज्य को धार्मिक सत्ता के प्रभुत्व से मुक्त कराने के जो प्रयत्न किये थे उससे परिणाम स्वरुप प्रभुसत्ता का सिध्दांत सामने आया। राजनीतिक चिंतन के इतिहास में बोंदा का विशिष्ट स्थान है और माना जाता है कि उसने मेकियावली के अधूरे काम को पूरा किया। सोलहवीं शताब्दी में प्रभुत्ता के सिध्दांत को जीन बोंदा लेकर आये। इस सिध्दांत के कारण ही बोंदा की प्रसिद्धी भी हुई। इस इकाई में हम बोंदा के संप्रभुता के सिध्दांत को समझने का प्रयास करेंगे।

7.2 उद्देश्य-

1. इस अध्याय में बोंदा के संप्रभुता सिध्दांत को जान पाएंगे।

2. बोंदा के विभिन्न राजनीतिक विचारों को जानने में सक्षम होंगे।

7.3 बोंदा का जीवन -परिचय

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं राजनीतिक विचारक जीन बोदाँ का जन्म सन् 1530 में फ्रांस के आंजा नामक स्थान में हुआ। प्रारंभ में आंजा में रहकर ही उसने फ्रेंच, ग्रीक और हेब्रू भाषाओं एवं दर्शनशास्त्र का पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया। उसके बाद टूलूज के विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया और वहीँ अध्यापक बन गये। पढ़ाने में मन नहीं लगा तो पेरिस में वकालत का काम शुरू कर दिया। 1566 में उसने पेरिस में अपनी पुस्तक ' ए मेथड फॉर द इजी अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ हिस्ट्री' का प्रकाशन करवाया। जो बहुत प्रसिद्ध हुआ और हेनरी तृतीय को प्रभावित किया। 1576 में हेनरी ने उसे लियों का अटॉर्नी नियुक्त किया। 1581 में वह हेनरी तृतीय के भाई ड्यूक ऑफ़ एलेंकॉन की अध्यक्षता में वाले मिशन में सचिव के रूप में नियुक्त हुआ , यह मिशन रानी एलिजाबेथ के साथ हेनरी तृतीय के विवाह का प्रस्ताव लेके इंग्लेंड गया , यह मिशन असफल रहा और बोंदा को अपने पद से अवकाश लेना पड़ा। इसके बाद बोंदा ने लोओन को अपना निवास स्थान बनाया और वहीँ उसने अपना शेष जीवन लिखने -पढने और वकालत में व्यतीत किया। 1596 में लोओन में प्लेग फेला जिसमें उसकी मृत्यु हो गयी।

बोदाँ के जीवन काल में फ्रांस की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति बड़ी ख़राब थी। सन् 1562 से सन् 1598 तक फ्रांस में 9 धर्मयुद्ध हुए थे। बोदाँ के विचार भी अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित थे। बोदाँ के अध्ययन एवं ज्ञान का क्षेत्र बहुत ही व्यापक था। उसने राजनीति, न्यायशास्त्र, इतिहास, मुद्रा, सार्वजनिक वित्त, शिक्षा एवं धर्म जैसे विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए तथा कृतियाँ लिखी। बोदाँ अपने समय का सर्वाधिक मौलिक विचारक था। वह आधुनिक भी था और अनेक बातों में मध्ययुगीन भी। बोदाँ ने राजनीति के लगभग सभी पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

बोदाँ का उद्देश्य फ्रांस में एकता की पुनर्स्थापना थी। उसने राजनीति के सभी पक्षों से फ्रांस की एकता पर विचार किया जो कि उसकी सार्वभौमिकता के सिद्धान्त से स्पष्ट है। उसके विचार रूढ़िवादी होते हुए भी पुनरूत्थान की भावना से ओत-प्रोत थे। उसके सिद्धान्तों में एकता और संगठन का प्रत्यक्ष सूत्रपात दिखाई देता है। उसने स्पष्ट रूप

से फ्रांस के राजतंत्र का समर्थन किया क्योंकि उसका यह मानना था कि केवल राजतंत्र ही फ्रांस को विनष्ट होने से बचा सकता है और यह कार्य राजा की सर्वोच्चता द्वारा ही हो सकता है। निश्चित रूप से सम्प्रभुता के सिद्धान्त प्रतिपादित करने का श्रेय बोदाँ को ही है

जीन बोदाँ की कृतियाँ

1. रेसपॉन्स (Response)
2. डेमीनोमैनी (Demenomanie)
3. हेप्टाप्लोमर्स (Heptaplomeres)
4. यूनिवर्स नेचर थियेट्रम (Universe Nature Theatrum)
5. सिक्स लिवर्स डि-लॉ-रिपब्लिक (Six Livers De-La-Republique)

7.4 बोदाँ की अध्ययन पद्धति-

बोदाँ का राजनीतिक विचार उसकी पुस्तक 'The Six Books on the Republic or State' से जान सकते हैं तो उसका दूसरा ग्रन्थ 'A Method for the Easy Understanding of History भी महत्वपूर्ण है। उसमें उस पद्धति का विवरण है जिसका प्रयोग उसने अपने राजनीतिक विकल्प में किया और जिसे बोदाँ नवीन समझता था। यह पद्धति भी दर्शन तथा इतिहास का सम्मिश्रण है। बोदाँ के अनुसार कानून के वास्तविक स्वरूप तथा मूल को समझने के लिये न्यायशास्त्री को इतिहासकर से सहायता लेनी चाहिये और विभिन्न देशों की कानून प्रणालियों का अध्ययन करना चाहिये। इस प्रकार उसे दर्शन तथा इतिहास का सम्मिश्रण करना चाहिए।

बोदाँ के अनुसार मैकियावेली की अध्ययन पद्धति में दर्शन की सर्वथा उपेक्षा के कारण ही शायद वह नीतिशास्त्र तथा राजनीति में विच्छेद किया, क्योंकि उसकी पद्धति विशुद्ध रूप से अनुभव प्रधान थी उसे दर्शन द्वारा परिष्कृत नहीं किया गया था। दूसरी ओर बोदाँ ने प्लेटो तथा मोर सरीखे स्वप्नदृष्टाओं (Utopians) की आलोचना इसलिये की कि क्योंकि उनका दर्शन अयथार्थवादी था क्योंकि उसका आधार ऐतिहासिक तथ्य नहीं था। बोदाँ की धारणा थी कि आदर्श पद्धति मे दर्शन और इतिहास दोनों का प्रयोग होना चाहिए। दर्शन इतिहास के तथ्यों के अर्थ प्रदान करता है तथा इतिहास दार्शनिक धारणाओं के लिये सामग्री प्रस्तुत करता है। ''तथ्य ठोस बनाते हैं और विवेक सारगर्भित।''

अपनी राजनीतिक मान्यताओं का इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित करके बोदाँ ने अरस्तू की पद्धति को अपनाया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बोदाँ के सामने अपने कार्य का चित्र अपने समकालीनों की अपेक्षा अधिक व्यापक था। परन्तु जैसा कि सैबाइन का कहना है, बोदाँ में उस कार्य के सम्पन्न करने की पूर्ण क्षमता न थी; उसके राजनीतिक दर्शन में काफी प्रवंचना पाई जाती है। उसके पास कोई स्पष्ट प्रणाली न थी जिसके द्वारा वह अपनी ऐतिहासिक सामग्री को व्यवस्थित कर सकता। बोदाँ का अपनी कृतियों में मुख्य ध्येय इतिहास के लिए सामान्य दर्शन की खोज करना नहीं था, बल्कि केवल उसे सरलतापूर्वक समझने की एक पद्धति का पता लगाना था इसका परिणाम यह हुआ कि उसके ग्रन्थों में पाई जाने वाली अतुल ऐतिहासिक सामग्री में कोई व्यवस्था नहीं पाई जाती। परन्तु यह तो हमें मानना ही चाहिये कि कानून तथा राजनीति में घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होना चाहिये, बोदाँ का एक बड़ा गुण था। उसकी दार्शनिक अन्तर्दृष्टि तथा प्राकृतिक कानून में उसके

विश्वास ने उसे मैकियावेली के नैतिक उपरामवाद (Moral Indifferentism) से बचा लिया। बोदाँ तथा मैकियावेली और बोदाँ तथा हॉब्स में यह एक आधारभूत अन्तर है।

अब हम बोदाँ के उस राजनीतिक दर्शन पर आते हैं जो उसकी कृति 'Books Concerning the State' में मिलता है। कई बातों में उसमें राज्य के मूल स्वरूप तथा राजनीतिक आज्ञापालन के विषय में हमें मौलिक विचार मिलते हैं। परन्तु वे पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है। सबसे पहले हम अगली इकाई खण्ड में उसके राज्य के मूल तथा सामाजिक आधार पर विवरण देंगे, फिर उसके संप्रभुता के सिद्धान्त तथा अन्य विषयों का उल्लेख करेंगे और अन्त में यह देखेंगे कि राजनीतिक विचार के इतिहास में उसका क्या स्थान है।

7.5 जीन बोदाँ का राज्य सम्बन्धी विचार

राज्य के सम्बन्ध में बोदाँ के नवीन सिद्धान्त तथा नवीन मूल्यों को भली प्रकार समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि बोदाँ किन परिस्थितियों में और किस उद्देश्य को लेकर अपनी रचनायें कीं। ज्ञात रहे कि प्रोटेस्टेण्टों तथा कैथोलिकों के बीच धार्मिक संघर्ष ने राज्य की एकता तथा शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचाया और शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने और जन-कल्याण की अभिवृद्धि करने की उसकी क्षमता को बहुत घटा दिया। इस लिये बोदाँ राज्य को धार्मिक विवादों से अलग रखना और यह सिद्ध करना चाहता था कि राज्य की शक्ति निरपेक्ष है जो उसके समस्त नागरिकों को नैतिक रूप से मान्य है। वह यह भी दिखाना चाहता था कि राज्य का समुचित कार्य सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि करना है, न कि अपने अनुसार सच्चे धर्म को कायम रखना। इस ध्येय की पूर्ति के लिए उसने उस सिद्धान्त को जो कि राज्य को एक दैविक संस्था समझता है और उस सिद्धान्त का जो कि शासन की जन-इच्छा के ऊपर आधारित करता है, खण्डन करना पड़ा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि फ्रांसीसी तथा स्कॉटिश काल्विनवादी अन्तःकरण के नाम पर राज्य की शक्ति की अवज्ञा करते थे और व्यक्ति को राज्य से कहीं अधिक महत्ता देते थे। राजनीतिक शक्ति के प्रति काल्विनवादियों का यह दृष्टिकोण बोदाँ के उद्देश्य से ताल नहीं खा सकता था। बोदाँ का उद्देश्य राज्य के प्राधिकार की महत्ता सिद्ध करना था, व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं और अधिकारों की रक्षा करना नहीं। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति बोदाँ ने राज्य की यह परिभाषा देकर की कि ‘‘राज्य परिवारों तथा उनकी सामान्य सम्पत्ति का एक समुदाय है जिसके ऊपर सर्वोच्च शक्ति तथा विवेक का शासन है। यह परिभाषा ‘सिक्स बुक्स कन्सर्निंग दि रिपब्लिक के लैटिन अनुवाद में जिसे ‘डि रिपब्लिक लिब्रीसिक्स’ या केवल ‘डि रिपब्लिक’ के नाम से ही जानी जाती है में दी गयी है।

उपरोक्त परिभाषा से प्रथमतया जो दर्शित होता है वह यह है कि बोदाँ राज्य को परिवारों तथा उनकी सामान्य सम्पत्ति का समुदाय बतलाता है, व्यक्तियों का नहीं। व्यक्ति का सम्बन्ध राज्य से परिवार तथा मजदूर संघ सरीखे अन्य समूहों की सदस्यता द्वारा है। बोदाँ के राजनीतिक दर्शन में व्यक्ति का व्यक्ति के नाते अधिक महत्व नहीं है।

दूसरी बात यह है कि यद्यपि अरस्तू का अनुकरण करते हुए बोदाँ राज्य को परिवारों का समुदाय बतलाता है। किन्तु उसे वह परिवार का स्वाभाविक विकास तथा मनुष्य की स्वाभाविक सामाजिकता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति नहीं मानता जैसा कि महान यूनानी दार्शनिक मानता था, उसके अनुसार राज्य शक्ति की उपज है। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि जो सूत्र व्यक्तियों को परिवार, व्यापार संघ अथवा धार्मिक संघ जैसे समुदायों में बाँधता है वह उससे कहीं भिन्न है जो कि व्यक्तियों को राज्य के सदस्यों के रूप में एकबद्ध करता तहै। कुटुम्ब इत्यादि समुदायों में इस सम्बन्ध का आधार रक्त, मित्रता अथवा पारस्परिक समझौता हो सकता है किन्तु राज्य में यह बन्धन शक्ति का है।

ऐसा लगता है कि बोदाँ का यह मानना था कि वह एक परिवार जिससे मानव जाति का प्रारम्भ हुआ आगे चलकर प्राकृतिक कारणों से कई परिवारों में विभक्त हो गया। समुचित स्थानों पर उन्होंने अपने घर बसा लिये। सामान्य लाभ और हित के लिए एक दूसरे से मिलने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक होती है, इसी प्रवृत्ति के कारण बहुत से परिवार एक ऐसे स्थान पर बस गये जहाँ उन्होंने जल, रक्षा इत्यादि के दृष्टिकोण से दूसरों की अपेक्षा अच्छा समझा। ऐसे अच्छे स्थानों की संख्या सीमित थी। इसलिए परिवार उन पर अधिकार जमाने के लिए आपस में लड़ने लगे। उस संघर्ष में सबल की विजय हुई, निर्बल परास्त हो गये। विजेताओं ने पराजितों पर अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित करना चाहा और उस प्रक्रिया में वे स्वयं उन सरदारों की अधीनता में आ गये जिन्होंने कि लड़ाई में उनका नेतृत्व किया। इस प्रकार राज्य का जन्म हुआ। मानव इतिहास में इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि शक्ति को राज्य के जन्म का मुख्य आधार समझने में सत्य का काफी अंश है। राज्य के विकास में शक्ति चाहे एकमात्र या मुख्य साधन न रही हो, किन्तु एक महत्वपूर्ण साधन वह अवश्य रही है। सामाजिक शक्तियों का बोदाँ एक तीक्ष्ण विश्लेषणकर्ता था।

बोदाँ द्वारा की गई राज्य की परिभाषा में तीसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि राज्य पर सर्वोच्च शक्ति का शासन होता है। सर्वोच्च शक्ति राज्य का सार है, यह राज्य को अन्य समुदायों से अलग करती है। इसे खो देने पर राज्य का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। राज्य की इस सर्वोच्च शक्ति को बोदाँ सम्प्रभुता कह कर पुकारता है। सम्प्रभुता का सिद्धान्त राजनीतिक दर्शन को बोदाँ की सबसे बड़ी देन समझी जाती है। उसके मत का सार है कि कानूनों को बनाने तथा उन्हें लागू करने की राज्य की शक्ति ही संप्रभुता है।

चौथी बात यह है कि बोदाँ के अनुसार राज्य के निर्देशन में विवेक का भी बड़ा हाथ होता है। यह एक महत्वपूर्ण विचार है। उसका अर्थ यह है कि राज्य में सर्वोच्च शासन अधिकार को जो चीज न्यायसंगत बनाती है वह है उसका विवेकसम्मत होना। राज्य और लुटेरों के एक गिरोह में भेद करने वाली इसके अतिरिक्त अन्य कोई चीज नहीं है। विवेक के कानून से बोदाँ का अर्थ कदाचित प्रकृति के कानून से था। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि वह राज्य का मूल शक्ति में देखता था किन्तु उसके अनुसार शक्ति स्वयं अपना औचित्य नहीं है। राज्य बन जाने के पश्चात् शक्ति उसका आधारभूत गुण नहीं रह जाता। अपने आपको न्यायसंगत बनाने के लिए सम्प्रभु को विवेक तथा नैतिक नियन्त्रण के अधीन रहना चाहिए। इस प्रकार बोदाँ ने उस रिक्त स्थान को भरने का प्रयत्न किया जो कि दैविक अधिकार सिद्धान्त के तिरस्कार से उत्पन्न हो गया था।

7.6 जीन बोदाँ का नागरिकता सम्बन्धी विचार-

बोदाँ की नागरिकता सम्बन्धी सिद्धान्तों में स्पष्ट आधुनिक तत्व मिलते हैं। आरम्भ में ही हमें बोदाँ की प्रणाली में एक ऐसी कठिनाई मिलती है जो अन्यत्र नहीं पाई जाती। उसके लिये राज्य का प्रारम्भिक तत्व परिवार है, व्यक्ति नहीं। व्यक्ति राज्य में अपनी भूमिका आधारभूत सामाजिक समुदायों की अपनी सदस्यता द्वारा अदा करता है। इस कठिनाई को बोदाँ यह कहकर दूर करता है कि परिवार का प्रधान नागरिक का परिधान केवल तभी धारण करता है जबकि वह घरेलू कर्तव्यों को छोड़ता है और सार्वजनिक कार्यों को करने के लिये अन्य परिवारों के प्रधानों से मिलने के लिए घर के बाहर निकलता है जो चीज उसे नागरिक बनाती है वह उन अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का उपभोग नहीं है जो कि प्राचीन यूनान तथा रोम में नागरिकता की धारणा से सामान्यतया सम्बद्ध थे और जो आज भी इस शब्द के अर्थ का एक भाग है, बल्कि वह है उसका राज्य की सम्प्रभुता की अधीनता स्वीकार करना। उसके अनुसार नागरिक वह स्वतन्त्र व्यक्ति है जो कि राज्य की प्रभुशक्ति के अधीन है। नागरिकता की इस प्रचलित परिभाषा में कि 'नागरिकता राज्य के प्रति शक्ति है' बोदाँ के सिद्धान्त का प्रभाव प्रतिबिम्बित है।

7.7 संप्रभुता (Sovereignty) सम्बन्धी विचार -

संप्रभुता का सिद्धान्त जो कि उसके राजनीतिक दर्शन का सबसे अधिक आधारभूत अंग तथा आधुनिक राजनीतिक विचार को उसकी मौलिक देन है। उससे पूर्व किसी भी राजनीतिक विचारक ने सम्प्रभुता की धारणा का प्रतिपादन नहीं किया। अरस्तु ने जिस सर्वोच्च शक्ति का उल्लेख किया है, उसे बोदाँ द्वारा प्रतिपादित सम्प्रभुता के विचार के अनुरूप समझा जा सकता है, वह कानून द्वारा परिमित थी जिसका स्रोत विवेक है। मध्य युग की परिस्थितियाँ इस धारणा के विकास के लिये अनुकूल न थीं। सम्राट की शक्ति एक ओर तो सामन्त सरदारों के अधिकारों द्वारा और दूसरी ओर पोप के श्रेष्ठतर शक्ति के दावों द्वारा सीमित थी। 16वीं शताब्दी में स्थिति सर्वथा भिन्न हो गई थी। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस सरीखे राष्ट्र-राज्यों के राजाओं ने अभूतपूर्व एकबद्धता तथा केन्द्रीकरण प्राप्त कर लिया और अपने आपको पोप के नियन्त्रण से मुक्त कर लिया था। निःसन्देह यह सत्य है कि पवित्र रोमन सम्राट का अस्तित्व उस समय था और वह साम्राज्य के ऊपर नाममात्र का अधिकार जताता था। परन्तु बोदाँ के लिये उसका कोई महत्व न था उसके लिये फ्रांस का राजा हेनरी तृतीय ही सब कुछ था। अपने सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके बोदाँ उस प्रवृत्ति का सैद्धान्तिक औचित्य सिद्ध कर रहा था जो कि पश्चिमी यूरोप में सर्वत्र प्रधान हो उठी थी। फ्रांस, ब्रिटेन तथा स्पेन के राजा बोदाँ के मुख से यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए होंगे कि 'समस्त व्यक्तियों तथा समस्त विषयों' पर उनका नियन्त्रण करने का प्रयत्न सम्प्रभुता के उन अदेय अधिकारों का ही प्रयोग था जो कि प्रत्येक राज्य में स्वाभाविक रूप से शामिल रहते हैं।

बोदाँ के अनुसार सम्प्रभुता एक राज्य में शासन करने की निरपेक्ष तथा स्थायी शक्ति है। वह नागरिक तथा प्रजाजन के ऊपर वह सर्वोच्च शक्ति है जिसके ऊपर कानून की कोई सीमायें नहीं है। इन शब्दों में बोदाँ का क्या तात्पर्य था, वह समझना आवश्यक है। यह कहकर कि राज्य अपने क्षेत्र के अन्तर्गत रहने वाले समस्त नागरिकों तथा प्रजाजन पर निरपेक्ष तथा अन्तिम शक्ति रखता है। बोदाँ दो उद्देश्यों की सिद्धि करना चाहता था। प्रथम, वह पोप तथा पवित्र रोमन सम्राट सरीखी किसी भी वाह्य सत्ता के राज्य के लौकिक विषयों के ऊपर अधिकार करने के दावे को निश्चित रूप से ठुकराता था। यह सम्प्रभुता का वाह्य स्वरूप था। दूसरे, उसने सामन्त सरदारों, नगरों तथा निगमों के किसी भी अदेय अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया। उसके अनुसार वे सब साधारण नागरिकों के सदृश राजा की शक्ति के अधीन थे। उन्हें ऐसे अधिकार देना, जिनसे राजा भी उन्हें वंचित न कर सके, राज्य की सम्प्रभुता की निरपेक्षता को कम करना था। इसे हम सम्प्रभुता का आन्तरिक स्वरूप कह सकते हैं।

सम्प्रभुता को स्थायी बताकर बोदाँ यह सिद्ध करना चाहता था कि उसका प्रयोग समय-विशेष से सीमित नहीं है। उसके अनुसार वह राजा जो कि अपने जीवन-पर्यन्त निरंकुश शक्तियों का उपभोग करता है, बोदाँ के अनुसार प्रभुसत्ताधारी है, उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि वह ईश्वर को छोड़कर किसी को भी अपने से बड़ा नहीं समझता।

अन्तिम बात यह है कि बोदाँ के अनुसार 'सम्प्रभुता पर कानून की कोई सीमायें नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि वह व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह जो कि राज्य में सर्वोच्च शक्ति का उपभोग करता है स्वयं उन कानूनों से बाधित नहीं होता जिन्हें वह जनता के लिये बनाता है, वह कानून के ऊपर होता है। यदि शासक कानूनों से बाधित है तो फिर वह निरंकुश और सर्वोच्च कहाँ रहा? सचमुच निरंकुश तथा सर्वोच्च होने के लिये उसे कानूनों के ऊपर होना चाहिये। परन्तु बोदाँ एक क्षण के लिये भी यह नहीं सोचता कि राजा की सम्प्रभुता समस्त कानूनों से ऊपर है। वह केवल अपने बनाये हुए कानूनों के ऊपर है, अन्य प्रकार के कानूनों के नहीं। 'समस्त शासक दैविक कानून, प्राकृतिक कानून तथा

इनसे निःसृत राष्ट्रों के सामान्य कानून से बाधित है। उसके यह मानने से कि सम्प्रभुता दैविक तथा प्राकृतिक कानून द्वारा सीमित है बोदाँ के सिद्धान्त में एक ऐसा तत्व आ जाता है जो उसे हॉब्स से एकदम भिन्न कर देता है, जिसका सिद्धान्त अन्य बातों में उसके बहुत निकट है। इससे प्रकट है कि वह अब भी 'उस महान मध्यकालीन परम्परा के निकट था जो कि राज्य तथा उसके कानूनों को न्यूनाधिक उस पूर्ण न्याय, शुभ, तथा सत्य के प्रतिबिम्ब के रूप में देखती थी जो कि प्रभु की नैतिक व्यवस्था में अभिव्यक्त होते हैं।

उपरोक्त जो भी कहा गया है उससे हम सम्प्रभुता की एक दूसरी विशेषता पर पहुँचते हैं। वह है नागरिकों की व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से कानून बनाने की शक्ति जिसके लिये किसी श्रेष्ठतर, हीनतर तथा समान श्रेणी वाले की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। सम्प्रभुता ही कानूनों का एकमात्र स्रोत है जिसके द्वारा समाज के व्यापार, शासित तथा विनियमित होते हैं। बोदाँ के सिद्धान्त का यह एक आवश्क तत्व है कि प्रत्येक राज्य में एक ऐसा व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह होना चाहिये जो कि उसकी विधायनी क्रियाओं के ऊपर पूर्ण अधिकार रखता हो। अपने विधि-निर्माण के अधिकार के प्रयोग करने में प्रभुसत्ताधारी शासक को संसद सरीखे हीनतर अभिकरण के परामर्श को मानना आवश्यक नहीं है, उसके ऊपर कोई ऐसी उच्चतर शक्ति नहीं है जिसकी अनुमति उसके लिये आवश्यक हो या जो उसके बनाये हुये कानूनों को रद्द कर सके। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि अमुक राज्य में सम्प्रभुता का निर्माण कहाँ है तो बोदाँ के अनुसार हमें यह पता लगाना चाहिये कि उसमें विधि-निर्माण करने की अन्तिम शक्ति कहाँ है।

बोदाँ के सम्प्रभुता के सिद्धान्त के विषय में भ्रान्त धारणा से बचने के लिये हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि बोदाँ के अनुसार सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग विवेक के अनुसार होना चाहिए। बोदाँ- लुटेरों के एक गिरोह की निरंकुशता तथा सम्प्रभुता के बीच बड़ा भेद करता है। अपने शासन-कार्य के लिये शासक ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है, किन्तु किसी मानवी शक्ति के प्रति नहीं। प्राकृतिक या दैविक उच्चतर कानून का हॉब्स की कृतियों में कोई स्थान नहीं है। राज्य का प्रधान होने के नाते प्रभुत्ताधारी में अन्य गुण होते हैं, जैसे कि युद्ध की घोषणा करने, शान्ति स्थापित करने, न्याय-रक्षकों को नियुक्त करने, मुद्रा बनाने, अपराधियों को क्षमा प्रदान करने तथा कर लगाने के अधिकार।

इस प्रकार बोदाँ की सम्प्रभुता कोई अमूर्त अथवा अगम्य चीज नहीं रह जाती। यह एक साकार चीज है जिसकी परिभाषा की जा सकती है और जिसे व्यक्तियों को प्रदान किया जा सकता है। यह राज्य को समाज को शासित करने वाले कानूनों को बनाने की वैधानिक क्षमता है जो प्रत्येक राज्य में रहती है। यह सम्पूर्ण समाज में सामूहिक रूप से वर्तमान रह सकती है और उसी के द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में राज्य पूर्णरूपेण लोकतन्त्री होगा अथवा इसका स्वामित्व एक व्यक्ति में हो सकता है और वह वंशानुगत रूपसे उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो सकती है। ऐसी दशा में राज्य वंशानुगत राजतन्त्र हो जायेगा। किन्तु राज्य चाहे राजतन्त्री हो, कुलीनतन्त्र हो या लोकतन्त्री हो, उसमें प्रभुसत्ता जरूर होगी जो समस्त कानूनों का स्रोत है और जो स्वयं अपने बनाये हुये कानूनों से बाध्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उन कानूनो को बदल सकती है, उन्हें रद्द कर सकती है। यह सर्वोच्च सत्ता अविभाज्य और अदेय है। हथियाने (Prescription) का नियम भी उस पर लागू नहीं होता। समाज की इच्छा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति होने के नाते यह अविभाज्य है, एक राज्य में दो या अधिक प्रभुसत्ताधरी नहीं हो सकते। यह अदेय है क्योंकि इसे राज्य से अलग करना राज्य को नष्ट कर देना है। अप्रयोग द्वारा यह भी नष्ट नहीं होती।

यह निरपेक्ष तथा सर्वोच्च शक्ति राज्य में स्वभावतः पाई जाती है। यह समाज की अपने हितों के लिए अपने सदस्यों के ऊपर अपनी इच्छा का प्रयोग करने की शक्ति है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसे ईश्वर ने अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये मनुष्य को दिया है। सारांश यह है कि सम्प्रभुता मूल रूप से मानव इच्छा की अभिव्यंजना है। समाज के बाहर इसका कोई स्रोत नहीं है।

10.7.1 सम्प्रभुता की सीमा सम्बन्धी विचार-

1. ईश्वरीय कानून की सर्वोच्चता-

बोदाँ इस बात के ऊपर बहुत जोर देता है कि सम्प्रभुता निरंकुश तथा अपरिमित है फिर भी वह मानता है कि उसकी कुछ सीमायें भी है। बोदाँ स्वीकार करता है कि सर्वोपरि कानून ऐसा है जिसके अधीन समस्त शासक होते हैं। वह है ईश्वरीय कानून प्राकृतिक कानून को इसी का एक अंग कहा जा सकता है। यह कानून सदाचार के कुछ अपरिवर्तनीय मापदण्ड निर्धारित करता है, जिनके अनुसार शासक को सदैव चलना चाहिए। इन्हीं मापदण्डों का अनुसरण करना एक राजा की शक्ति को वैध बनाता है। ईश्वरीय कानून, प्राकृतिक कानून तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा लगाई गई सम्प्रभुता के ऊपर सीमाओं का यही सच्च अर्थ है। किन्तु इस प्रकार के कानून की व्याख्या करने का अधिकार स्वयं शासक को है, उसे शासक के ऊपर लागू करने के समुचित साधन नागरिकों के पास नहीं है। इसलिये ऐसे कानून द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों का कोई वैधानिक या राजनीतिक महत्त्व नहीं है। वे नैतिक है और इसीलिये स्वेच्छापूर्ण लगाए हुए हैं। स्वेच्छापूर्ण लगाये हुये प्रतिबन्धों को पारिभाषिक रूप से प्रतिबन्ध नहीं कहा जा सकता। इसलिये यह स्वीकार कर लेने से कि सम्प्रभुता ईश्वरीय कानून या प्राकृतिक कानून के अधीन है उसके निरंकुश तथा अपरिमित होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो कि बोदाँ के विचार में उसका सबसे प्रमुख तत्व है।

किन्तु यथार्थ जगत में अधिकतर शासक ऐसे नहीं होते जैसे कि होने चाहिए। उनके बनाये हुए कानून सदैव उस उच्चतर ईश्वरीय कानून के अनुकूल नहीं होते जो कि विश्व में प्रत्येक चीज के ऊपर नियन्त्रण रखता है और जो मनुष्य को शुभाशुभ का ज्ञान प्रदान करता है। तब ऐसी स्थिति में जबकि शासक द्वारा बनाये हुए कानून और प्राकृतिक कानून में संघर्ष हो तो क्या होगा? क्या न्यायरक्षक को सम्प्रभु द्वारा बनाये गये कानून को लागू करने से इन्कार कर देना चाहिए? क्या नागरिकों को उसकी अवज्ञा करनी चाहिए। बोदाँ ने इन प्रश्नों का कोई प्रत्यक्ष उत्तर नहीं दिया, उसने ऐसी स्थितियों को केवल लघुत्तम सीमाओं के अन्दर बन्द कर दिया है किन्तु ऐसा करने से विडम्बना तो दूर नहीं हो जाती, वह तो बनी ही रहती है। ''कानून सम्प्रभु की इच्छा है और साथ ही साथ शाश्वत न्याय की अभिव्यंजना भी, तथापित दोनों में संघर्ष हो सकता है।

2.सांविधानिक कानून की प्रधानता

बोदाँ का कहना है कि राजा को राज्य के सांविधानिक कानून के विपरीत आचरण नहीं करना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार फ्रांस के राजा सिंहासन के उत्तराधिकार के कानून को नहीं बदल सकते थे जो कि सैलिक कानून (Salic Law) के अधीन था। वह कानून यह था कि ज्येष्ठतम पुत्र को अपने पिता का सिंहासन उत्तराधिकार में मिलना चाहिए। पुत्रियां उत्तराधिकार से सर्वथा वंचित थीं। राजसत्ता के ऊपर इस प्रतिबन्ध के औचित्य को सिद्ध करना पहले प्रतिबन्ध से कहीं अधिक कठिन है। बोदाँ ने इस प्रतिबन्ध को इसलिये स्वीकार कर लिया क्योंकि उस युग में प्रचलित कानूनी मत यह था कि राजसत्ता के प्रयोग से सम्बन्धित कुछ ऐसे कानून हैं जिन्हें राजसत्ताधारी नहीं बदल सकता। स्वभाव से तथा कानूनी शिक्षा-दीक्षा के कारण वह संविधानवादी था, इसलिए वह राज्य की प्राचीन संस्थाओं को बनाये रखना चाहता था। परन्तु यदि शासक सचमुच सर्वोच्च है, यदि राजनीतिक समाज का शासक तथा प्रजा के सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं हो सकता तो समझ में नहीं आता कि शासक को उन कानूनों को बदलने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए जिनके बनाने में उसका कोई हाथ न था। आगे चलकर हॉब्स ने ऐसा तर्क किया है इसके विपरीत, यदि राज्य एक ऐसा राजनीतिक समाज है जिसका अपना संविधान है और जिसके अपने काननू हैं जिन्हें शासक नहीं बदल सकता तो राजसत्ता तथा राजा को हमें एकरूप नहीं समझना चाहिए जैसा कि बोदाँ समझता

था। इस प्रकार सांविधानिक कानूनों के इस बाध्यकारी स्वभाव को स्वीकार करने के बोदाँ के सिद्धान्त में एक दूसरी कठिनाई उत्पन्न हो गई।

3.निजी सम्पत्ति की अपहरणीयता-

सम्प्रभुता के ऊपर तीसरा प्रतिबन्ध है निजी सम्पत्ति की अपहरणीयता। बोदाँ निजी सम्पत्ति को पवित्र समझता था, उसका विश्वास था कि शासक सम्पत्ति को उसके स्वामी की इच्छा के बिना नहीं छू सकता। तात्पर्य यह है कि साधारण समय में बिना सहमति के राजा को प्रजा के ऊपर प्रत्यक्ष कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। एक ओर तो यह मानना कि राजा को मनमाने कानून बनाने का अधिकार है और दूसरी ओर यह कहना कि उसकी कर लगाने की शक्ति बहुत सीमित है, ये दोनों धारणायें एक दूसरे के साथ संगतिबद्ध नहीं हो सकती। यह कहना कि शासक की कर लगाने की शक्ति सीमित है, स्वयं अपना ही विरोध करना है। इस सम्बन्ध में हमें बोदाँ द्वारा की गई राज्य की परिभाषा को याद रखना चाहिये कि राज्य परिवारों तथा उनकी सामान्य सम्पत्ति का एक समुदाय है। जिन इकाइयों से मिलकर राज्य बना है वे अपनी सम्पत्ति सहित परिवार है। इस प्रकार बोदाँ की प्रणाली में सम्पत्ति के अधिकार एक आधारभूत महत्व रखते हैं। यही कारण है कि बोदाँ सम्पत्ति को सम्प्रभुता के ऊपर एक स्वाभाविक प्रतिबन्ध समझता है।

यह स्वीकार करने से निजी सम्पत्ति का अधिकार आधुनिक कानून तथा प्राकृतिक कानून शासक की निरपेक्ष शक्ति को सीमित करते हैं। एक आधारभूत प्रश्न खड़ा होता है, यदि शासक इन सीमाओं का उल्लंघन करे तो क्या नागरिकों को उसकी अवज्ञा करने का अधिकार है? उस युग के इस प्रमुख प्रश्न का बोदाँ ने कोई सीधा उत्तर नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह विद्रोह को उचित नहीं समझता था। शायद उसका विचार यह था कि जैसे जैसे सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का विकास होता जायेगा, वैसे-वैसे वे प्राकृतिक कानून के अधिकाधिक अनुकूल होते जायेंगे जो कि उनके अनुसार कोई जटिल और कठोर विधि नहीं थी बल्कि अत्यन्त लचीली थी, नागरिकों का विद्रोह करना आवश्यक नहीं।

सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला और उसका विश्लेषण करने वाला बोदाँ सर्वप्रथम राजनीतिक दार्शनिक था। इसलिए यदि उसकी इस आधारभूत धारणा की विवेचना में कुछ असंगतियाँ आ गई हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उसका यह आग्रह ठीक ही है कि सम्प्रभुता को निरंकुश तथा अपरिमित होना चाहिए, परन्तु वह यह भी अनुभव करता है कि यदि राज्य के उद्देश्य को समुचित रूप से पूरा करना है तो राजसत्ता के प्रयोग करने वाले व्यक्ति के ऊपर कुछ प्रतिबन्ध लगने चाहिये। दूसरे शब्दों में, उसके विचार की प्रवृत्ति यह थी कि राज्य की निरंकुश राजसत्ता तथा राज्य के प्रधान की सीमित शक्तियों में और प्रभुसत्ताधारी क्राउन (Crown) रूपी संस्था में तथा उसे वहन करने वाले सीमित शक्तियों वाले राजा में भेद है। वह इस महत्वपूर्ण विभेद पर इसलिए नहीं पहुँच सका क्योंकि राज्य की प्रभुसत्ता तथा शासन की प्रभुसत्ता को एकरूप मान लेने में उसने बहुत जल्दबाजी से काम लिया।

7.8 राज्य एवं सरकार सम्बन्धी विचार

राज्य तथा सरकार में बोदाँ विभेद करता तहै। उसका विचार था कि इस विभेद के न करने के कारण ही अरस्तु तथा अन्य विचारकों के सिद्धान्तों में कुछ दोष आ गये हैं। उसने कहा कि राज्य तथा सरकार दोनों के कई रूप हैं। राज्य का रूप सम्प्रभुता के निवास स्थान से निर्धारित होता है। सरकार का रूप इस बात के ऊपर निर्भर करता है कि सम्प्रभुता का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। यदि किसी राज्य में सम्प्रभुता एक व्यक्ति में है तो वह राजतन्त्र है यदि वह कुछ व्यक्तियों में है तो वह कुलीनतन्त्र एक व्यक्ति में है तो वह समस्त जनसाधारण में है तो वह लोकतन्त्र है। सम्प्रभुता को

राज्य के विभिन्न तत्वों में विभाजित नहीं किया जा सकता, इसलिये बोदाँ मिश्रित राज्य की धारणा को स्वीकार नहीं करता। उसका यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है कि सरकार का रूप राज्य के रूप के ऊपर निर्भर नहीं करता। एक राजतन्त्री राज्य में एक कुलीनतन्त्री अथवा लोकतन्त्री सरकार का होना नितान्त सम्भव है। कुलीनतन्त्री सरकार वह होती है जिसके अन्तर्गत राज्य के सम्मान तथा पद एक छोटे से वर्ग के सदस्यों का ही प्रदान किये जाते हैं और सर्वसाधारण को उनमें वंचित रखा जाता है। जनतन्त्री सरकार वह होती है जिसके अन्तर्गत राज्य के सम्मान तथा पद बिना वर्गगत भेदभाव के गुण के आधार पर प्रदान किये जाते हैं। इस कसौटी के अनुसार ब्रिटेन की सरकार गत शताब्दी के मध्य तक कुलीनतन्त्री थी और आज वह जनतन्त्री है। संसद द्वारा प्रभुत्व प्राप्त करने से पूर्व इंग्लैण्ड एक राजतन्त्री राज्य था, आज वह जनतन्त्री है।

राज्य के तीन रूपों राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र तथा जनतन्त्र में से बोदाँ राजतन्त्र को, विशेष रूप से फ्रांसीसी ढर्रे के राजतन्त्र को सर्वश्रेष्ठ समझता था। क्योंकि उसके अनुसार राज्य की सर्वोच्च सत्ता को कुछ नागरिकों अथवा समस्त नागरिकों को सौंप देने से अराजकता आ जाने तथा प्रजा के नष्ट हो जाने का भय है। राजतन्त्र के इस मूल्यांकन को समझने के लिये हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि बोदाँ ने यह 16वीं शताब्दी के फ्रांस की परिस्थितियों में अपने राजनीतिक विचार प्रस्तुत किये थे।

7.9 सहिष्णुता सम्बन्धी विचार

'सहिष्णुता' ; वह विचार है जिसके लिए बोदाँ सुविख्यात है। उसने धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्त का प्रचार उस समय किया जबकि धार्मिक दमन अपनी चरम सीमा पर था और कैथालिकों तथा प्रोटेस्टेण्टों में निरन्तर संघर्ष चल रहा था। परन्तु सहिष्णुता को उसने एक नीति के रूप में अपनाया, सिद्धान्त के रूप में नहीं। एक ऐसे राज्य में, जहाँ की कैथालिकों तथा प्रोटेस्टेण्टों की बड़ी-बड़ी संख्यायें हों, सरकार की ओर से सम्पूर्ण समाज पर एक ही धर्म को लादने का परिणाम घातक होगा, उसमें गृह-युद्ध छिड़ेगा और राज्य दुर्बल हो जायेगा। इस संकट से बचने के लिये यही उचित है कि राज्य धार्मिक विश्वास की विभिन्नताओं को सहन करें। परन्तु बोदाँ राज्य में नागरिकों को सहन करने के लिये तैयार नहीं, क्योंकि उसके मतानुसार वे अच्छे नागरिक बन ही नहीं सकते। वह यह भी चाहता है कि राज्य नये-नये सम्प्रदायों को न पनपने दें क्योंकि उनसे सामाजिक अव्यवस्था फैल सकती है। इस प्रकार बोदाँ की सहिष्णुता पर बहुत सी सीमायें थीं। जहाँ धार्मिक दमन में सफलता मिलने की बड़ी आशा है, वहाँ वह उसकी अनुमति दे देता है।

7.10 क्रान्ति सम्बन्धी विचार

अपनी कृतियों में क्रान्ति के विषय में भी बोदाँ विचार व्यक्त करते हैं जो कि अरस्तु के प्रभाव का संकेत करता है। किन्तु वह उससे काफी आगे जाता है। बोदाँ का आरम्भ बिन्दु यह विश्वास है कि मानव प्राणियों की भाँति राज्यों में परिवर्तन होते हैं। वे बढ़ते हैं, परिपक्व होते हैं, क्षीण होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं। ये परिवर्तन अपरिहार्य है। इसलिये एक बुद्धिमान शासक को उन्हें केवल नियमित करने का प्रयत्न करना चाहिये, उन्हें रोकने का नहीं। ये परिवर्तन धीरे-धीरे तथा शान्तिपूर्वक हो सकते हैं अथवा अकस्मात् और हिंसात्मक हो सकते हैं। उनका प्रभाव कानून, धर्म, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के ऊपर पड़ सकता है या उससे भी आगे चलकर सम्प्रभुता के निवास स्थान को ही बदल सकता है। बोदाँ के अनुसार केवल उसी परिवर्तन को क्रान्ति कहा जा सकता है जिसके द्वारा राज्य का स्वरूप ही बदल जाता है जैसे कि राजतन्त्र का कुलीनतन्त्र अथवा लोकतन्त्र हो जाना या उसके विपरीत हो जाना।

क्रान्तियों के वह तीन प्रकार के कारण बतलाता है- दैविक, प्राकृतिक तथा मानवीय। दैविक कारण सदा अदृश्य तथा अज्ञात रहते हैं। प्राकृतिक कारणों का जिनमें कि नक्षत्रों का प्रभाव भी सम्मिलित है हम पता लगा सकते हैं। किन्तु मानवीय कारणों के विश्लेषण में ही बोदाँ ने राजनीतिक चातुर्य का परिचय दिया है। इनकी रोकथाम के प्रसंग में उसने शासन की प्रत्येक शाखा पर विचार किया है। उसने इस बात के बड़े मूल्यवान सुझाव दिये हैं कि नागरिकां के साथ सम्बन्ध में, अंगरक्षकों की नियुक्ति में, धार्मिक मतभेद के विषय में तथा अन्य बहुत सी बातों में शासक को कैसा आचरण करना चाहिए। वाद-विवाद की असीम स्वतन्त्रता तथा शस्त्र रखने का अधिकार उसे पसन्द नहीं। इसी प्रसंग में वह भौतिक परिवेश तथा राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उपरोक्त के जनता की सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के ऊपर प्रभाव के अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। क्रान्तियों के कारणों के इस संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि बोदाँ कोई समतावादी नहीं था, तथापित धनसम्बन्धी गहरी विषमताओं को वह राज्य के अन्दर विद्रोह का एक प्रमुख कारण समझता था। बोदाँ ने यह भी कहा कि शासक को कानून में बहुत जल्दी-जल्दी और बड़े-बड़े परिवर्तन नहीं करने चाहिये क्योंकि कानून में अत्यधिक हेर-फेर करने से क्रान्ति हो सकती है। बोदाँ के क्रान्ति सम्बन्धी विचारों पर टिप्पणी करते हुए मैक्सी ने कहा कि वह वास्तव में अनेक आधुनिक विचारकों से कहीं अधिक आधुनिक था।

7.11 राजा तथा प्रजा के बीच संविदा सम्बन्धी विचार

इकाई के अन्तिम पड़ाव पर बोदाँ के एक अन्य महत्वपूर्ण विचार का उल्लेख करेंगें। वह विषय है: प्रजा को दिये हुए वचन तथा सन्धियों का शासक को कहाँ तक पालन करना चाहिए? इस विषय का महत्व इसलिए है क्योंकि राजनीति तथा नीति के पारस्परिक सम्बन्ध पर इसका प्रभाव पड़ता है।

बोदाँ का कहना है कि शासक अपनी ली हुई शपथ तथा किये गये वादों से बाध्य नहीं है क्योंकि राजसत्ता को शपथ तथा वचन से परिमित नहीं किया जा सकता। परन्तु संविदा (ब्वदजतंबज) की बात दूसरी है। संविदा दो पक्षों के मध्य एक समझौता है और वह दोनों के लिये बाध्यकारी है। प्राकृतिक कानून का यह एक आदेश है कि संविदा का पालन होना चाहिए। इसलिये शासक को संविदा का पालन करना चाहिए। कानून राजसत्ता के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है किन्तु संविदा नहीं। इसी प्रकार वह मैकियावेली की इस धारणा का विरोध करता है कि शासक को दूसरे शासकों के साथ की हुई संधियों के पालन करने की आवश्यकता नहीं, यदि वे उसके हितों के विरूद्ध हों। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में शासकों के आचरण को संयत रखने की आवश्यकता को वह स्वीकार करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि मैकियावेली राजनीति को नीतिशास्त्र से अलग करने का आग्रह करता था तो बोदाँ उन दोनों को मिलाने के लिए उतना ही संकल्पबद्ध था।

7.12 बोदाँ तथा मैकियावेली आधुनिकता के अग्रदूत-एक तुलना

राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में मैकियावेली व बोदाँ दोनों को ही आधुनिकता के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जाता है किन्तु बोदाँ ने मैकियावेली के अनेक विचारों को विकसित किया, इस कारण वह उससे अधिक आधुनिक माना जाना चाहिए।

मैकियावेली ने मध्य युग की अनेक मान्यताओं और परम्पराओं का खण्डन किया। उसने राजनीति को व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया। आधुनिक युग की अनेक मान्यताएँ व सिद्धान्त आज भी उसकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं जैसे आधुनिक अध्ययन पद्धति का अनुसरण करना, राजनीति को नैतिकता से अलग करना आदि। इसी कारण

डनिंग का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ''यह कहना कि वह आधुनिक युग का प्रारम्भकर्ता है उसी प्रकार ठीक है जैसे यह कहना कि वह मध्ययुग को समाप्त करने वाला है। परन्तु यह भी ठीक ही है कि मैकियावेली के युग में बीज-रूप में जो विचार उत्पन्न हुए उनका विकास बोदाँ के ही युग में हो पाया। आधुनिकता के सम्बन्ध में दोनों की स्थिति निम्न आधार पर स्पष्ट हो जाती हैः-

1.अध्ययन पद्धति- मैकियावेली ने धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया और मध्यकालीन इतिहास के माध्यम से अपने परिणामों को पुष्ट करने का प्रयास किया। मगर उसने इतिहास का निष्पक्ष आलोचनात्मक अध्ययन नहीं किया बल्कि अपनी धारणाओं को पुष्ट करने के लिए इतिहास से विभिन्न प्रमाण खोजने का प्रयास किया: मैकियावेली द्वारा राज्य के सम्बन्ध में अनेक ऐसे नियमों का प्रतिपादन किया गया जो शासन के संचालन से ही सम्बन्धित थे, वे राज्य के मौलिक सिद्धान्तों की श्रेणी में नहीं आते। बोदाँ ने इस स्थिति में सुधार किया। उसने ऐतिहासिक पद्धति को व्यापक रूप में अपनाया। साथ ही साथ उसने विधि-शास्त्र में तुलनात्मक ऐतिहासिक अध्ययन की आधुनिक पद्धति का भी श्री गणेश किया। परिणामस्वरूप उसकी पद्धति अधिक वैज्ञानिक बन गयी।

2.प्रभुसत्ता- मैकियावेली का राज्य तो प्रभुता सम्पन्न है कि वह प्रभुता का स्पष्ट विवेचन नहीं करता। किन्तु बोदाँ ऐसा प्रथम विचारक था जिसने राज्य का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए प्रभुसत्ता की धारणा पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। प्रभुसत्ता की परिभाषा द्वारा उसने आधुनिक राजनीतिक चिन्तन को एक मौलिक धारणा प्रदान की। जार्ज केटलीन का मत है कि आधुनिक युग में 'सम्प्रभुता' (Sovereignty) का प्रयोग सबसे पहले बोदाँ ने अपने ग्रन्थ रिपब्लिक (Republic) में किया। प्रभुता-सम्पन्न शासक के बारे में बतलाते हुए उसने प्रभुसत्ता के तत्वों का भी वर्णन किया है। प्रभुसत्ता सम्बन्धी धारणा भी बोदाँ को मैकियावेली से अधिक आधुनिक बना देती है।

3.राज्य- मैकियावेली ने राज्य का कोई दर्शन प्रस्तुत नहीं किया, उसने राज्य के मौलिक तत्वों और सिद्धान्तों की उपेक्षा की। किन्तु बोदाँ ने राष्ट्र-राज्य की कल्पना का एक विकसित चित्र प्रस्तुत किया। इस प्रकार मध्यकाल के सार्वभौम साम्राज्य की कल्पना का अन्त करके राष्ट्रीय राज्य को राजनैतिक मानचित्र पर लाने का श्रेय बोदाँ को ही है। इसके साथ ही सम्प्रभुता का सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में उसकी मौलिक देन है।

4.नागरिकता- मैकियावेली नागरिकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त नहीं करता। जबकि इस आधुनिक धारणा पर बोदाँ अपने स्पष्ट विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि नागरिक वह स्वतन्त्र व्यक्ति है जो कि राज्य की प्रभु शक्ति के अधीन है। यह धारणा भी बोदाँ को मैकियावेली की तुलना में अधिक आधुनिक बनाती है।

5.नैतिकता और राजनीति- मैकियावेली ने राजनीति का नैतिकता से पृथक्करण किया। उसने राज्य को धर्म और नैतिकता दोनों से ही ऊपर उठाया। यह भी कहा जा सकता है कि उसने नैतिकता की भावना को तो लगभग त्याग ही दिया। बोदाँ ने इस क्षेत्र में अधिक तर्क संगत मार्ग अपनाया। उसने भी राजनीति को धर्म से पृथक किया मगर धर्म और नैतिकता को व्यक्तियों अथवा राज्य के लिए एक विजातीय वस्तु नहीं बनने दिया। उसने राज्य को धर्म का संरक्षक भी बनाये रक्खा और धार्मिक सहिष्णुता का आधुनिक विचार भी प्रदान किया। इस प्रकार बोदाँ ने मैकियावेली की अति और त्रुटि में सुधार किया। बोदाँ ने मध्य मार्ग अपनाया जिसमें उसे यह विश्वास था कि यह सच्चाई है।

6.भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव- प्लेटो और अरस्तु ने राजनीति पर भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव को स्वीकार तो किया था परन्तु इस पर विस्तार से विचार नहीं किया। परन्तु इस सन्दर्भ में बोदाँ ने विस्तार से प्रकाश डाला। प्रो0 डनिंग के अनुसार भौगोलिक स्थिति के सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभाव का बोदाँ का वर्णन सच्चे

अर्थों में वैज्ञानिक है और इसमें बोदाँ मौलिकता का दावा कर सकता है। मैकियावेली ने इस विषय में वर्णन तक नहीं किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बोदाँ ने मैकियावेली के बीज रूप में उपलब्ध विचारों को विकसित किया और विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मौलिकता और सूझ-बूझ का परिचय दिया। अतः कहा जा सकता है कि बोदाँ मैकियावेली की अपेक्षा अधिक आधुनिक था। किन्तु यह भी ठीक है कि बोदाँ अपने आपको मैकियावेली के समान मध्ययुगीन प्रभाव से मुक्त न रख सका जिसके कारण उसके विचारों में विरोधाभास दिखायी देता है।

अभ्यास प्रश्न

1.बोदाँ का जन्म किस देश में हुआ था?

a. फ्रांस b. ब्रिटेन c. जर्मनी d. भारत

2. बोदाँ अपने विचारों में मध्यकालीन तो नहीं रहा, किन्तु आधिनिक भी नहीं हो पाया। किसका कथन है-

.a लास्की b. सेबाइन c. मैकाइवर d. गार्नर

3. निम्न में से कौन सा ग्रन्थ बोदाँ द्वारा लिखित है-

a. सिक्स लिवर्स डि-लॉ-रिपब्लिक b. यूनिवर्स नेचर थियेड्रम

c. हेप्टाप्लोमर्स d. उपरोक्त सभी

4. निम्न में से बोदाँ द्वारा लिखित ग्रन्थ कौन सा है-

A. रेसपॉन्स b. डेमीनोमैनी

c. उपरोक्त दोनों d. उपरोक्त दोनों नहीं

5. 'संप्रभुता' के सिद्धान्त का जनक कौन है-

a. हॉब्स b. मैकियावली c. बोदाँ d. लॉक

7.13 सारांश

निष्कर्षः हम कह सकते हैं कि यद्यपि बोदाँ का दर्शन भले ही प्रथम श्रेणी की कोई दार्शनिक संरचना नहीं थी किन्तु उन्होंने राजनीतिक चिन्तन के विकास को बड़ी हद तक प्रभावित किया था। बोदाँ ने मैकियावली के अधूरे कार्य को पूरा किया। मैकियावली के बीज रूप में उपलब्ध विचारों को विकसित किया और उनके विकास को करते समय उसने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मौलिकता और सूझ-बूझ का परिचय भी दिया। अतः कहा जा सकता है कि बोदाँ

मैकियावली की अपेक्षा अधिक आधुनिक था किन्तु यह भी ठीक है कि बोदाँ अपने आपको मैकियावली के समान मध्यकालीन प्रभाव से मुक्त न रख सका, जिसके कारण उसके विचारों में विरोधाभास भी दिखाई देता है। इस तरह स्पष्ट होता है कि बोदाँ का सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन प्राकृति विधि के सिद्धान्त पर आधारित था।

7.14 शब्दावली

1. सम्प्रभुता- सम्प्रभुता राज्य का निर्माण करने वाले तत्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में यही वह कसौटी है जिसके द्वारा राज्य एवं अन्यान्य समुदायों के बीच भेद प्रकट होता है। सम्प्रभुता का तात्पर्य राज्य की उस सर्वोच्च शक्ति से है जो आदेश दे सकती है और उनका पालन करा सकती है। सम्प्रभुता के दो पहलू होते हैं-आंतरिक और वाह्य। आंतरिक रूप से राज्य सर्वोच्च होता है और वाह्य रूप से स्वतंत्र। राज्य के अन्दर निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति एवं समुदाय के लिये आवश्यक है कि वह राज्य के आदेशों को शिरोधार्य करें। राज्य अपने से बाहर किसी शक्ति के आश्रित नहीं होता है।

2.नागरिकता- व्यक्ति तथा राज्य के बीच वैधिक सम्बन्ध जिसके आधार पर व्यक्ति की राज्य के प्रति निष्ठा होती है तथा राज्य व्यक्ति की रक्षा करता है। इस सम्बन्ध का निर्धारण राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत होता है और इसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त होती है।

3.क्रान्ति- अंग्रेजी का ''रेवोल्यूशन'' शब्द लैटिन के ''रेवोलूशियो'' से बना है जिसका अर्थ है सर्वाधिक प्रत्यावर्त्तन या नवीकरण। राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में ''रेवोल्यूशन'' शब्द को बल प्रयोग द्वारा राजनीतिक निर्णय की स्थितियों पर अधिकार करने के लिये और समाज की संरचना में आधारभूत परिवत्रन करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। ''विप्लव'' और ''विद्रोह'', ''क्रान्ति'' से मिलते जुलते शब्द हैं जिनका तात्पर्य प्रायः असफल क्रान्ति से है।

7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. a 2. b 3. d 4. c 5. c

7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीति दर्शन का इतिहास-जॉर्ज एच0 सेबाइन

2.पॉलिटिकल थ्योरीज, एनसिएन्ट एण्ड मेडीवल-डनिंग

3.मास्टर्स ऑफ पॉलिटिकल थॉट- डब्ल्यू0 टी0 जोन्स

4.पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास-डा0 प्रभुदत्त शर्मा

5.राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा-ओ0पी0 गाबा

7.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.राजनीति-कोश- डा0 सुभाष कश्यप एवं विश्वप्रकाश गुप्त

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक- आर0एम0 भगत

7.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. बोदाँ के प्रभुसत्ता सिद्धान्त को विकसित कीजिए और उसका आलोचनातमक परीक्षण कीजिए।
2. बोदाँ का आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के प्रति योगदानों का उल्लेख करिए।
3. राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में आधुनिक युग के आविर्भाव की सूचना मैकियावली नहीं बल्कि बोदाँ देता है। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं।

इकाई -8 टॉमस हॉब्स

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 जीवन चरित्र, कृतियाँ
8.4 मानव स्वभाव
8.5 प्राकृतिक अवस्था
8.6 प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक नियम
8.7 आत्मरक्षा की प्रकृति
8.8 राज्य की उत्पत्ति तथा उसकी प्रकृति
8.9 प्रभुसत्ता
8.10 नागरिक कानून
8.11 राज्य और चर्च
8.12 व्यक्तिवाद
8.13 आलोचना
8.14 सारांश
8.15 शब्दावली
8.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.19 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व की इकाई में हमने बोंदा के राजनीतिक विचारों का अध्ययन किया है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि बोदाँ का दर्शन भले ही प्रथम श्रेणी की कोई दार्शनिक संरचना नहीं थी किन्तु उन्होंने राजनीतिक चिन्तन के विकास को बड़ी हद तक प्रभावित किया था। बोदाँ ने मैकियावली के अधूरे कार्य को पूरा किया। मैकियावली के बीज रूप में उपलब्ध विचारों को विकसित किया और उनके विकास को करते समय उसने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मौलिकता और सूझ-बूझ का परिचय भी दिया। अतः कहा जा सकता है कि बोदाँ मैकियावली की अपेक्षा अधिक आधुनिक था किन्तु यह भी ठीक है कि बोदाँ अपने आपको मैकियावली के समान मध्यकालीन प्रभाव से मुक्त न रख सका, जिसके कारण उसके विचारों में विरोधाभास भी दिखाई देता है। इस तरह स्पष्ट होता है कि बोदाँ का सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन प्राकृति विधि के सिद्धान्त पर आधारित था।

अब हम इस इकाई में हाब्स की राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेंगे जिसमे हम यह देहेंगे कि किस प्रकार से हाब्स ने राज्य की उत्पत्ति का सामाजिक समझौते का सिद्धांत दिया है जिसमें उसने राज्य को एक साधन के रूप में स्थापित किया और उसे उपयोगिता के स्तर पर ले गया।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम -

1.हाब्स की राजनीतिक विचारों के बारे में जान सकेंगे।

2.राज्य की उत्पत्ति का सामाजिक समझौते का सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे।

3.व्यक्तिवादी विचार के सम्बन्ध में भी जान सकेंगे।

4. हाब्स के प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक अधिकार के सम्बन्ध में भी जान सकेंगे।

8.3 जीवन चरित्र, कृतियाँ

हाब्स का नाम राज्य की उत्पत्ति के समझौतावादी विचारकों में प्रमुखता से लिया जाता है। इस सिद्धान्त का समर्थन सर्वप्रथम सोफिस्ट विचारकों ने किया था। हाब्स का जन्म 5 अप्रैल सन् 1588 को इग्लैण्ड के माजम्बरी नगर में हुआ था। इग्लैण्ड की गृहयुद्ध जनित स्थिति से डरकर वह फ्रान्स चला गया। यही पर उसने 'लेवियाथन' की रचना की। हॉब्स के विचारों को स्वागत इग्लैण्ड में 1650 में पुनः राजतन्त्र की स्थापना के बाद किया जाने लगा। क्योंकि हॉब्स अपनी लेखनी में अराजक स्थिति से निबटने के लिए राजतंत्र का समर्थन करता है। 1679 में उसका निधन हो गया। हाब्स के द्वारा निम्नलिखित पुस्कों की रचना गई है ----

Decive – 1642, De- corpora – 1642, Leviathan – 1651, Elements of Law – 1650,

8.4. मानव स्वभाव

- राज्य की उत्पत्ति के समझौतावादी सिद्धान्त के प्रतिवादन के क्रम में हॉब्स सर्वप्रथम मानव स्वभाव का चित्रण करता है। चूँकि गृहयुद्ध जनित और अराजक स्थिति को देखकर हॉब्स ने मानव स्वभाव के बुरे पक्ष का ही एहसास किया। इसलिए उसने मनुष्य को स्वभाव से असामाजिक प्राणी माना है। हाब्स मानता है मनुष्य अपनी दृष्टि और उसकी जरूरतों के अनुसार वस्तुओं को अच्छा या बुरा कहता है। मनुष्य का प्रत्येक व्यवहार स्वार्थ से प्रेरित होता है उसी से वह संचालित होता है। हाब्स के अनुसार प्रकृति ने सभी मनुष्यों को शारीरिक शक्तियों और बुद्धि में समान बनाया है। इसलिए किसी एक वस्तु की मांग कोई एक करता है तो उसी प्रकार के अन्य भी करते है। चूँकि वस्तुओं की संख्या सीमित है संघर्ष प्रारम्भ होता है। परिणामस्वरूप कभी न रूकने वाला संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इन झगड़ों के पीछे हॉब्स तीन प्रमुख कारण मानता है-

1- प्रतिस्पर्द्धा 2- पारस्परिक अविस्वास 3- वेभव

हॉब्स के अनुसार चूँकि मनुष्य स्वार्थी है। इसलिए पारस्परिक संबंधों के सहयोग को कोई स्थान नहीं है। यदि है तो वह उसी सीमा तक जहाँ तक वह स्वार्थ सिद्धि सहायक है।

8.5 प्राकृतिक अवस्था

मानव स्वभाव के चित्रण के उपरान्त हाब्स प्राकृतिक अवस्था की विवेचना करता है और वह कहता है कि प्राकृतिक अवस्था पूर्व सामाजिक अवस्था है। जिसमें जीवन में सहयोग न होकर हिंसा प्रधान है। यह अवस्था जिसकी लाठी उसकी भैंस की है जिसमें अपने हितों की सिद्धि के लिए बल प्रयोग में विश्वास करते है। इस प्रकार से यह अवस्था प्रत्येक का प्रत्येक के विरूद्ध युद्ध की अवस्था हो जाती है। इस अवस्था में सभी के पास अपनी रक्षा के लिए अपनी चालाकि और शक्ति है। जो कि सभी में समान है। इसलिए इस अवस्था में संघर्ष भया वह होता है। जहाँ किसी की कोई सम्पत्ति नहीं होती, न ही इस असुरक्षित वातावरण में कोई उद्योग धन्धे संभव हैं। इस प्रकार हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था की तीन प्रमुख विशेषताएं दृष्टिगोचन होती है -

1- नैतिकता का अभाव

2- न्याय, अन्याय की धारणा का अभाव

3- अनवरत संघर्ष की अवस्था होने के कारण सम्पत्ति का अभाव।

यहाँ एक तथ्य यह स्पष्ट करना नितांत आवश्यक है कि हॉब्स इस प्रकार के किसी प्राकृतिक अवस्था के ऐतिहासिक का दावा नहीं करता हैं। उसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि राजशक्ति के अभाव में लोगों के जीवन में इसी प्रकार की असुरक्षा और समाज में संघर्ष की स्थिति बनी रह सकती है इसलिए ऐसा अराजक और हिंसक स्थिति (जो कि ग्रहयुद्ध जनित वातावरण में दिखाई देता है) के निरक्षण के लिए एवं शक्तिशाली राजसत्ता का होना आवश्यक है।

8.6 प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक नियम

हॉब्स अपने समझौतावादी सिद्धान्त के प्रतिदान के क्रम में जिस प्राकृतिक अवस्था की कल्पना करता है उस अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के पास कुछ भी प्राप्त करने का समान प्राकृतिक अधिकार देता है। परिणामस्वरूप प्रत्येक के विरूद्ध प्रत्येक के मूह का कारण प्राकृतिक अधिकार ही होता है। परन्तु प्राकृतिक अवस्था में भी व्यक्ति सुरक्षित जीवन जीने की लालसा रखते हुए, बुद्धि द्वारा कुछ नियम बना लेते है। इन प्राकृतिक नियमों को हॉब्स शान्ति की धाराएं कहता है। हॉब्स ने प्राकृतिक नियम को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''यह वह नियम है जो विवके द्वारा खोजा गया है, जिसके द्वारा मनुष्य के लिए वे कार्य प्रतिबंधित हैं जो उसके जीवन के लिए विनाशप्रद है और जिनके द्वारा उनको उन कार्यों को करने से कोई प्रतिबंध नहीं है, जो जीवन की रक्षा में सहयोग देते हैं। '' इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राकृतिक अधिकार प्राकृतिक अवस्था में अनवरत संघर्ष की स्थिति पैदा करते हैं तो , प्राकृतिक नियम, प्राकृतिक अवस्था के इस संघर्ष और अराजकता की स्थिति से उनकी रक्षा करते हैं। हॉब्स ने कुल 19 प्राकृतिक नियमों का उल्लेख किया है। जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-

8.7 आत्मरक्षा की प्रकृति

चूँकि हाब्स अपने राज्य की उत्पत्ति के समझौतावादी सिद्धान्त में प्राकृतिक अवस्था का चित्रण करता है। और वह प्राकृतिक अवस्था ऐसी है जिसमें प्रत्येक के विरूद्ध युद्ध जैसी है। ऐसी स्थिति में हॉब्स के सामने सर्वप्रमुख प्रश्न आत्मरक्षा का है। जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके है कि हाब्स ऐसी किसी प्राकृतिक अवस्था का ऐतिहासिक दावा तो नहीं करता है परन्तु यह स्पष्ट है कि उसके ऐसा कहने का तात्पर्य यह कि गृहयुद्ध जनित अवस्था या राज्यहीन व्यवस्था होने पर आत्मरक्षा का सवाल सर्वप्रमुख प्रश्न के रूप में सामने आता है। इसीलिए हाब्स ने आत्मरक्षा के सवाल पर विस्तार चर्चा की है। इसी क्रम में हॉब्स कहता है कि मनुष्य की मूलप्रकृति उसकी सुरक्षा की इच्छा है जिसके लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहता है। तथा जो तथ्य इसमें सहायक होता है उसे वह अच्छा और जो सहायक नहीं होता है उसे बुरा कहता है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि मनुष्य अनवरत सुरक्षा की जरूरत महसूस करता हैं। इसी लिए वह अन्य सभी उपलब्धियाँ अर्जित करना चाहता है जिससे वह अपने सुरक्षा संबंधी चिन्ताओं का निराकरण कर सके। इसलिए किसी मनुष्य के लिए अन्य मनुष्यों का वहीं तक महत्व है जहाँ तक वह उसकी सुरक्षा संबंधी विषयों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

हॉब्स मानव स्वभाव के दो पक्षों अभिलाषा और विवके की विस्तार से चर्चा करता है और कहता है कि अभिलाषा के कारण कोई मनुष्य सभी वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है, जिसकी चाहत अन्य लोग रखते है। चूँकि सभी शक्ति और बुद्धिमत्ता में समान है। इसलिए संघर्ष शुरू हो जाता है। जबकि विवेक के कारण मनुष्य आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को महत्व देता है, जिससे वह शान्ति स्थापना पर बचन देता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ संकीर्ण अभिलाषा संधर्ष को बढ़ाती है वही विवेकपूर्ण स्वार्थ शान्ति स्थापना के लिए आधार तैयार करने का कार्य करता है।

हॉब्स कहता है कि चूँकि समाज में लोग विवेक के नियमों के अनुसार कार्य नहीं करते है वरन वे क्षणिक उद्वेगों से प्रेरित होकर आचरण करते है इसलिए मनुष्य अपने उद्वेगों को नियंत्रित करने की स्थिति में नहीं होता है। इसलिए हॉब्स कहता है कि एक ऐसी सर्वशक्तिशाली, प्रभुत्व सम्पन्न सत्ता की आवश्यकता है जो मनुष्य को विवेक के अनुरूप् आचरण करने के लिए विवश कर सकें परन्तु ऐसा होने के लिए आवश्यक है कि शासन प्रभवशाली हो, क्योंकि प्रभावशाली शक्ति सम्पन्न शासन पर ही सुरक्षा निर्भर करती है।

8.8 राज्य की उत्पत्ति तथा उसकी प्रकृति

हॉब्स मानता है कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी और संघर्षशील है। वह स्वभाव से शांतिपूर्ण रहने वाला नहीं है। इसलिए एक ऐसी सत्ता की आवश्कता होती होती हो जो उसे विवेक के अनुसार आचरण करने के लिए बाध्य कर सके तथा उल्लंघन पर दण्ड भी दे सके। हॉब्स मानता है कि ऐसी सत्ता केवल राज्य में ही संभव है जो सभी व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है और सभी को विवेक के अनुसार आचरण करने के लिए बाध्य कहर सकती है। तथा इसका उल्लंघन करने वाले को दण्डित भी कर सकती है। अन्ततः हॉब्स यह कहता है कि यह राज्य अपने अस्तित्व में सामाजिक समझौते के फलस्वरूप आता है।

यह समझौता सभी व्यक्तियों के बीच इस प्रकार से होता है कि जैसे हर एक व्यक्ति ने हर एक व्यक्ति से कहा हो कि ‘‘मैं इस व्यक्ति को या व्यक्तियों के समूह को अपना शासन, स्वयं कर सकने का अधिकार और शक्ति इस शर्त पर समर्पित करता हूँ कि तुम भी अपने इस अधिकार को किसी तरह (इस विशेष व्यक्ति या व्यक्ति समूह) समर्पित कर दो।

इस प्रकार सम्पूर्ण समुदाय एक व्यक्ति या समूह में संयुक्त हो जाता है सत्ता प्रयोग के संदर्भ में, इसे हाब्स राज्य (commonwealth) या लैटिन में सिविटास (Civitas) कहते है। हाब्स के अनुसार यही वह लेवियावन या महान देवता है जो हमें शान्तिपूर्ण और सुरक्षित जीवन प्रदान करता हैं इस प्रकार के समझौते से उत्पन्न सम्राट या प्रभुसत्ता (सर्वोच्चसत्ता) समझौते में कोई वचन नहीं देती है जिसका परिणाम यह होता है कि शासन व्यवस्था खराब होने के बाद भी जनमानस को शासन के विरूद्ध बोलने या विद्रोह का अधिकार नहीं होता है। क्योंकि यही शासन है जो शान्तिपूर्ण और सुरक्षित जीवन प्रदान करता है। जिसके विरूद्ध जाने का मतलब है प्राकृतिक अशान्त व्यवस्था में जाना।

उपरोक्त विवेचन के आधर पर हॉब्स के राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएं है:-

1- हॉब्स का यह समझौता सिद्धान्त सामाजिक और राजनीतिक दोनों है यह सामाजिक इसलिए है कि सभी लोग अपन व्यक्तिगत मनोवृत्त को त्यागकर एक साथ सामाजिक बन्धन को स्वीकार करते है जबकि राजनीतिक इसलिए है कि इसके फलस्वरूप सर्वशक्तिमान राजसत्ता की उत्पत्ति होती है।

2- इस समझौते में सम्प्रभु शामिल नहीं है। इसलिए यह सरकारी समझौता नहीं है क्योंकि यह समझौता तो व्यक्तियों के मध्य होता है।

3- सम्प्रभु की सत्ता असीमित है अभर्यादित है क्योंकि वह समझौते अंग नहीं है वरन समझौते का परिणाम है वह किसी प्रकार की शर्तो से बधा नहीं है इसलिए वह निरंकुश भी है।

4- एक बार समझौता हो जाने पर उससे अलग होने का अधिकार किसी को नहीं है। इस समझौते के बाद किसी भी व्यक्ति के कोई अधिकार व स्वतंत्रता नहीं होती है क्योंकि समझौते के समय सभी ने अपने अधिकार और स्वतंत्रता का त्याग किया है। इसलिए उन्हें निरंकुश सत्ता के विरूद्ध किसी प्रकार के दावे को रखने का कोई अधिकार नहीं है।

5- समप्रभुत्ता विभाजित नहीं है। क्योंकि यह समझौते का परिणाम है वह सम्प्रभु चाहे एक व्यक्ति हो या व्यक्तियों का समूह।

7- चूँकि सम्प्रभुत्ता अभर्यादित, अविभाज्य है। इसीलिए वह विधियों का स्रोत भी है। उसका आदेश ही कानून है। किसी भी विशेष पर अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार सम्प्रभुसत्ता को ही है। युद्ध की घोषणा और सन्धि करने का अधिकार केवल इसी को है।

यद्यपि हॉब्स ने सम्प्रभुसत्ता को अमर्योदित और निरंकुश सत्ता सम्पन्न बताया। जिसके विरूद्ध जाने का अधिकार जनमानस को नहीं है परन्तु कुछ स्थितियों में हॉब्स ने राजा के आदेश की अवहेलना करने का अधिकार प्रदान करता है। हॉब्स कहता है कि यदि राजा व्यक्ति को अपने आपको मारने, घायल करने या जीवन रक्षक उपमाओं को प्रयोग करने का आदेश दे तो ऐसी आज्ञाओं का उल्लंघन करने का अधिकार है। क्योंकि शासन को जनमानस सुरक्षा की आवाश्यकता की पूर्ति के लिए ही स्वीकार करते है। इस प्रकार से हॉब्स अपने राज्य के सिद्धान्त की चरमव्याख्या में व्यक्तिवादी हो जाता और राज्य को उपयोगिता के स्तर पर ले जाता है जो कि कृतिम संख्या है, जिसे जनता ने अपनी आत्म रक्षा के लिए बनाया है।

8.9 प्रभुसत्ता

हॉब्स के प्रभुसत्ता के सि़द्धान्त को समझने के लिए यह आवश्यक है उसके समझौते वादी सिद्धान्त को समग्रता में समझने का प्रयास किया जाए। यहाँ यह पुनः बताना आवश्यक है कि चूँकि समझौते सिद्धान्त में जिस अराजक प्राकृतिक अवस्था की कल्पना हॉब्स करता है। उससे निजात पाने के लिए सभी ने एक दूसरे से किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह को अपने ऊपर शासन करने की सत्ता सौंप दी। इसके फलस्वरूप सम्प्रभुसत्ता की उत्पत्ति होती है जो स्वयं समझौते का अंग न होने के कारण किसी प्रकार से मर्यादित नहीं है। उस पर किसी प्रकार को कोई बन्धन नहीं है इस प्रकार से स्पष्ट है कि हॉब्स सम्प्रभुसत्ता का प्रबन्ध समर्थक था उसका सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न शासक पूर्णतः निरंकुश है। उस पर किसी भी प्रकार की कोई मर्यादा नहीं है। उसने उन सभी मर्यादाओं को समाप्त कर दिया जिसे बोंदा ने सम्प्रभुता पर आरोपित किये थे।

हॉब्स के अनुसार सम्प्रभुता सभी कानूनों का स्रोत है। क्योंकि वही शान्ति व्यवस्था और सुरक्षा के लिए उत्तरदायी हैं। क्योकि ऐसी सत्ता समझौते के दौरान लोगों ने उसे दी है। सम्प्रभुत्ता निरपेक्ष है उसे जनसाधारण पर असीमिति अधिकार प्राप्त है जो किसी भी मानवीय शक्ति से मयादित नहीं है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि वह प्राकृतिक कानूनों के भी अधीन नहीं क्योंकि वे तो कानून न होकर विवेक के आदेश है।

हॉब्स ने अपने सम्प्रभुता के सिद्धान्त शक्ति के विभाजन तथा नियंत्रण और सन्तुलन के सिद्धान्त को कोई महत्व नहीं पदान किया है क्योंकि वह मानता है कि सभी सत्ता का स्रोत स्वयं सम्प्रभु है तो सत्ता का विभाजन कैसे।

हॉब्स ने, बोंदा द्वारा सम्प्रभुता पर सम्पत्ति संबंधी अधिकार का बंधन अस्वीकार किया क्योंकि सम्पत्ति का सृजनहार भी वह सम्प्रभुता को ही मानता है क्योंकि बिना शांति और सुरक्षा के सम्पत्ति का सृजन संभव नहीं है। इसलिए संपत्ति के संबंध में कानून निर्माण का अधिकार भी सम्प्रभु को ही है।

इसके आगे हॉब्स कहता है कि सम्प्रभु के अधिकार बदले नहीं जा सकते (अपरिवर्तनीय) किसी को दिये नहीं जा सकते (अदेय) इनका विभाजन नहीं किया जा सकता (अभिभाज्य) है। ऐसा करना सम्प्रभुता को नष्ट करना होता है जिसका परिणाम होगा पुनः असुरक्षा का वातावरण जो कोई भी नहीं चाहेगा। अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते है कि हॉब्स के सम्प्रभुता के सिद्धान्त में विरोधामास है। वह यह कि एक तरफ तो वह सम्प्रभुता को अभिभाज्य, अमर्यादित और हस्तान्तरणीय बताता है तो दूसरी तरफ वह जनमानस को सम्प्रभु के ऐसे आदेश का उल्लंघ करने की शक्ति प्रदान करता है जो उसकी आत्मरक्षा के विपरित है। साथ ही यह भी दुविधा है कि यह निर्णय कौन करेगा कि अब ऐसी स्थिति आ गई है। जब विरोध किया जा सकता है।

बोंदा की भॉति हॉब्स ने भी सम्प्रभुता के निवास के आधार पर ही शासन प्रणाली का वर्गीकरण किया है।

प्रभुसत्ता का निवास	शासन का स्वरूप
एक व्यक्ति में	राजतंत्र
कुछ व्यक्तियों में	कुलीनतंत्र
सब लोगों में	लोकतंत्र

हॉब्स कहता है कि मिश्रित एवं सीमित शासन प्रणाली की बात करना व्यर्थ है क्योंकि प्रभुसता अभिभाज्य अपरिवर्तनीय और उद्देश्य है।

यहाँ पर यदि हम हॉब्स और बोदा के प्रभुसत्ता सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो यह पाते हैं कि बोंदा ने अपने प्रभुसत्ता सिद्धान्त में प्रभुसत्ता पर कई प्रतिबंध आरोपित किये है। जैसे ईश्वरीय नियम, प्राकृतिक नियम और राज्य के मूलभूत नियम। परन्तु हॉब्स ने अपने सम्प्रभु पर ऐसे किसी प्रतिबंध को आरोपित नहीं किया है जो आरेपित किये भी है वह बंधन वैधानिक नहीं है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि बोंदा के सम्प्रभु की तुलना में हॉब्स का सम्प्रभु अधिकार सम्पन्न है।

8.10 नागरिक कानून

हॉब्स कानून को सम्प्रभु का आदेश कहता है। और इन विधियों में को ही परम्परा या रीति प्रदान नहीं है, प्रधान है तो वह है सम्प्रभु की इच्छा। यही नहीं उस सम्प्रभु में अपनी इच्छा से निर्मित कानून को पालन करने की शक्ति भी निहित है। इसकी इच्छा से निर्मित किसी भी विधि को नैतिक मानदण्डों पर नहीं परखा जा सकता है। क्योंकि ये विधियाँ ही व्यवहार की मानदण्ड तय करती है।

हॉब्स ने विधि के दो प्रकार स्वीकार किये है

1- वितरणात्मक या निषेधात्मकः- इसके अंतर्गत नागरिकों के वैधानिक या अवैधानिक कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

2- अज्ञात्मक या दण्डात्मकः- इसके अंतर्गत एक तरफ निर्देश होते है जिनका पालन अनिवार्य होता हे जिनके उल्लंघन की दशा में दण्ड का प्रावधान भी होता हैं।

हॉब्स प्राकृतिक विधि और विधि में अन्तर भी करता है। वह कहता है कि विधि तो सम्प्रभु का आदेश है सम्प्रभु ही ऐसी विवियों का स्रोत भी है। और व्याख्याकार भी है। जबकि प्राकृतिक विधि विवेक का आदेश है। इसके पीछे कोई दण्डात्मक शक्ति नहीं होती जबकि विधि के पीछे दण्डात्मक शक्ति होती है जिसका पालन न किया जाने की स्थिति में उल्लंघनकर्ता, उल्लंघन कही मात्रा तक दण्ड का पात्र होगा।

यहाँ एक सवाल उठता है कि यदि सम्प्रभु का आदेश ही कानून है जिसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता यह आज के लोकतान्त्रिक युग में कहाँ तक सम्भव है। इसका उत्तर शायद नहीं ही होगा। क्योंकि किसी भी लोकतान्त्रिक देश में अन्तिम सत्ता में निहित होती है। जिसे नियतकान्त्रिक चुनाव के आधार पर प्रभुसत्ता के परियोग करने वाले को बदलने का अधिकार प्राप्त होता है।

इसके साथ ही हॉब्स सम्प्रभु के उन आदेशों की अवहेलना करने का अधिकार जनता को प्रदान करता है। जो उसकी आत्मरक्षा के विरूद्ध हो।

इसके आगे हॉब्स सम्प्रभु को अधिक कानूनों के निर्माण न करने की बात करता है। क्योंकि इससे उनके अनुपालन को सुनिश्चित करने में अनेकानेक समस्या उत्पन्न होगी इस प्रकार हम देखते है कि एक तरफ कानून को सम्प्रभु का आदेश मानता है, जिसे सम्प्रभु सद्विवेक की अभिव्यक्ति कहता तो दूसरी तरफ आत्मरक्षा हेतु तलवार उठाने तक की अनुमति जनता को देता है। इस प्रकार हॉब्स का सम्प्रभुता सिद्धान्त में निरपेक्षता का पुट जितना दिखाई देता है, उतना है नहीं। हॉब्स के सम्प्रभुता सिद्धान्त में जो निरंकुशता दिखाई देती है वह भी उपयोगिता के कारण है और उपयोगिता है आत्मरक्षा जनमानस। इस प्रकार हॉब्स के इस निरंकुश प्रभुसत्ता में उदारवादी तत्व निहित प्रतीत होते है।

8.11 राज्य और चर्च

जैसा कि हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके है कि हॉब्स सर्वशक्तिशाली, प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य का समर्थन करता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि वह राज्य के समान्तर किसी भी ऐसी सत्ता को स्वीकार नहीं कर सकता जो राज्य सत्ता को चुनौती दे। जैसा कि तत्कालीन समय में उसने यह देखा कि पादरी और पोप के दावे ऐसे थे कि यदि

उन्हें छुट दी जाती तो वे धार्मिक क्षेत्र से बाहर जाकर शासकों को पदच्युत करने की सत्ता भी अपने हाथ में केन्द्रित करना चाहते थे। इसलिए हॉब्स ने स्पष्ट रूप से कहा है कि चर्च, राज्य के समकक्ष सत्ता न होकर उसके अधीन है। क्योंकि उस समय वह देख रहा था कि किस प्रकार से तत्कालीन पादरी और पोप ने समाज में अव्यवस्थाएं फैला रखी थी।

इसलिए हॉब्स धार्मिक सत्ता को, राजसत्ता के अधीन मानता है राज्य में सम्प्रभु ही सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्ता भी है, विशेय उसकी अनुकम्पा से ही आध्यात्मिक सत्ता प्राप्त करते हैं। हॉब्स इसके आगे कहता है कि जब निर्णय का आधार बुद्धि न होकर आलौकिक अनुभूति हो तो समाज में अराजकता का वातावरण होता है। इसीलिए हॉब्स ने चर्च को अंधकार का राज्य कहा है।

हॉब्स कहता है कि धर्म का आधार अदृष्ट शक्ति के प्रतिमय है। इसका फायदा आध्यात्मिक जगत उठाता है। अतः राज्य का दायित्व है कि अपने लोगों की इस भय की स्थिति से रक्षा करें। इस प्रकार हॉब्स ने चर्च को पूरी तरह से राजसत्ता के अधीन कर दिया है। यहाँ पर मार्सिलियों ऑफ पड़ुवा का जिक्र करना आवश्यक है कि इन्होंने आध्यात्मिक सत्ता और लौकिक सत्ता को पृथक कर, चर्च को नागरिक शासन के अधीन करने की जिस प्रक्रिया को आरम्भ किया था, हॉब्स ने उसे अंजाम तक पहुँचा दिया। अन्ततः हम कह सकते है कि हॉब्स ने आध्यात्मिक जगत को पूरी तरह से कानून और राज्य के अधीन कर दिया है।

8.12 व्यक्तिवाद

अभी तक हमने जितना अध्ययन किया है। उसको देखकर यह लगता है कि हॉब्स निरंकुश राजसत्ता का समर्थन करता है। परन्तु जब इसके आगे हम देखते है कि क्यों वह निरंकुश राजसत्ता का समर्थन करता है तो स्पष्ट होता है कि वह व्यक्तिवादी भी है क्योंकि ऐसा समर्थन वह व्यक्ति के लिए करता है उसकी सुरक्षा के लिए करता हैं। अर्थात अपने सिद्धान्त प्रतिवादन में मूलरूप से वह व्यक्तिवादी है और इस व्यक्ति की सुरक्षा के लिए राज्य को उपयोगिता स्तर पर ले जाता है।

हॉब्स ने चिन्तन में व्यक्ति अलग-अलग हैं जिनके हितो में टकराहट भी है। इनमें सामंजस्य बैठाने के लिए राजसत्ता का उद्भव होता है, समझौते के फलस्वरूप वह हित है आत्मरक्षा के अधिकार। इस अधिकार की रक्षा के लिए वह व्यक्ति को राज्यसत्ता के विरोध का अधिकार भी प्रदान करता है।

इस प्रकार जब हॉब्स राज्य को समझौते का परिणाम और कृत्रिम मानता है, जिसका दायित्व जनमानस की रक्षा करना है तो वह प्रबल व्यक्तिवादी हो जाता है। हॉब्स पहला विचारक है जिसने व्यक्ति के आत्मरक्षा के अधिकार को सर्वपरि महत्व दिया, और राज्य का दायित्व इस अधिकार की रक्षा करना माना, जो राज्य की उत्पत्ति का कारण और अस्तित्व का आधार है। इस प्रकार व्यक्ति अपने आप में साध्य है और राज्य साधन।

8.13 आलोचना

हॉब्स एक ऐसा विचारक था जिसे अपने समय में समाज और सत्ता के सभी पक्षों के आलोचना का शिकार होना पड़ा। उसकी आलोचना निरंकुश राजतंत्र वादियों के साथ लोकतंत्र वादियों ने भी की। साथ ही धार्मिक चिन्तकों ने

भी आलोचना की। क्लेरेडन ने तो हॉब्स की पुस्तक को जलाकर यहाँ तक कहा कि ''मैंने कभी कोई ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी जिसमें इतना राजद्रोह विश्वासघात और धर्मद्रोह भरा हो।''

निम्न आधार पर हॉब्स की आलोचना की जाती हैः-

1.हॉब्स के चिन्तन की एक प्रमुख आलोचना उसके द्वारा मानव स्वभाव के विकृत स्वरूप के चित्रण के कारण की जाती है। क्योंकि उसने मनुष्य को स्वार्थी और झगड़ालू कहा है। जबकि मनुष्य में दया, प्रेम, सहयोग, त्याग आदि सामाजिक गुण भी पाये जाते हैं।

2.हॉब्स का समझौता सिद्धान्त भी भ्रम उत्पन्न करता है। एक तरफ तो मनुष्य को झगड़ालू और स्वार्थी कहता था जिससे प्राकृतिक अवस्था संघर्ष की अवस्था हो जाती है, फिर विवेक लोगों को प्राकृतिक अवस्था से मुक्ति के लिए समझौते के लिए तैयार करता है। फिर एक अन्य दुविधा कि समझौते में सम्प्रभु शामितन नहीं है जबकि सैद्धान्तिक दृष्टि से समझौता के लिए दो पक्ष होते हैं।

3.एक तरफ हॉब्स प्राकृतिक अवस्था की अराजकता से निराकरण के लिए निरंकुश राजसत्ता का समर्थन करता है तो दूसरी तरफ व्यक्ति को आत्मरक्षा के विरूद्ध किसी भी आदेश के विरूद्ध जाने का अधिकार भी देता है।

अभ्यास प्रश्न

1.हाब्स का हाब्स का किस सन में हुआ ?

2.हाब्स ने 'लेवियाथन' की रचना कहाँ पर की की।

3.Elements of Law पुस्तक की रचना किसने की ?

8.14 सारांश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते है कि हाब्स ने राज्य के उत्पत्ति के दैवीय सिद्धांत के विपरीत ,राज्य की उत्पत्ति का सामाजिक समझौता सिद्धान्त दिया है जिसमें राज्य अब एक साधन के समान है जो व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए लोंगों ने आपसी समझौते से बनाया है । जिसका यह संप्रभु समझौते में शामिल न होने के कारण सभी प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त है । लेकिन इसी के साथ हाब्स यह भी कहता है यदि राज्य व्यक्ति को ऐसे कार्य करने के आदेश देता है जो उसके अस्तित्व के विपरीत है या उसे संकट में डालता है तो व्यक्ति को राज्य का विरोध भी करने का अधिकार है क्यों कि राज्य के निर्माण का उसका प्रमुख ध्येय आत्मरक्षा ही है ।इस प्रकार से हाब्स व्यक्तिवादी विचारक के रूप में सामने उभरकर आता है ।

8.15 शब्दावली

प्राकृतिक अवस्था - यह समाज हीन और राज्यहीन अवस्था है ।

8.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.1588 २.फ्रान्स ३.हाब्स

8.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीति दर्शन का इतिहास-जॉर्ज एच0 सेबाइन

2.पॉलिटिकल थ्योरीज, एनसिएन्ट एण्ड मेडीवल-डनिंग

3.मास्टर्स ऑफ पॉलिटिकल थॉट- डब्ल्यू0 टी0 जोन्स

4.पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास-डा0 प्रभुदत्त शर्मा

5.राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा-ओ0पी0 गाबा

8.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.राजनीति-कोश- डा0 सुभाष कश्यप एवं विश्वप्रकाश गुप्त

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक- आर0एम0 भगत

8.19 निबंधात्मक प्रश्न

1.हाब्स के राज्य के उत्पत्ति के सिद्धांत की विवेचना कीजिये।

2.हाब्स एक व्यक्तिवादी विचारक था ।इस कथन की व्याख्या कीजिये।

इकाई 9 जॉन लॉक

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 जॉन लॉक के विचारों की पृष्ठभूमि
9.4 लॉक के सहिण्णुता सम्बन्धी विचार
9.5 लॉक का अनुभववाद
9.6 मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी लॉक के विचार
9.7 प्राकृतिक अवस्था का चित्रण
9.8 लॉक का सामाजिक संविदा का सिद्धान्त
9.9 हॉब्स लॉक एक तुलनात्मक अध्ययन
9.10 लॉक के शासन सम्बन्धी विचार
9.11 सरकार के कार्य
9.12 व्यक्तिवाद
9.13 सम्पत्ति का अधिकार
9.14 लॉक के विचारों की आलोचना
9.15 सारांश
9.16 शब्दावली
9.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.20 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इसके पहली की इकाई में हम हॉब्स के समझौतावादी राजनीतिक विचारों का अध्ययन कर चुके है। आपने यह देखा कि हॉब्स के अनुसार राज्य किसी देवीय शक्ति से उत्पन्न न होकर के समजिक आपसी समझौते का परिणाम है। जिसे आत्मरक्षा के लिए बनाया गया है।

इस इकाई में हम समझौतावादी विचारक लॉक के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेंगें। जिससे स्पष्ट होगा कि लॉक भी राज्य को समझौते का परिणाम मानता है। साथ ही यह भी देखेंगें कि हॉब्स के विपरित लॉक ने मानव स्वभाव के सकारात्मक पक्षों पर बल दिया है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगें कि

1. लॉक हॉब्स के राजनीतिक विचारों के बारे में जान सकेंगे।

2. लॉक के उदारवादी प्रजातात्रिक व्यवस्था के विषय में जन सकेंगे।

3. लॉक के राज्य की उत्पत्ति का सामाजिक समझौते का सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे।

4. लॉक द्वारा वर्णित प्राकृतिक अवस्था व प्राकृतिक अधिकार को जान पाएंगे।

9.3 जॉन लॉक के विचारों की पृष्ठभूमि

1642 ई0 में इंग्लैण्ड का गृह युद्ध इस कारण आरम्भ हुआ क्योंकि तत्कालीन राजा चार्ल्स प्रथम अपने शाही अधिकारों पर ब्रिटिश ससंद के किसी भी प्रकार के अंकुश को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था। यह विवाद राजा की शक्तियों और संसद की शक्तियों के बीच था। चार्ल्स प्रथम की हत्या, राजतंत्र का पतन, कॉमवैल की अध्यक्षा में कामनवैल्थ की स्थापना, आलिवर कामवैल का निरंकुश गणंतंत्रीय शासन कॉमवैल का पतन तथा चार्ल्स द्वितीय को राजा बनाकर पुनः इंग्लैण्ड में राजतन्त्र की स्थापना, जेम्स द्वितीय को राजा बनाकर उसके विरूद्ध पुनः जनाक्रोश और विद्रोह तथा राजा जेम्स द्वितीय को विस्थापित कर उसके स्थान पर आरेन्ज के प्रिंस विलियम को इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बिठाया जाना, ये इन 47 वर्षो की प्रमुख घटनाएँ थी। 1688 ई0 की रक्तहीन क्रांन्ति के साथ प्रिंस विलियम को इंग्लैण्ड का राजा बनाएं जाने की घटना के साथ राजा निरंकुश शक्तियों का अन्त तथा

ससंद की शक्तियों का उदय हुआ। राजनीतिक चिन्तन के इतिहास के विधार्थियों के लिए याद रखने योग्य यह तथ्य है कि इस गृह यृद्ध की घटनाओं में हॉब्स का झूकाव राजतन्त्र एवं निरंकुश शासनतन्त्र के पक्ष में था इसके विपरित, लॉक संसदीय दल के समर्थक के रुप में रक्तहीन क्रांन्ति का समर्थन करता है। 1688 ई0 की रक्तहीन क्रांन्ति के जिन राजनीतिक दर्शन में आदर्शो की प्रस्थापना की थी। लॉक ने इन्ही आदर्शो का प्रतिपादन अपने राजनीतिक दर्शन में किया है। ऐसा लगता है। मानों लॉक रक्तहीन क्रांन्ति का समर्थन कर्ता दार्शनिक है। लॉक के राजनीतिक चिन्तन का

सार यही है कि शासक की शक्तियाँ न्यास के समान है अतः शासन का कार्य समाज द्वारा सौपी हुई सत्ता रूपी धरोहर की रक्षा करना है।

9.4 लॉक के सहिण्णुता सम्बन्धी विचार

लॉक व्यक्ति की धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था। उसकी मान्यता थी कि राज्य अथवा किसी व्यक्ति/व्यक्ति समूह को दूसरे व्यक्ति की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लॉक यह तर्क प्रस्तुत करता है कि मानवीय ज्ञान न तो जन्मजात और न ही यह ईश्वरीय रहस्योदघाटन है। मानवीय ज्ञान मनुष्य के विचारों की उपज है जन्म के समय मनुष्य का मस्तिष्क उस साफ सुधरी स्लेट के समान है जिस पर कुछ भी लिखा नहीं गया है। किन्तु अनुभव से उत्पन्न होने वाले विचारक था जो यह मानता था कि मनुष्य के विचार जन्मजात नहीं होते अनुभवों के साथ पेदा होते है। सत्ता को यह अधिकार कदापि नहीं हो सकता कि वह अपने विचारों को सही अथवा नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानकर दूसरों के ऊपर अपने विचारों को थोपे। सत्ता को सहिण्णु होकर दूसरों के विचारों का दमन नहीं करना चाहिए। लॉक के धार्मिक सहिण्णुता सम्बन्धी विचारों की पृष्ठिभूमि में ईसाई धर्म के विवाद थे जिनमें कुछ धार्मिक विचारकों ने यह प्रतिपादित किया था। कि जो व्यक्ति धर्म की आज्ञाओं का पालन नहीं करते, अथवा जो धर्म द्रोह का माप करते है, ऐसे व्यक्तियों को राज्य द्वारा दंडित किया जाना चाहिए। लॉक के अनुसार राज्य की शक्ति का उद्देश्य लौकिक शक्ति एवं सुव्यवस्था की स्थापना करना तथा सम्पत्ति की रक्षा करना, है न कि धर्म की स्थापना करना अथवा उसकी रक्षा करना राजा अपनी शक्ति को समाज के सदस्यों से प्राप्त करता है। इन विचारों से स्पष्ट होता है कि लॉक के धर्म सम्बन्धी विचार उदारवादी है। सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में सहिण्णुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के कारण लॉक को राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उदारवादियों की अन्तिम पंक्ति में स्थान दिया जाता है।

9.5 लॉक का अनुभववाद

लॉक के विचारों का स्वरूप अनुभववादी है। वह ज्ञान का अनुभव जन्य मानता है। उसके ज्ञान सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वह मनुष्य के ज्ञान को जन्मजात नहीं मानता उसकी यह मान्यता है कि मानवीय मस्तिष्क में कोई जन्मजात प्रयत्न नहीं होते। जन्म के समय मानवीय मस्तिष्क साफ होता है जिस पर कुछ भी अेकित नहीं होता। मनुष्य को ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव मनुष्य के मस्तिष्क में प्रवेश करता है जो उसमें चेतना एवं प्रतिबम्ब पैदा करतें है। मस्तिष्क में उनके विश्लेषण की तुलना करने की तथा उनको एकीकृत करने की प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया में विचारों की उत्पत्ति होती है। संक्षेप में लॉक के मतानुसार मनुष्य के विचारों का जन्म अनुभवों से होता है। विचारों को ज्ञान नहीं कहा जा सकता हाँ ये ज्ञान के साधन अवश्य है। ज्ञान का जन्म तब होता है जब मस्तिष्क द्वारा अनेक विचारों की तुलना करके सहमति अथवा इसके विपरित असहमति व्यक्त की जाती है। ज्ञान को अनुभव जन्म मानने के कारण लॉक को एक अनुभववादी विचारक माना जाता है।

9.6 मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी लॉक के विचार

हॉक्स के अनुसार मनुष्य प्रकृति से ही स्वार्थी, झगड़ालू और आसामाजिक प्राणी है। किन्तु लॉक की मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी मान्यताएँ हॉक्स से सर्वथा भिन्न है वह मानता है कि मनुष्य में स्वाभाविक अच्छाई होती है। प्रकृति ने मनुष्य को एक महान गुण से विभूषित किया है और वह गुण है मनुष्य की विवेकशीलता मनुष्य में सहयोगी भवना होती है,

वह सामाजिक प्राणी है। प्रकृति ने ही मनुष्य को शक्ति-प्रिय, नीति नियमों का आस्थावान तथा एकता और अच्छाई की चाह करने वाला प्राणी बनाया है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति से ही मनुष्यों में समानता होती है। प्राकृतिक अवस्था समानता की अवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति एवं उसका क्षेत्राधिकार पारस्परिक होता है। तथा जिसमें किसी के पास दूसरे से अधिक शक्ति नहीं है। लॉक के मतानुसार मनुष्य की समानता शारीरिक अथवा मानसिक समानता नहीं है। अपितु वह नैतिक दृष्टि से दूसरे के समान होता है। मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी लॉक के ये विचार उसके राजनीतिक विचारों के मूल में अवास्थित है।

9.7 प्राकृतिक अवस्था का चित्रण

हमें ज्ञात है कि हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्था को एकाकी, दीन हीन कुत्सित, जंगली एवं क्षणिक बताया है। इसके विपरित लॉक ने प्राकृतिक अवस्था को शान्ति सदभावना, पारस्परिक सहायता और संरक्षण की अवस्था बताया है। सामाजिकता मनुष्य का वह मूल गुण है जिसके कारण वह प्राकृतिक अवस्था में अन्य सदस्यों के साथ रहता है एवं सहयोग करता था। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य में भ्रातृत्व भवना एवं न्याय की भवना थी। उस अवस्था में मनुष्य निश्छल था और इसीलिए सुखी था। प्राकृति ने उन्हें समानता और स्वतन्त्रता का आशीर्वाद प्रदान किया था। अतः कोई किसी की मर्जी पर निर्भर नहीं करता था। मनुष्य अपने जीवन का यापन एवं अपनी धन सम्पत्ति का उपयोग स्वेच्छानुसार करता था। मनुष्य में मैत्री न्याय और सदभावना के गुण थे। लॉक का कथन है कि "प्राकृतिक अवस्था को शासित करने वाला एक प्राकृतिक कानून है और उस कानून को हम विवेक कहते है।

प्राकृतिक अवस्था का चित्रण करते हुए लॉक बताता है कि उस अवस्था में मनुष्य को कुछ नैसर्गिक अधिकार प्राप्त थे। लॉक की नैसर्गिक अधिकारों की धारणा का आशय यह है कि इन अधिकारों का निर्माता अथवा दाता राज्य नहीं है। यह अधिकार नैसर्गिक है। प्रकृति ने ही मनुष्य को कुछ जन्मजात अधिकार प्रदान किये है। प्राकृतिक अधिकारों की धारणा को प्रस्तुत करने में लॉक का स्पष्ट मन्तव्य यह स्थापित करना है कि राज्य उत्पत्ति के पूर्व भी व्यक्तियों के अधिकार नैसर्गिक एवं राज्य से पूर्व है अतः राज्य की सत्ता इन अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकता। लॉक के राजदर्शन की यह मूल मान्यता है कि राज्य की स्थापना व्यक्ति सिर्फ इसलिए करते है जिससे कि राज्य उनके अधिकारों की रक्षा करे।

लॉक के अनुसार इस अवस्था में प्राकृतिक विधि का शासन था जिसकी छत्रछाया में विवेक और समानता स्थापित थी तथा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का स्वामी था। वह यह भी स्वीकार करता है कि दूसरे व्यक्ति के भी ऐसे ही प्राकृतिक अधिकार थे जिनका सम्मान किया जाता था। अतः प्राकृतिक अधिकार थे जिनका सम्मान किया जाता था अतः प्राकृतिक अवस्था में स्वतन्त्रता थी, स्वच्छन्दता नहीं।

यदि प्राकृति अवस्था इतनी अच्छी थी तब प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि उस अवस्था में रहने वाले लोगों ने उसे छोड़ कर राज्य की स्थापना क्यों की ? लॉक ने इसका उत्तर दिया है कि प्राकृतिक अवस्था में प्रत्येक मनुष्य प्राकृतिक नियम की अपने हित के अनुसार व्याख्या करता था जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार था कि वह व्यवस्था अथवा कानून का उल्लंघन करने वालों को दंडित कर सके। प्राकृतिक अवस्था में दो व्यक्तियों के महत्व विवादों का निपटारा वह व्यक्ति स्वंय अपनी धारणानुसार कर लेता था, जबकि सही न्यायपूर्ण अवस्था में ऐसे विवादों का निपटारा तीसरी निष्पक्ष न्यायिक सत्ता के द्वारा किया जाना आवश्यक है। किन्तु प्राकृतिक अवस्था में तीसरी निष्पक्ष सत्ता का अभाव था। लॉक के विचारानुसार प्राकृतिक अवस्था में तीन प्रमुख असुविधाएँ थी।

1. प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक विधि की कोई स्पष्ट परिभषा नहीं थी, अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने मन के अनुकूल कानून को परिभाषित करता था।

2. प्राकृतिक विधि की स्पष्ट परिभाषा करने वाले किसी निष्पक्ष न्यायधीश का अभाव था।

3. ऐसी सत्ता का अभाव था जो प्रभावशाली रुप से उस विधि को लागू कर सके। क्योंकि प्राकृतिक कानून के क्रियान्वयन का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति में निहित था इसके परिणामस्वरुप प्रत्येक व्यक्ति अपने विवाद का स्वंय ही न्यायकर्ता बन जाता है। जिससे समाज का सहयोग टुटता है।

9.8 लॉक का सामाजिक संविदा का सिद्धान्त

सामाजिक संविदा:- प्राकृतिक अवस्था की असुविधाओं से मुक्ति पाने का मार्ग सामाजिक संविदा द्वारा प्राप्त होता है। लॉक के शब्दों में प्राकृतिक अवस्था को त्यागने के लिए मनुष्यों ने स्वेच्छा से समझौता किया जिससे कि वे एक समाज में सम्मिलित हो और संगठित हों ताकि उनका जीवन सुखी सुरक्षित और शान्तिपूर्ण हो जहाँ वे अपनी सम्पत्तियों का सुरक्षित रुप से आनन्द ले सकें।

लॉक द्वारा प्रतिपादित सामाजिक संविदा के स्वरुप के बारे में विचारकों के भिन्न -2 मत है । कुछ लेखक मानते है कि समाज और शासक के बीच एक ही समझौता हुआ जिससे राजनीतिक समाज अर्थात राज्य की स्थापना की गयी। इसके विपरित कुछ लेखकों कर मत है कि लॉक ने दो स्तर पर समझौतों के होने की कल्पना है। इनके मतानुसार पहला समझौता सामाजिक था जो प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले मनुष्य के बीच पारस्परिक स्तर पर हुआ था जिसके परिणामस्वरूप समाज की स्थापना हुई। लॉक के कथनानुसार मूल संविदा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक कानून की स्वंय दंड देने के प्राकृतिक अधिकार का परित्याग करके ऐसा अधिकार सम्पूर्ण समाज को प्रदान करता है। दूसरा समझौता राजनीतिक था जो समाज और शासक के बीच हुआ जिसके द्वारा सिविल शासन की स्थापना की गई। लॉक के लेखन में यह पूर्णतः स्पष्ट नहीं है कि उसने एक या दो समझौतो की कल्पना की है। किन्तु उसने मूल समझौता शब्दों का प्रयोग किया है जिससे यह संकेत मिलता है कि इसके अलावा भी कोई दूसरा समझौता हुआ हो। मूल संविदा के द्वारा प्राकृतिक अवस्था के लोग समाज की स्थापना करते है। दूसरा समझौता समाज के सदस्यों तथा शासक के बीच होता है। जिससे राज्य जैसी संस्था की स्थापना होती है। पहले समझौते के द्वारा व्यक्ति यह निर्धारित करते हैं कि वे अपवने सम्बन्ध में व्यवस्था करने का अधिकार समाज को प्रदान करते है। इस प्रकार समझौता कर लेने के बाद समाज के व्यक्ति शासक के साथ समझौता कर उसे शासन करने का अधिकार कुछ शर्तो के साथ प्रदान करते है। शासक का समझौते द्वारा निर्धारित यह कर्तव्य है कि वह नागरिकों के नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा करेगा। यदि शासक संविदा की शर्तो का उल्लंघन करे अथवा सार्वजनिक हित के विरूद्ध शासन करे तब समाज को यह अधिकार होगा कि उल्लंघनकर्ता को अपदस्थ कर उसके स्थान पर नये शासन को स्थापित करे।

9.9 हॉब्स लॉक एक तुलनात्मक अध्ययन

संविदा द्वारा शासन के निमार्ण की लॉक की धारणा हॉब्स के विचारों से ठीक विपरित है। हॉब्स के मतानुसार सम्प्रभु शासक संविदा से बधा हुआ नहीं अपितु उसके बाहर एवं ऊपर है जिसके परिणाम स्वरूप राजनीतिक सत्ता का स्वरूप निरंकुश हो जाता है तथा जिसका कभी प्रतिरोध नहीं किया जा सकता है। इसके विपरित लॉक शासक को संविदा की शर्तो से प्रतिबंधित मानता है इस प्रकार लॉक सीमित शासन तन्त्र का समर्थन करता है। लॉक प्रजा को

यह अधिकार देता है कि वह शासक का प्रतिरोध करे यदि शासक प्रजा के नैसर्गिक अधिकारों का अपहरण करने की कुचेष्टा करता है। हॉब्स का मत है कि प्रजा द्वारा संविदा के माध्यम से अपने समस्त प्राकृतिक अधिकारों को केवल आत्म संरक्षण के अधिकार को अपने पास रखते हुए सम्प्रभु को समर्पित कर दिया जाता है। तत्पश्चात नागरिकों के केवल वे ही अधिकार रहते है जिन्हें सम्प्रभु द्वारा प्रदान किया जाता है। इसके विपरित लॉक के मतानुसार नागरिक द्वारा राजसत्ता को केवल एक अधिकार सौंपा जाता है और वह अधिकार है, प्राकृतिक कानून को स्वाहितानुसार लागू करने का अधिकार। ऐसी धारणाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि हॉब्स की संविदा की धारणा निरंकुशवाद का और लॉक की धारणा व्यक्तिवाद का समर्थन करती है।

9.10 लॉक के शासन सम्बन्धी विचार

लॉक का कथन है कि शासन संविदा द्वारा निर्मित संस्था है लेकिन शासन का क्या स्वरूप है एवं उसके कार्य - कलाप क्या है, उसके कार्य - कलापों की क्या सीमाएँ है। लॉक के मतानुसार सरकार के कार्य मर्यादित होते है। सरकार की स्थापना करने में लॉक समुदाय और सरकार के बीच एक न्यायधारी न्यास के द्वारा सरकार की स्थापना की जाती है। सरकार को न्यासी बताकर लॉक यह प्रतिपादित करना चाहता है कि समाज ने समूचे समाज की शक्ति को धरोहर के रुप में सरकार को सौपा है। अतः सरकार का यह वैधिक दायित्व है कि वह उस धरोहर की रक्षा एक न्यासी के रुप में करे। यदि सरकार इस दायित्व का निर्वाह नहीं करे, अर्थात नागरिकों के जीवन स्वतन्त्रता ओर सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा नहीं करे अथवा उनका अपहरण करे, तब समुदाय को यह अधिकार है कि उस धरोहर की अनचाही सरकार से पुनः अपने हाथों में लेकर उसे दूसरी सरकार को सौंप दे जो अधिकारों को सुरक्षित रख सके। लॉक यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि सरकार की शक्तियाँ समाज कह शक्ति की अपेक्षा सीमित है सरकार स्वहित के लिए नहीं अपितु समाज के हितों की रक्षा के लिए स्थापित की जाती है, तथा सरकार पर समाज का नियंत्रण सदा बना रहता है। सामाजिक हित का भाव वह अंकुश है जो शासन पर सदा लगा रहता है। लॉक की मान्यता है कि सरकार समुदाय के हितों की रक्षा के लिए समुदाय के प्रति उत्तरदायी है किन्तु समुदाय का सरकार के प्रति ऐसा कोई दायित्व नहीं होता। सरकार के स्वरूप में सम्बन्ध में लॉक की यही धारणा है कि सरकार समाज की धरोहर की रक्षा एक न्यासी के रुप में करती है। सरकार द्वारा इस धरोहर को हड़पने पर अथवा वचन भंग करने पर उसे अपदस्थ कर नये न्यासी की नियुक्ति का अधिकार सदा समुदाय के हाथों में रहता है।

9.11 सरकार के कार्य

लॉक का कथन है कि जिस महान एवं प्रमुख उद्देश्य से प्रेरित होकर मनुष्य अपने आपकों शासनाधीन करते है, एवं राज्य के रुप में संगठित करते है, वह उद्देश्य है, अपनी सम्पत्ति का संरक्षण सम्पत्ति शब्द से उसका तात्पर्य जीवन, स्वास्थ, स्वतन्त्रता और सम्पदा के अधिकारों की रक्षा करना है। आखिर ये ही वे प्राकृतिक अधिकार है जिनका उपभोग व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था में करता था किन्तु इन अधिकारों की समुचित व्याख्या तथा उनका समुचित क्रियान्वयन करने वाली संस्था के अभाव में ये अधिकार असुरिक्षत थे। सरकार की स्थापना इसी उद्देश्य से की जाती है कि ऐसे प्राकृतिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुरक्षित एवं स्थायी रहें। अतः सरकार का यह प्रथम कार्य हो जाता है। कि ऐसे सामान्य मापदण्डों की स्थापना करे जिसके द्वारा उचित अनुचित तथा न्यायपूर्ण अन्यायपूर्ण का बोध हो सके। सरकार का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ऐसी निष्पक्ष सत्ता का प्रावधान करना है जो व्यक्तियों के बीच के विवादों का स्थापित कानून के आधार पर निपटारा कर सके। आधुनिक भाषा में हम इसे सरकार के न्यायिक कार्य कह सकते है।

लॉक के अनुसार सरकार का तीसरा प्रमुख कार्य फैडरेटिव हैं। जिस कार्य करे आज हम सरकार के कार्यकारिणी कार्य कहते है। लॉक ने इन्ही कार्यो को फैडरेटिव कृत्य कहा है। लॉक के अनुसार सरकार के फैडरेटिव कार्य इस प्रकार है अपराधों को रोकना, समुदाय के हितों की रक्षा करना, नागरिकों के बीच के सम्बन्धों को नियमित करना युद्ध और शान्ति का संचालन करना तथा अन्य राज्यों से संधिया इत्यादि करना है। इस प्रकार लॉक सरकार के कार्यो को तीन भागों में बाँटता है विधायिनी, न्यायिक एवं कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य।

लॉक की ऐसी मान्यता है कि विधायी एवं कार्यकारिणी शक्तियों को सदैव पृथक रखा जाना चाहिए। ऐसी मान्यता है कि जो व्यक्ति कानून बनाते है उन्हीं व्यक्तियों के हाथों में उन कानूनों को लागू करने की शक्ति प्रदान नहीं की जानी चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि लॉक शक्ति पृथक्करणके सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए दिखायी पड़ते है। लॉक कहते है विधायनी एवं कार्यकारिणी शक्तियाँ पृथक होनी चाहिए एक ही संस्था में केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार लॉक न्यायिक शक्तियों को भी विधायनी एवं कार्यकारिणी की शक्तियों से पृथक पृथक होनी चाहिए एक ही संस्था में केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार लॉक न्यायिक शक्तियों को भी विधायनी एवं कार्यकारिणी की शक्तियों से पृथक करने का पक्षधर है। विधि की व्याख्या करने का कार्य स्वतन्त्र न्यायपालिका का है हम देखते है कि लॉक के इन विचारों में शक्ति पृथक्करण के तत्व निहित है।

9.12 व्यक्तिवाद

लॉक के विषय में यह कहा जाता है कि लॉक की पद्धति में प्रत्येक वस्तु वयक्ति के चारों ओर घूमती है, प्रत्येक वस्तु को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि व्यक्ति की सर्वोच्च सत्ता सब प्रकार से सुरक्षित रहे। व्यक्तिवाद लॉक के राजनैतिक विचारों का आधार है। उसके राजदर्शन में व्यक्ति परमसाध्य है और राज्य और समाज दोनों उसके अधिकारों को बनाये रखने के साधन है। जहाँ कहीं राज्य व्यक्ति के अधिकार में किसी प्रकार से बाधक होता है वहाँ उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। इस प्रकार शासक जनता का प्रतिनिधि मात्र है। व्यक्ति समाज अथवा राज्य का किसी भी प्रकार का ऋणी नहीं है। इस वाक्य में लॉक का व्यक्तिवाद की परमसीमा दिखलाई पड़ती है।

लॉक राज्य को व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षक तथा जनसेवा का माध्यम मानकर व्यक्ति को राज्य व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बना देता है। व्यक्ति के नैसर्गिक अधिकारों का संरक्षण करना, यही राज्य का दायित्व है। उसके विचारों में राज्य केन्द्रीय नहीं है, उसके दर्शन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है यही लॉक का व्यक्तिवाद है। लॉक के दर्शन में व्यक्ति के लिए समूची राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण किया गया है । व्यक्ति के नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य की स्थापना करना, व्यक्ति के अधिकारों का शासक द्वारा अपहरण करने पर ऐसे शासन को अपदस्थ करना व्यक्ति की सहमति को राज्य का आधार मानना इत्यादि ऐसे विचार है जिनका प्रतिपादन करने के कारण लॉक को व्यक्तिवादी दर्शन का प्रणेटा माना जाता है। अरस्तु यह कहना उचित नहीं है कि लॉक पूर्णतया और असीम रुप से व्यक्तिवादी था। इस सम्बन्ध में बोदाँ का जो कथन पीछे दिया गया है वह एकांगी सत्य है।

9.13 सम्पत्ति का अधिकार

लॉक व्यक्ति के निजी सम्पत्ति के अधिकार का प्रबल समर्थक है। उसके अनुसार व्यक्ति का सम्पत्ति का अधिकार प्रकृति प्रदत्त है। लॉक का मत है कि मनुष्य संविदा द्वारा सिविल समाज की रचना अथवा सरकार की स्थापना मात्र इसी उद्देश्य से करते है कि सरकार उनकी सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा करे।

लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में प्राकृति की वस्तुओं पर सभी का समान अधिकार था। तब भी किसी एक व्यक्ति का प्राकृतिक सम्पदा पर एकाधिकार नहीं था। जिस एक चीज पर उसको प्रकृति ने एकाधिकार प्रदान किया था, वह उसका स्वंय का निजी व्यक्तित्व किन्तु जब व्यक्ति ने अपने परिश्रम को प्रकृति की किसी वस्तु को संजोया संभाला अर्थात प्रकृति की सम्पदा के साथ अपने परिश्रम को मिश्रित किया तब वह वस्तु उस व्यक्ति की निजी सम्पत्ति बन गयी। लॉक का मत है कि सम्पत्ति का अधिकार किसी समझौते का परिणाम नहीं है क्योंकि व्यक्ति अपने जन्म के साथ साथ ही इसे प्रकृति से प्राप्त कर समाज में अवरित होता है। राज्य अथवा समाज ने इस अधिकार का निर्माण नहीं किया है। अतः सरकार अथवा समाज को किसी व्यक्ति से सम्पत्ति को छीनने का अधिकार भी नहीं है। लॉक के मान्यतानुसार सम्पत्ति व्यक्ति कर अनुलंघनीय अधिकार है।

लॉक के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का, विशेषतः सम्पत्ति के अधिकार का राजनीतिक चिन्तन को महत्वपूर्ण योगदान है। इस सिद्धान्त द्वारा लॉक ने यह प्रतिपादित किया था कि शासन प्राकृतिक अधिकारों से मर्यादित रहता है तथा राज्य का दायित्व है कि वह व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति की रक्षा करे। इस अधिकार का समर्थन करके लॉक ने व्यक्तिवादी दर्शन की प्राण प्रतिष्ठा की। राजकीय हस्तक्षेप के सिद्धान्त ने लॉक के सरकार सम्बन्धी विचारों से गहरी प्रेरणा प्राप्त की है। दूसरी और लॉक के सम्पत्ति के सिद्धान्त की धारणा ने एडम स्मिथ तथा समाजवादी दर्शन के मूल्य सिद्धान्त को भी प्रभावित किया।

9.14 लॉक के विचारों की आलोचना

लॉक की सीमित राजतंत्र के उपरोक्त सिद्धान्तों के विरूद्ध निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये गये है।

1. लॉक के सिद्धान्त में प्रभुता राज्य में नहीं बल्कि व्यक्ति में रहती जान पड़ती है। प्रभुशक्ति के अभाव में राज्य की विशेषता नष्ट हो जाती है।

2. लॉक राज्य को विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनी हुई एक लिमिटेड कम्पनी का रुप देता है राज्य के स्वरुप की उसकी कल्पना यथार्थ नहीं है।

3. प्राकृतिक दशा में मानव समाज का लॉक द्वारा खीचा गया चित्र अच्छा होने पर भी वास्तविकता से दूर है। जब प्रकृति में राज्य में मनुष्य को कोई कठिनाई नहीं थी तो केवल कानून की व्याख्या और उसे लागू करने के लिए राज्य की उत्पत्ति की कल्पना राज्य का पर्याप्त कारण नहीं है।

4. अनेक विचारक लॉक के सिद्धान्तों में कोई मौलिकता नहीं मानते। सामाजिक संविदा, प्राकृतिक नियम, प्राकृतिक अधिकार और क्रांन्ति के अधिकार आदि के विषय में लॉक के सिद्धान्त उसके पहले से चले आते हुए विचारों पर आधारित है।

पाश्चात्य राजशास्त्र के इतिहास मं लॉक का स्थान महत्वपूर्ण है। उसके शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को आगे चलकर मान्टेस्क्यू ने विकसित किया। उसके सिद्धान्तों के आधार पर रुसो ने लोकप्रिय प्रभुता का सिद्धान्त बनाया। उसके सिद्धान्त अधिक व्यवहारिक थे। उसका यह कहना आज भी सब कही मान्य है कि शासन जनता की इच्छा पर आधारित है। उसका लोकप्रिय प्रभुता का सिद्धान्त आधुनिक जनतंगीय राज्य का आधार है। उसकी निरपेक्ष राज्य की कल्पना अधिकतर आधुनिक राज्यों में साकार हुई है। प्राकृतिक अधिकारों के विषय में उसका सिद्धांत आधुनिक राज्यों में नागरिक के मौलिक अधिकारों का आधार है।

अभ्यास प्रश्न -

1. 'ए लैटर ऑन टॉलरेशन' नामक ग्रन्थ के लेखक कौन है ?

2. इंग्लैण्ड की रक्तहीन क्रांन्ति कब हुई ?

3. लॉक व्यक्ति के ..... अधिकार का प्रबल समर्थक है

4. लॉक को आधुनिक काल में .....का प्रतिपादक माना जाता है।

5. 'टू ट्रीटाइजेज ऑफ गर्वनमैट' की रचना किसने की।

6. ज्ञान को अनुभव जन्म मानने के कारण लॉक को एक .....विचारक माना जाता है।

7. लॉक सरकार के कार्यो को ..... भागो में बाटता है।

9.15 सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से यह आप समझ गये होगें कि किसी भी राजनीतिक विचारक के राजनीतिक चिंतन पर उसके समय की परिस्थितियां प्रभावित करती है। आप ने देखा कि जहाँ हॉब्स मानव स्वभाव का बुरा चित्रण करता है वही लॉक मानव के स्वभाव के उदान्त और सकारात्मक पक्षों पर बल देता है। ऐसा इसलिए संभव हो सका क्योंकि लॉक ने इंग्लैण्ड के गौरपूर्ण क्रांन्ति को देखा कि किस प्रकार बड़ज्ञ परिवर्तन भी शांतिपूर्ण तरीके से हो सकता है। साथ ही लॉक ने प्राकृतिक अवस्था में भी जीवन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकारों को स्वीकार कर व्यक्ति को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है और राज्य के उत्पत्ति के प्रमुख कारण के रुप में इन अधिकारों की रक्षा को माना यदि कोई सरकार इन अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाती है तो उसे अपदस्थ करने का अधिकार जनता को देता है। ऐसा करके वह प्रतिनिधि सरकार का समर्थन करता है। सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता देकर वह तत्कालीन समय में उभरते हुए पूंजीवाद को समर्थन प्रदान करने का कार्य किया स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शासन के अंगो में शक्तियों के पृथक्करण की बात कर वह मैकियावली का पूर्व संकेत देता है।

9.16 शब्दावली

प्रतिनिधि सरकार:- जब सरकार के गठन में जनता की प्रत्यक्ष या परोक्ष भागीदारी हो, और वह सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी हो.

सीमित सरकार:- निरकुश सरकार के विपरीत कानून का शासन अर्थात सरकार भी कानून से नियंत्रित होती है।

प्राकृतिक अधिकार:- प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार है जो मनुष्य को जन्मजात प्राप्त होते है।

फैडेरेटिवे:- वर्तमान समय में जिसे हम कार्यपालिका द्वारा किया जाने वाला कार्य कहते है। लॉक इन्हीं कार्यो को फैडेरेटिव कहता है।

9.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लॉक 2. 1688 ई0 3. सम्पत्ति का अधिकार 4. संविधानवाद 5. 6. अनुभववादी 7. तीन

9.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीति दर्शन का इतिहास-जॉर्ज एच0 सेबाइन

2.पॉलिटिकल थ्योरीज, एनसिएन्ट एण्ड मेडीवल-डनिंग

3.मास्टर्स ऑफ पॉलिटिकल थॉट- डब्ल्यू0 टी0 जोन्स

4.पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास-डा0 प्रभुदत्त शर्मा

5.राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा-ओ0पी0 गाबा

9.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.राजनीति-कोश- डा0 सुभाष कश्यप एवं विश्वप्रकाश गुप्त

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक- आर0एम0 भगत

9.20 निबंधात्मक प्रश्न

1. लॉक के राजनीतिक विचारों की विशेषताऐं बताइये।

2. लॉक के प्राकृतिक अवस्था के सिद्धान्त का पीक्षण कीजिए।

3. लॉक के सामाजिक संविदा सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई- 10 : जीन जेक्स रूसो :(Jean Jacques Rousseau) (1712-1778)

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 रूसो का जीवन परिचय एवं पद्धति
10.4 रूसो की कृतियाँ
10.5 रूसो का प्राकृतिक अवस्था के सम्बन्ध में विचार
10.6 रूसो का मानव स्वभाव के सम्बन्ध में विचार
10.7 रूसो का सामाजिक संविदा सम्बन्धी विचार
10.7.1 रूसो की प्राकृतिक अवस्था और सामाजिक संविदा की आलोचना
10.8 रूसो की सामान्य इच्छा सम्बन्धी विचार
10.9 रूसो की सम्प्रभुता सम्बन्धी अवधारणा
10.10 रूसो के शासन सम्बन्धी विचार
10.11 रूसो के कानून, स्वतंत्रता, समानता, धर्म एवं शिक्षा सम्बन्धी विचार
10.11.1 रूसो का कानून सम्बन्धी विचार
10.11.2 रूसो का स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार
10.11.3 रूसो का समानता सम्बन्धी विचार
10.11.4 रूसो का धर्म सम्बन्धी विचार
10.11.5 रूसो का शिक्षा सम्बन्धी विचार
10.12 रूसो की हाब्स तथा लॉक के साथ तुलना
10.13 सारांश
10.14 शब्दावली
10.15 अभ्यास के लिय प्रश्न
10.16 सन्दर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें
13.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.18 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

हाब्स, लॉक एवं रूसो ये तीनों नाम आधुनिक राजनीतिक चिंतन में सामाजिक संविदा सिद्धान्त से सम्बद्ध है। पिछली इकाईयों में हम हाब्स तथा लॉक के बारे में सम्यक रूप से विवेचना कर चुके हैं। इस इकाई में हम रूसो के बारे में अध्ययन करेंगे-

सामाजिक संविदा के विचारकों में रूसो का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह एक प्रख्यात दार्शनिक एवं क्रान्तिकारी विचारों का प्रणेता, शिक्षा-शास्त्री आदर्शवादी, मानवतावादी और युग-निर्माता साहित्यकार था। उसके ग्रन्थों ने प्राचीन शासन के सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे को झकझोर दिया और एक नवीन लोकतन्त्रीय व्यवस्था लिए मार्ग तैयार कर दिया। व्यक्तिवाद, आदर्शवाद और अद्वैतवादी लोकप्रिय सम्प्रभुता के विभिन्न सिद्धान्तों को उसकी लेखनी से नया समर्थन और नया दिशा निर्देशन मिला। सर्वव्यापी सामान्य इच्छा के सिद्धान्त द्वारा उसने राजनीति में स्थायी सावयवी समाज की कल्पना को बल दिया। रूसो ने संविदा सिद्धान्त के आधार पर एक पूर्णरूपेण जनप्रिय सम्प्रभुता का सिद्धान्त खड़ा कर दिया। लोकप्रियता, सम्प्रभुता, विधि, सामाजिक स्वीकृति, प्रशासन, क्रान्ति आदि विषयों पर अपने निर्भीक और स्पष्ट विचारों के कारण रूसो ने अमर ख्याति अर्जित की।

10.2 उद्देश्य

1. रूसो के सामाजिक संविदा सम्बन्धी विचारों को जान पाएंगे।

2. रूसो की सामान्य इच्छा सम्बन्धी विचारों को समझाने में सक्षम होंगे।

3. रूसो के अन्य राजनीतिक विचारों को जान पाएंगे।

10.4 जीवन-परिचय, कृतियाँ एवं पद्धति

रूसो का जन्म सन् 1712 में निर्धन आइजक नामक घड़ी-बनाने वाले के यहाँ जेनेवा में हुआ। जन्म के समय ही माता का देहान्त हो गया और पिता ने पुत्र को अपने दुर्व्यसनों का साथी बना दिया। इस प्रकार जन्म से ही वह उपेक्षित और स्नेहविहीन रहा। इन्हीं परिस्थितियों में 10 वर्ष की अवस्था में ही वह जेनेवा छोड़कर भाग गया। तत्पश्चात् लगभग 14 वर्ष की अल्पावस्था में ही रूसो को एक कठोर संगतराश (खुदाई का काम करने वाला) के पास काम करना पड़ा जो उसके साथ बड़ा ही पाशविक व्यवहार करता था। वहाँ रूसो को पेट भरने के लिए केवल कठोर परिश्रम ही नहीं करना पड़ा बल्कि उसने चोरी करने और झूठ बालने की कला भी सीखी। आखिर अपने मालिक से तंग आकर रूसो घर से भाग निकला। तब उसकी आयु 16 वर्ष की थी।

जीवन के अगले कुछ वर्ष रूसों ने फ्राँस में आवारागर्दी में बिताए। वह न केवल बुरी संगति में पड़ गया बल्कि उसका स्वभाव ऐसा बन गया कि वह हमेशा वर्तमान में ही रहता था, न भूत के लिए पछताता था और न भविष्य के लिए चिन्ता करता था। बाजारू औरतों के साथ उसके प्रेम-सम्बन्ध चले, किन्तु ये सम्बन्ध स्थायी मैत्री का रूप कभी नहीं ले सके। पेरिस में उसका मित्र वर्ग उसे आर्थिक सहायता देता रहा। वह मजदूरों की गन्दी बस्तियों में जीवनयापन करने लगा । जीवनभर वह अविवाहित ही रहा, किन्तु उसके अवैध सम्बन्ध सदा बने रहे। उसे वेनिस में फ्रेन्च दूतावास में नौकरी भी मिली किन्तु अपने खराब मिजाज के कारण उसे पदच्युत होना पड़ा ।

आवारा, प्रताड़ित और पीड़ित होने पर भी रूसो बहुत करीब से जीवन के हर पहलू को देखता रहा। धर्म के सम्बन्ध में रूसो अस्थिर रहा। उसने कभी कैथोलिक धर्म को अपनाया तो कभी प्रोटेस्टेन्ट मत को। इतना सब होने के बाद आखिर उसके भाग्य ने पलटा खाया। सन् 1749 में उसने एक प्रतियोगिता का समाचार पढ़ा। प्रतियोगिता का विषय था Has the revival of the Sciences and the Arts helped to purify or to corrupt morals रूसो ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। उसे प्रथम पुरस्कार मिला। अपने निबन्ध में बिलकुल मौलिक और सनसनीखेज विचार प्रकट करते हुए उसने लिखा कि विज्ञान तथा कला की तथाकथित प्रगति से ही सभ्यता का ह्रास, नैतिकता का विनाश और चरित्र का पतन हुआ है। अब रूसो एकाएक ही प्रसिद्ध हो गया। पेरिस के साहित्यिक क्षेत्रों में उसे सम्मान मिला, किन्तु उसने भद्र समाज और धनाढ्य महिलाओं के संसर्ग में लौटने की कोशिश नहीं की।

अब रूसो की सोई हुई साहित्यिक प्रतिभा और बौद्धिक चेतना जाग्रत हो गई थी। अब लिखना ही उसका व्यवसाय और जीवन बन गया। सन् 1754 में उसने 'डीजॉन की विद्यापीठ' (Academy of Dijon) की ही एक अन्य निबन्ध प्रतियोगिता में भाग लिया जिसका विषय था ''मनुष्यों में विषमता उत्पन्न होने का क्या कारण है? क्या प्राकृतिक कानून इसका समर्थन करता है।'' यद्यपि रूसो पुरस्कार नहीं जीत सका, तथापि उसने निजी सम्पत्ति और तत्कालीन फ्राँस के कृत्रिम जीवन पर कठोर प्रहार किये। सन् 1754 ई0 में रूसो पुनः जेनेवा लौट गया जहाँ वह कैथोलिक प्रोटेस्टेन्ट बन गया और उसे फिर से जेनेवा गणतन्त्र की नागरिकता दे दी गई।

कुछ समय बाद रूसो पुनः पेरिस चला गया। विख्यात लेखिका मदाम ऐपिने (Madam Epinay) द्वारा पेरिस के निकट मौण्ट मेरेन्सी में रूसो के लिए निवास और भोजन की व्यवस्था कर दी गई। पेरिस के कृत्रिम जीवन से दूर प्रकृति की गोद में रहते हुए रूसो ने Lock Nouvelle Heloise, The Emile तथा Social Contract नामक विख्यात ग्रन्थों की रचना की जिनसे उसका नाम चारों और फैल गया। उसके 'इमाइल' ग्रन्थ ने तो फ्राँस में क्रान्ति सी उत्पन्न कर दी। उसके क्रान्तिकारी विचारों से शासक और पादरीगण क्रुद्ध हो गए। सन् 1762 में उसकी गिरफ्तारी का आदेश निकाला गया। रूसो ने पेरिस छोड़ दिया तथा जीवन के अन्य 16 वर्ष एक खानाबदोश के रूप में बिताए। उसका स्वास्थ्य गिरता रहा, किन्तु लेखन कार्य जारी रहा। प्राण रक्षा के लिए वह जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों में भटकता रहा। 1766 में इंग्लैण्ड में दार्शनिक ह्यूम ने उसे शरण दी। वहाँ बर्क भी उसका मित्र बन गया। लेकिन रूसो के मित्र उसकी अभिमानशीलता को सहन नहीं कर सके। अतः मित्रों के प्रति शंकालु होकर रूसो पुनः गुप्त रूप से फ्राँस भाग गया। ह्यूम अपने प्रतिभाशाली मित्रों की सहायता से यह व्यवस्था कर दी कि रूसो को बन्दी बनाने की आज्ञा क्रियान्वित न की जाए।

रूसो की अध्ययन पद्धति बहुत कुछ हॉब्स के समान थी। उसने इतिहास का सहारा लेकर अनुभूतिमूलक पद्धति (Empirical Method)का अनुमान किया। उसकी पद्धति हॉब्स की ही तरह मनोविज्ञानयुक्त थी। मैकियावली, बोदाँ, अल्युसियस, हॉब्स, लॉक, ग्रोशियस, सिडनी, मॉण्टेस्क्यू, वाल्टेयर आदि का उस पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। यूनानी और रोमन साहित्य तथा काल्विन के धार्मिक विचारों से भी वह प्रभावित हुआ।

10.4 रूसों की कृतियाँ

1. ''हैज द रिवाइवल ऑफ द साइन्स एण्ड द आर्ट्स हेल्प्ड टू प्यूरीफाई ऑर टू करप्ट मोराल्स'' पर निबन्ध- 1749।

2. डिस्कोर्सेस ऑन द ओरिजिन एण्ड फाउण्डेशन ऑफ इनइक्वालिटी पर निबन्ध- 1754

3. सोशल कान्टैक्ट अथवा प्रिंसिपल ऑफ पॉलिकल राइट्स- 1762 में प्रकाशित।

4. लॉ नॉवेल हेलॉयज-1761 में प्रकाशित।

5. इमाइल-1762 में प्रकाशित। 6. कन्फैशन्स 7. डाइलॉग्स 8. रिवरीज

10.5 रूसो की प्राकृतिक अवस्था के सम्बन्ध में विचार

रूसो की प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य प्रकृति की गोद में स्वच्छन्दतापूर्वक जीवनयापन करता था। वह अवस्था भय और चिन्ता से मुक्त थी। प्राकृतिक अवस्था में रूसो का मनुष्य भला असभ्य जीव (Noble Savage) था, जो प्रारम्भिक सरलता और सुखपूर्ण रीति से जीवन बसर करता था। वह स्वतन्त्र, संतुष्ट, आत्मतुष्ट, स्वस्थ एवं निर्भय था। उसे न तो साथियों की आवश्यकता थी और न वह समाज के व्यक्तियों को दुःख देना चाहता था। उसकी सहज वृत्ति और सहानुभूति की भावना ने ही उसका दूसरों के साथ गठबन्धन किया। वह न तो सही को जानता था और न ही गलत को। वह गुण और अवगुण की सब भावनाओं से अछूता थां उस दशा में केवल नैसर्गिक शक्तियों से युक्त था। बुद्धि एवं विवेक की करतूतों का उसमें अभाव था। प्राकृतिक अवस्था में ऊँच-नीच तथा मेरे-तेरे का कोई भेदभाव नहीं था। व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी था। वह आत्मनिर्भर होता था। सभ्यता का विकास न होने से उसकी आवश्यकताएँ बहुत कम थीं और जो थीं वह प्रकृति क माध्यम से सहज ही पूरी हो जाती थीं। मनुष्य अपने वर्तमान से ही सन्तुष्ट था, उसे भविष्य के लिए संचय की चिन्ता नहीं थी। रूसो की प्राकृतिक अवस्था वाला समाज सभ्यता के प्रभावों से सर्वथा मुक्त था। वह समाज ऐसी प्रसन्नता का इच्छुक था। जिसमें सामाजिक नियम और सामाजिक संस्थाओं का प्रभाव बिलकुल न हो।

रूसो की प्राकृतिक अवस्था ऐसे स्वर्णिम युग सी थी जिसमें नियन्त्रणों से मुक्त व्यक्ति एक भोले और निर्दोष पक्षी की तरह प्राकृतिक सौन्दर्य का उपभोग करता हुआ मस्ती से स्वच्छन्दतापूर्वक विचरता रहता था। उसे जंगली कहना आसान था, क्योंकि वह पहाड़ों-जंगलों में ही अधिवास करता था लेकिन जंगली होते हुए भी वह सज्जन तथा नेक था। सादगी उसका गुण था और भोलापन उसका जीवन।

किन्तु स्वर्णिम युग छिन्न-भिन्न हो गया। प्राकृतिक दशा की अवस्थाएँ चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकीं। रूसो की प्राकृतिक दशा को नष्ट करने के लिए दो तत्व उत्पन्न हुए। एक तो जनसंख्या की वृद्धि था और दूसरा था तर्क का उदय। जनसंख्या की वृद्धि से आर्थिक विकास तेजी से होने लगा। सरलता और प्राकृतिक प्रसन्नता से प्रारम्भिक जीवन का लोप हो गया। सम्पत्ति का अभ्युदय हुआ और मनुष्यों में परिवार एवं वैयक्तिक सम्पत्ति बनाने की इच्छा उत्पन्न हुई। परिव्राजक की तरह स्वच्छन्द घूमने वाले वनचारी ने भूमि के हिस्से पर अपना अधिकार सहज, स्नेहवश या अस्थायी आवास की तरह जमाया। धीरे-धीरे वहाँ उसका स्थाई आवास बन गया। दूसरे सदस्यों ने, जो निश्छल थे, व्यक्ति विशेष के इस आधार को निःसंकोच मान लिया। वाद-विवाद या प्रतिरोध उनकी प्रकृति से परे था। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ यह प्रक्रिया बढ़ती गई। परिवार और सम्पत्ति की व्याख्या घर कर गई। अब विषमता का जन्म हुआ। मानवीय समानता नष्ट होने लगी। मनुष्य ने मेरे और तेरे के भाव से सोचना आरम्भ किया जिससे निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ। रूसो के अनुसार, ‘‘वह प्रथम मनुष्य ही नागरिक समाज का वास्तविक संस्थापक था जिसने भूमि के एक टुकड़े को घेर लेने के बाद यह कहा था कि वह मेरा है और उसी समय समाज का निर्माण

हुआ था जब अन्य लोगों ने उसकी देखा-देखी स्थानों और वस्तुओं को अपना समझना प्रारम्भ किया।'' परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत बलवान आदमी अधिक मात्रा में काम करता था, किन्तु दस्तकार को अधिक अंश मिलता था। इस विकास क्रम का यह परिणाम हुआ कि अब एक विकृति सी सारी दशा पर छा गई। मनुष्य सहज सुख-शान्ति से हाथ धो बैठा। जीवन कलुषित हो उठा।

यहाँ उल्लेखनीय है कि रूसो ने प्राकृतिक अवस्था के तीन प्रकार माने हैं। सबसे पहले आदिम प्राकृतिक अवस्था थी। उस समय मनुष्य निपट जंगली था, फिर मध्यवर्ती प्राकृतिक अवस्था आई। तब असमानता का प्रारम्भ हुआ और संचयवृत्ति बढ़ गई। तत्पश्चात् दमन एवं अत्याचार की पोषिका अन्तिम अवस्था आई जो असहनीय थी और जिसमें मनुष्य की गति बुरे से सर्वनाश की ओर (From bad to wrose and still wrose) थी। इस कुचक्र को रोकने के लिए ही सामाजिक संविदा की आवश्यकता महसूस हुई। इसी समय मनुष्य 'प्रकृति' की ओर वापिस (Back to nature) चलने का नारा दिया। किन्तु रूसो हमें सभ्यता की समस्त देनों का परित्याग करके पूर्व-राज्य की अवस्था में नहीं ले जाना चाहता अपितु प्राकृतिक दशा को आदर्श अवस्था तक पहुँचाना चाहता है। वह जानता है कि समाज में आगे बढ़े हुए रथ को पीछे लौटना सम्भव नहीं है पर साथ ही वह प्रकृति-सुलभ सौन्दर्य, सरलता और सहानुभूति का उपासक है। ''विवेक तथा तार्किक बुद्धि को वह प्रकृति के प्रतिकूल मानता है। रूसो का 'Natural Men' वह आदर्श है जिसको विकास करते-करते हमें प्राप्त करना है। हमें एक ऐसे प्रतिष्ठान की आवश्यकता है जो व्यक्ति और संस्थाओं का पुनर्निर्माण करेगी।

रूसो ने प्राकृतिक दशा के बारे में यह दावा नहीं किया कि निश्चित रूप से कभी किसी जगह वैसी दशा रही होगी। अनुमान से वह उस दशा की कल्पना करता है। अपने विचारों में आगे चलकर वह संशोधन और परिवर्तन करता है जिससे कई असंगतियाँ पैदा हो गयी हैं लेकिन रूसो स्वयं कहता है, ''मैं पक्षपात या पूर्वाग्रह की बजाय विरोधाभास (Paradoxes) का प्रेमी हूँ।''

10.6 रूसो का मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में विचार

मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में रूसो के अनुसार मनुष्य स्वभावतः सदाशय और अच्छा होता है। वह मनुष्य को स्वभावतः भोला मानता है जिसे किसी बात की चिन्ता नहीं है। उसका जीवनयापन प्रकृति की गोद में होता है। संसार में पाये जाने वाले पाप, भ्रष्टाचार, दुष्टता आदि गलत एवं भ्रष्ट सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति है। मनुष्य के पतन के लिए भ्रष्ट और दूषित सामाजिक संस्थाएँ दोषी हैं। मनुष्य स्वभाव से बुरा नहीं होता अपितु भ्रष्ट कला के कारण बुरा बन जाता है।

अपने विचारों को सिद्ध करने के लिए रूसो मानव स्वभाव की दो मौलिक नियामक प्रवृत्तियाँ बताता है। मानव-स्वभाव के निर्माण में सहायक प्रथम प्रवृत्ति है-आत्म-प्रेम अथवा आत्म-रक्षा की भावना, जिसके अभाव में वह कभी का नष्ट हो गया होता। मानव स्वभाव निर्माण से दूसरी सहायक प्रवृत्ति है सहानुभूति अथवा परस्पर सहायता की भावना जो सभी मनुष्यों में पाई जाती है और जो सम्पूर्ण जीवनधारी सृष्टि का सामान्य गुण है। इसके कारण ही जीवन संग्राम इतना कठिन प्रतीत नहीं होता है। ये सभी भावनाएँ शुभ हैं इसलिए स्वभावतया मनुष्य को अच्छा ही माना जाना चाहिए।

रूसो का कहना है कि मनुष्य की उपरोक्त दोनों मूलभूत भावनाओं में कभी-कभी संघर्ष होना स्वाभाविक है। पारिवारिक हित की कामना कभी-कभी ऐसे कार्यों की माँग करती है जो समाज के हितों से तालमेल नहीं खाते। चूँकि

ये दोनों भावनाएँ पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं की जा सकतीं, अतः व्यक्ति समझौता करने के लिए विवश होता है। आत्म-रक्षा और परमार्थ के कार्यों में संघर्ष होने से पैदा होने वाली नई समस्या का समाधान वह समझौतावादी प्रवृत्ति से करना चाहता है। इस प्रकार के समझौते से एक नवीन भावना उत्पन्न होती है जिसे अन्तःकरण कहते हैं। अन्तःकरण प्रकृति का उपहार है, यह केवल एक नैतिक शक्ति है, नैतिक मार्गदर्शन नहीं। मार्गदर्शन के लिए व्यक्ति को विवेक नामक स्वयं में विकसित होने वाली एक अन्य शक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है। विवेक व्यक्ति को यह सिखाता है कि उसे क्या करना चाहिए। विवेक मनुष्य का नैतिक पथ-प्रदर्शन करता है और अन्तःकरण उसको उस मार्ग पर प्रेरित करता है। रूसो इस तरह बतलाता है कि आत्म-रक्षा एवं सहानुभूति इन दो भावनाओं में सामंजस्य और अन्य भावनाओं के विकास करने में अन्तःकरण तथा विवेक दोनों का योग होता है। रूसो ने विवेक की अपेक्षा अन्तःकरण को अधिक महत्त्व सम्भवतः इसलिए दिया है कि उस युग में अन्तःकरण की बहुत उपेक्षा की जा रही थी। अन्तःकरण पर इतना अधिक बल देने के कारण ही उसे विवेक-विरोधी एवं रोमांचकारी तक कह दिया गया है। वास्तव में रूसो ने विवेक पर बड़े आक्षेप किए हैं। उसने बुद्धि एवं विज्ञान का विरोध करके इसके स्थान पर सद्भावना और श्रद्धा को प्रतिष्ठित किया है। उसके अनुसार बुद्धि भयानक है क्योंकि वह श्रद्धा को कम करती है। विज्ञान-विनाशक है क्योंकि वह विश्वास को नष्ट करता है और विवेक बुरा है क्योंकि वह नैतिक सहज ज्ञान के विरोध में तर्क वितर्क को प्रधानता देता है। किन्तु विवेक के प्रति उसका विरोध पूर्ण अथवा निर्मम नहीं है। वह मानव व्यक्तित्व के विकासमें विवेक को उचित स्थान प्रदान करता है, हाँ उसे असीम अधिकार नहीं देता।

स्पष्ट है कि रूसो के विवेचन का आधार मुख्यतया यह सिद्ध करना है कि मनुष्य स्वभाव से ही अच्छा होता है। तो फिर प्रश्न उठता है कि पथ-भ्रष्ट क्यों हो जाता है? रूसो का तर्क है कि मनुष्य पथ-भ्रष्ट उस समय होता है जब उसका आत्म-प्रेम , दम्भ में परिवर्तित हो जाता है। अतः शुभ एवं स्वाभाविक बने रहने के लिए दम्भ का परित्याग कर देना आवश्यक है। विवेक को दम्भ के चंगुल में नहीं फँसने देना चाहिए।

10.7 रूसो का सामाजिक संविदा सम्बन्धी विचार

रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था के अन्तिम चरण की अराजकता से जब व्यक्ति दुखी हो गए तब उन्होंने स्वयं को एक ऐसी संस्था में संगठित कर लेने की आवश्यकता अनुभव की जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की जान-माल की रक्षा हो सके और साथ ही व्यक्तियों की स्वतन्त्रता भी अक्षुण्ण बनी रहे। अतः उन्होनें परस्पर मिलकर यह समझौता किया कि प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता, अधिकार एवं शक्ति समाज को अर्पण कर दे। रूसो के शब्दों में, व्यक्तियों ने समझौते की शर्तों को इस प्रकार व्यक्त किया है-''हम में से प्रत्येक अपने शरीर को और अपनी समूची शक्ति को अन्य सबके साथ संयुक्त सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशन में रखते हें और अपने सामूहिक स्वरूप में हम प्रत्येक सदस्य को समष्टि के अविभाज्य अंश के रूप में स्वीकार करते हैं।'' रूसो आगे लिखता है कि, ''समझौता करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यक्तित्व के स्थान पर, समूह बनाने की इस प्रक्रिया में, एकदम नैतिक तथा सामूहिक निकाय का जन्म होता है जो कि उतने ही सदस्यों से मिलकर बना है जितने कि उसमें मत होते हैं। समुदाय बनाने के इस कार्य से ही निकाय को अपनी एकता, अपनी सामान्य सत्ता अपना जीवन तथा अपनी इच्छा प्राप्त होती है। समस्त व्यक्तियों के संगठन से बने हुए इस सार्वजनिक व्यक्ति को पहले नगर कहते थे, अब उसे गणराज्य अथवा राजनीतिक समाज कहते हैं। जब यह निष्क्रिय रहता है तो उसे राज्य कहते हैं और जब सक्रिय होता है तो सम्प्रभु तथा ऐसे ही अन्य निकायों से इसकी तुलना करने में इसे शक्ति कहते हैं।''

स्पष्ट है कि रूसो के अनुसार मनुष्य अराजक दशा को दूर करने के लिए जो समझौता करते हैं, वह दो पक्षों के बीच किया जाता है। एक पक्ष में मनुष्य अपने वैयक्तिक रूप में होते हैं और दूसरे पक्ष में मनुष्य अपने सामूहिक रूप में होते हैं। इस तरह समझौते के परिणामस्वरूप राज्य-संस्था के संगठित हो जाने पर मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता अधिकार एवं शक्ति को अपने से पृथक नहीं कर देते। वे इन्हें अपने पास रखते हैं पर व्यक्ति रूप से नहीं अपितु सामूहिक रूप से अर्थात् समाज के अंग के कारण। अब मनुष्य की जान और माल की रक्षा का उत्तरदायित्व अकेले अपने ऊपर नहीं रह जाता, वरन् सम्पूर्ण समाज का कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक मनुष्य की स्वतन्त्रता और अधिकारों की रक्षा करे। राज्य-संस्था के संचालन की शक्ति जनता में निहित होती है क्योंकि जनता स्वयं प्रभुत्व शक्ति-सम्पन्न होती है। राज्य-शक्ति के प्रयोग का अधिकार जिस शासक वर्ग को दिया जाता है, वह जनता की आकांक्षा के अनुसार ही कार्य करता है, क्योंकि वह जनता की इच्छा को क्रिया रूप में परिणत करने का साधन मात्र है और अपने कर्त्तव्यों का भली-भाँति पालन न करने पर अपने पद से पृथक किया जा सकता है तथा उसके स्थान पर दूसरे शासक वर्ग को नियुक्त किया जा सकता है यदि वह जनता की इच्छानुसार कार्य करने का वचन दे।

रूसो के समझौता सिद्धान्त की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

प्राकृतिक अवस्था के पहले चरण में सभी व्यक्ति निश्छल और सरल होते हैं, किन्तु कालान्तर में जनसंख्या में वृद्धि, तर्क के उदय और सम्पत्ति के प्रवेश के कारण वे संघर्षरत होते हैं। इस अराजकता को समाप्त करने और पुनः अपनी स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए वे एक समझौता करते हैं। यह समझौता दो सार्वभौमिक लक्ष्यों पर आधारित होता है पहला यह कि मनुष्य जो समूह बनाते हैं उसके अपने धन-जन की रक्षा में सम्पूर्ण समाज की सहायता उन्हें प्राप्त हो सके और दूसरे वे अधिकतम स्वतंत्र हो सकें।

सामाजिक समझौते के क्रियाशीला एवं केन्द्रीय भाग का अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य अपने सम्पूर्ण अधिकार एवं शक्तियाँ समाज को समर्पित कर देता है। इस हस्तान्तरण की शर्त है समता, अर्थात सभी के साथ एक ही-सी शर्त। अतः इस समझौते से प्रत्येक को लाभ है। इस समझौते के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ समाज कभी भी दमनकारी एवं स्वतन्त्रता विरोधी नहीं हो सकता। इस समूहीकरण से एक नैतिक और सामूहिक निकाय का जन्म होता है।

यद्यपि सभी व्यक्ति अपने अधिकारों का पूर्ण समर्पण करते हैं तथापि जो अधिकार विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत हैं, मनुष्य उन्हें अपने पास रख सकते हैं। उदाहरणार्थ समाज का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं होता कि व्यक्ति क्या खाता है, क्या पहनता है। पर कोई विषय सार्वजनिक महत्त्व का है अथवा नहीं इसका निर्णय समाज ही करता है।

इस समझौते के फलस्वरूप हुई एकता पूर्ण है, क्योंकि ''प्रत्येक व्यक्ति सबके हाथों में अपने आपको समर्पित करते हुए किसी के भी हाथों में अपने को समर्पित नहीं करता'' एवं ''प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व और अपनी पूर्ण शक्ति को सामान्य प्रयोग के लिए, सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशन के अधीन समर्पित कर देता है और एक समूह के अविभाज्य अंग के रूप में उन्हें प्राप्त कर लेता है। अतः समाज की सामान्य इच्छा सभी व्यक्तियों के लिए सर्वोच्च हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति उसके अधीन हो जाता है।'' रूसो के समाज में किसी भी सदस्य को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, सबका स्थान समान है। इस तरह राज्य में नागरिक स्वतन्त्रता ही नहीं अपितु समानता भी प्राप्त करते हैं।

रूसो के अनुसार यह समझौता निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति सामान्य इच्छा में निरन्तर भाग लेता रहता है और इस तरह राज्य को निरन्तर सहमति प्रदान करता रहता है।

संविदा के कारण मनुष्य अपने शरीर को अपने अधिकारों और शक्तियों को जिस सार्वजनिक सत्ता को समर्पित करता है, वह सब व्यक्तियों से मिलकर ही निर्मित होती है। इसी को प्राचीनकाल में नगर राज्य कहते थे और अब गणराज्य या राज्य-संस्था या राजनीतिक समाज कहते हैं। इसका निर्माण जिन व्यक्तियों से मिलकर होता है उन्हीं को सामूहिक रूप से 'जनता' कहा जाता है। जब हम उन्हें राजशक्ति की अभिव्यक्ति में भाग लेते हुए देखते हैं तब हम उन्हें 'नागरिक' कहते हैं और जब राज्य के कानून पालकों के रूप में देखने हैं तो उन्हें हम 'प्रजा' की संज्ञा देते हैं। संक्षेप में, रूसो के अनुसार सामूहिक एकता 'राज्य', 'शक्ति', 'जनता', 'नागरिक' एवं 'प्रजा' सब कुछ है।

रूसो के अनुसार समझौता व्यक्ति के दो स्वरूपों के मध्य होता है। मनुष्य एक ही साथ निष्क्रिय प्रजाजन भी हैं और क्रियाशील सम्प्रभु भी। एक सम्प्रभुता पूर्ण संघ का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति केवल उतना ही स्वतन्त्र नहीं रहता जितना वह पहले था बल्कि सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत उनकी स्वतन्त्रता और भी अधिक बढ़ जाती है तथा सुरक्षित बन जाती है।

समझौते के फलस्वरूप समाज अथवा राज्य का स्वरूप सावयिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति राज्य का अविभाज्य अंग होने के कारण राज्य से किसी भी प्रकार से अलग नहीं हो सकता और न वह राज्य के विरूद्ध आचारण ही कर सकता है। रूसो का समाज हॉब्स एवं लॉक की धारणा के समान व्यक्तिवादी नहीं है। रूसो का यह समझौता एक नैतिक तथा सामूहिक प्राणी का निर्माण करता है जिसका अपना निजी जीवन है, अपनी निजी इच्छा है तथा अपना निजी अस्तित्व है। रूसो इसे सार्वजनिक व्यक्ति कहकर पुकारता है। राज्य या समाज का सावयविक रूप बतलाते हुए रूसो ने एक स्थान पर लिखा है कि विधि निर्माण शक्ति सिर के समान, कार्यकारिणी बाहु के समान, न्यायपालिका मस्तिष्क के समान, कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य पेट के समान और राजस्व रक्त-संचार के समान है।

समझौते द्वारा व्यक्ति के स्थान पर समष्टि और व्यक्ति की इच्छा के स्थान पर सामान्य इच्छा आ जाती है। सामान्य इच्छा का सिद्धान्त रूसो के सामाजिक समझौते का सर्वाधिक विशिष्ट अंग है। सामान्य इच्छा सदैव न्याययुक्त होती है और जनहित इसका लक्ष्य होता है।

सामाजिक समझौते से उत्पन्न होने वाला समाज अथवा राज्य ही स्वयं सम्प्रभुता सम्पन्न होता है। अपने निर्माण की प्रक्रिया में समाज स्वयं सम्प्रभुताधारी बन जाता है और समाज का प्रत्येक सदस्य इस प्रभुता-सम्पन्न निकाय का एक निर्णायक भाग होता है। समझौते से किसी प्रकार की स्थापना नहीं होती, अपितु सामान्य इच्छा पर आधारित सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाज की स्थापना होती है और सरकार इस प्रभुतव शक्ति द्वारा नियुक्त यन्त्रमात्र होती है।

10.7.1 रूसो की प्राकृतिक अवस्था और सामाजिक संविदा की आलोचना

रूसो की प्राकृतिक अवस्था और सामाजिक संविदा सिद्धान्त की आलोचना के मुख्य बिन्दु निम्नांकित हैं-

रूसो ने प्राकृतिक अवस्था का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह निराधार एवं काल्पनिक है। ऐतिहासिक तथ्य यह प्रमाणित नहीं करते कि मनुष्य कभी ऐसा शान्तिमय, सुखमय और आदर्श जीवन यापन करते थे। रूसो की प्राकृतिक अवस्था मानव-स्वभाव की गलत धारणा पर आधारित है।

रूसो प्रगति के सिद्धान्त का विरोध करते हुए कहता है कि मानव-समाज का निरन्तर ह्रास हो रहा है किन्तु यह विचार तर्क-सम्मत नहीं है। बल्कि मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति उसे नित्य नवीन क्षेत्रों की ओर उन्मुख करती है, पीछे की ओर नहीं धकेलती।

रूसो के अनुसार समझौता व्यक्ति एवं समाज में होता है, किन्तु दूसरी ओर समाज समझौते का परिणाम है-यह स्पष्टतः एक विरोधात्मक है और इस दृष्टिकोण से समझौता असंगत हो जाता है।

रूसो की यह धारणा भी गलत है कि राज्य का जन्म किसी समझौते का परिणाम है। राज्य का जन्म तो मानव के क्रमिक विकास द्वारा हुआ है।

रूसो समझौते के द्वारा व्यक्ति की खुशियों, कामनाओं और स्वतन्त्रता को, सामान्य इच्छा की आड़ में राज्य की इच्छा पर न्यौछावर कर देता है।

रूसो का समझौता राज्य-संस्था के अभाव में सम्भव नहीं है। समझौते के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रतिपादन करा सकने वाली कोई शक्ति विद्यमान हो अतः राज्य-संस्था के प्रादुर्भूत होने के बाद तो मनुष्य आपस में कोई समझौता कर सकते हैं, उसके पहले नहीं। अराजक दशा में भी मनुष्य परस्पर मिलकर कोई समझौता कर सकते हैं, यह कतई युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

रूसो के सामान्य इच्छा की जो व्याख्या की है, वह राज्य को स्वेच्छाचारी बना देती है। चूँकि विधि निर्माण इसी सामान्य इच्छा का अबाध अधिकार है, अतः यह अन्याय भी कर सकती है। इसकी आड़ में निरंकुशता एवं अन्याय को प्रोत्साहन मिल सकता है।

10.8 रूसो की सामान्य इच्छा सम्बन्धी विचार

रूसो के सामाजिक संविदा के सिद्धान्त में 'सामान्य इच्छा' का बहुत अधिक महत्व है। 'सामान्य इच्छा' का सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन के लिए रूसो की अमर देन है। लेकिन जहाँ जनतन्त्र के समर्थकों ने मुक्त हृदय से इसका स्वागत किया है वहाँ निरंकुश शासकों ने इसका दामन पकड़ कर जनता पर मनमाने अत्याचार भी ढाए हैं। शायद ही कोई सिद्धान्त इतना विवादास्पद रहा है जितना की सामान्य इच्छा का सिद्धान्त।

रूसो की सामान्य इच्छा को भली-भाँति समझने के लिए सबसे पहले हमें इच्छा के स्वरूप को समझना चाहिए। रूसो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की दो प्रमुख इच्छाएँ होती हैं-

1. यथार्थ इच्छा (Actual Will)
2. वास्तविक इच्छा (Real Will)

10.8.1 यथार्थ इच्छा-

यथार्थ इच्छा वह इच्छा है जो स्वार्थगत, संकीर्ण एवं परिवर्तनशील है। जब मनुष्य केवल अपने लिए ही सोचता है तब वह यथार्थ इच्छा के वशीभूत होता है। रूसो के अनुसार मनुष्य की यह इच्छा भावना-प्रधान होती है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य विवेकहीनता से कार्य करता है। इनमें व्यक्ति का दृष्टिकोण संकीर्ण तथा अन्तर्द्वन्द्वमयी होता है।

10.8.2 वास्तविक इच्छा-

इसके विपरीत वास्तविक इच्छा वह इच्छा है जो विवेक, ज्ञान एवं सामाजिक हित पर आधारित होती है। रूसो के अनुसार यही एकमात्र श्रेष्ठ इच्छा है एवं स्वतन्त्रता की द्योतक है। यह व्यक्ति की वह उत्कृष्ट इच्छा है जो सुसंगठित,

स्वार्थहीन, कल्याणकारी एवं सुसंस्कृत होती है। यह इच्छा व्यक्ति में स्थाई रूप से निवास करती है। इस इच्छा से संचालित व्यक्ति यथार्थ इच्छा की भाँति अस्थाई परिणामों की ओर आकर्षित न होकर स्थाई निर्णयों को स्वीकार करता है। इसके लिए व्यक्ति सार्वजनिक हित का चिन्तन करते हुए स्वार्थ को निम्न स्थान देता है। मनुष्य की इस इच्छा का अभिव्यक्तिकरण व्यक्ति और समाज के मध्य होता है।

रूसो के अनुसार यथार्थ इच्छा व्यक्ति के 'निम्न स्व' पर आधारित होती है तथा आदर्श इच्छा उसके 'श्रेष्ठ स्व' पर।

यथार्थ और वास्तविक इच्छा के भेद पर ही 'सामान्य इच्छा' का विचार आधारित है। वास्तव में सामान्य इच्छा समाज के व्यक्तियों की आदर्श इच्छाओं का निचोड़ अथवा उनका संगठन और समन्वय है। सामान्य इच्छा सब नागरिकों की इच्छा है, जबकि वे अपने व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं बल्कि सामान्य कल्याण के इच्छुक होते हैं। यह सबकी भलाई के लिए सबकी आवाज है। इस प्रकार से सामान्य इच्छा सामूहिक कल्याण का प्रतिनिधित्व करती है।

सामान्य इच्छा की व्याख्या करते हुए रूसो कहता है- ''मेरी सामान्य इच्छा के अनुबन्ध में सभी लोग अपना सर्वस्व राज्य को सौंप देते हैं। राज्य का हित सभी नागरिकों का सर्वश्रेष्ठ हित हैं।'' वह आगे कहता है- ''हमारे समस्त क्रियाकलाप हमारी इच्छा के परिणाम है किन्तु राज्य के कल्याणार्थ जो मेरी इच्छा है वह व्यक्तिगत लाभों की इच्छा से या समाज के कल्याण की इच्छा से अधिक नैतिक है, क्योंकि व्यक्तिगत लाभों या समाज के लोगों की इच्छा का ध्येय बदल सकता है। चूँकि 'सामान्य इच्छा' समस्त नागरिकों की सर्वश्रेष्ठ इच्छाओं का योग है, अतः वह सर्वसाधारण की पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न इच्छा ही है।'' आगे चलकर रूसो पुनः लिखता है, ''चूँकि सामान्य इच्छा मेरी ही सर्वश्रेष्ठ इच्छा है अतः मुझे इस इच्छा का पालन अवश्य ही करना चाहिए। यदि मैं किन्हीं स्वार्थोंवश उस इच्छा को पूरा नहीं करता तो समस्त समाज की सामान्य इच्छा मुझे मजबूर कर सकती है कि मैं तदनुसार आचरण करूँ। क्योंकि सामान्य इच्छा के आदर्शों का पालन करने में स्वयं अपने आदर्शों का ही पालन कर रहा हूँ और इस प्रकार सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा हूँ।''

रूसो के मतानुसार संसदीय प्रशासन प्रणाली में सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व सम्भव नहीं है, क्योंकि ''जब राष्ट्र अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर देता है तब सामान्य इच्छा स्वतन्त्र नहीं रह जाती है। सत्य यह है कि सामान्य इच्छा का अस्तित्व ही नहीं रहता।'' रूसो का कहना है कि प्रदत्त सामान्य इच्छा का अर्थ तो मृत सामान्य इच्छा है।

स्पष्ट है कि रूसो के अनुसार सामान्य इच्छा व्यक्ति का ही विशिष्ट रूप नहीं वरन राज्य का भी है। प्रत्येक समुदाय एवं संस्थान, जिसके सदस्यों में सार्वजनिक भावना होती है, एक सामूहिक मस्तिष्क की विद्यमानता को इंगित करता है। यह सामूहिक मस्तिष्क व्यक्तियों के मस्तिष्कों के योग से उच्चतर होता है। इस प्रकार राज्य को, जो कि सबसे उच्च समुदाय है, सामूहिक मस्तिष्क भी उच्चतर होगा एवं एक नैतिक अस्तित्व रखेगा। रूसो का विचार है कि जिस अनुपात में लोक सार्वजनिक हित को सामने रख सकेंगे और अपने व्यक्तिगत हितों को भुला सकेंगे उसी अनुपात में सामान्य इच्छा पूर्ण होगी।

10.8.3 सामान्य इच्छा का निर्माण

रूसो के अनुसार सामान्य इच्छा के निर्माण की प्रक्रिया 'सर्वसाधारण की इच्छा' से प्रारम्भ होती है। व्यक्ति समस्याओं को पहले स्वयं के दृष्टिकोण से देखते हैं जिसमें उनकी यथार्थ एवं वास्तविक दोनों इच्छाएँ शामिल रहती हैं, किन्तु राजनीतिक चेतना वाला व्यक्ति अपने विवेक के प्रकाश में इन इच्छाओं का अशुद्ध और अनैतिक भाग समाप्त कर देता है और तब केवल वास्तविक इच्छा ही बची रहती है। इच्छाओं का ऐसा शुद्ध समन्वय ही सामान्य इच्छा बन

जाती है। सामान्य इच्छा के निर्णय आदर्श होते हैं जिनका पालन सभी व्यक्ति करते हैं। सार्वभौमिकता का प्रतिनिधित्व सामान्य इच्छा ही करती है। जब सार्वभौमिकता लोककल्याण के हित में कार्य करती है तो सामान्य इच्छा का पालन होता है।

10.8.4 सामान्य इच्छा, जनमत और समस्त की इच्छा में अन्तर

सामान्य इच्छा में सामान्य हित पर बल दिया जाता है जबकि जनमत में संख्या बल पर। सामान्य इच्छा एक व्यक्ति या थोड़े व्यक्तियों की इच्छा भी हो सकती है, किन्तु जनमत का आधार यह है कि किस विषय पर जनता को कितना समर्थन प्राप्त है।

रूसो के अुनसार सामान्य इच्छा केवल सामान्य हितों का विचार करती है, समस्त इच्छा वैयक्तिक हितों का विचार करती है और विशेष इच्छाओं का योग मात्र है। सामान्य इच्छा का 'सम्पूर्ण' के रूप में (व्यक्तियों के एक समूह मात्र के रूप में नहीं) समाज की इच्छा को अभिव्यक्त करती है, वह सदस्यों की परस्पर विरोधी इच्छाओं के बीच समझौता नहीं है बल्कि यह एकल तथा एकात्मक इच्छा है। हॉब्स का यह कथन कि 'लेवियाथन' की सर्वोच्च इच्छा सबकी इच्छाओं से कहीं अधिक है और वह एक ही व्यक्ति में उन सबका एकीकृत हो जाना है, रूसो की सामान्य इच्छा पर भी लागू होता है। सामान्य इच्छा केवल वास्तविक इच्छा का सार है और सदैव सामान्य हित की ओर ही संकेत करती है। सामान्य इच्छा समाज के उच्चतम विचार की अभिव्यक्ति होती है और यह आवश्यक नहीं है कि समाज की बहुसंख्या द्वारा यह निर्धारित हो। सामान्य इच्छा में भावना की प्रधानता है जबकि सर्वसम्मति अथवा समस्त की इच्छा में सम्मति देने वाले व्यक्तियों की संख्या का महत्व है। वास्तविक इच्छा की प्रधानता होने पर जनहित में वृद्धि होगी और यथार्थ इच्छा की प्रधानता होने पर केलव वर्ग विशेष की स्वार्थ-सिद्धि होगी। सामान्य इच्छा में अहित की कोई गुंजाइश ही नहीं है। वह तो सदा श्रेष्ठ और शुभ है।

10.8.5 रूसो की सामान्य इच्छा की विशेषताएँ-सामान्य इच्छा विवेकयुक्त एवं बुद्धिजन्य होने के कारण वह आत्म-विरोधी नहीं होती। इस इच्छा का अभिप्राय ही यह है कि विभिन्नता में एकता स्थातिप हो जाए। रूसो के स्वयं के शब्दों में-''यह राष्ट्रीय चरित्र की एकता को उत्पन्न और स्थिर करती है और उन समान गुणों में प्रकाशित होती है जिनके किसी राज्य के नागरिकों में होने की आशा की जाती है''

सामान्य इच्छा स्थायी एवं शाश्वत है। ज्ञान और विवेक पर आधारित होने के कारण इसमें स्थिरता होती है। रूसो के शब्दों में-''इसका कभी अन्त नहीं होता, यह कभी भ्रष्ट नहीं होती। यह अनित्य, अपरिवर्तनशील तथा पवित्र होती है।''

सामान्य इच्छा सदैव शुभ, उचित तथा कल्याणकारी होती है और सदैव जनहित को लेकर चलती है। यह इच्छा श्रेष्ठ इच्छा है क्योंकि यह सबकी वास्तविक इच्छाओं का योग है। सामान्य इच्छा के होते हुए प्रथम तो कोई दोषपूर्ण निर्णय हो ही नहीं सकता और यदि ऐसा हो भी जाए तो दोष सामान्य इच्छा का नहीं वरन् उसके संचालन करने वालों का होता है।

सामान्य इच्छा सम्प्रभुताधारी है। सम्प्रभुता के समान ही वह अविभाज्य अदेय है। यह छोटे-छोटे समूहों में विभक्त नहीं हो सकती। इसे सरकार के विभिन्न अंगों-कार्यपालिका, न्यायपालिका आदि में भी विभक्त नहीं किया जा सकता। इसके विभाजन का अर्थ इसे नष्ट करना है। सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व भी इसके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। सम्प्रभुता के समान ही सामान्य इच्छा भी निरपेक्ष है। रूसो के अनुसार सामान्य इच्छा द्वारा प्रेरित कार्य सदैव

निष्काम होते हैं। यह निष्काम दो प्रकार से होती है-प्रथम, इसका ध्येय सदैव सामान्य हित होता है और द्वितीय, यह सामान्य हित की बातों में जनसेवा भाव से प्रेरित होती है।

सामान्य इच्छा को राज्य का अधिकार मान लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य शक्ति से नहीं, अपितु जनता की सहमति से संचालित होता है।

10.8.6 रूसो की सामान्य इच्छा और विधि-निर्माण के सम्बन्ध में विचार

रूसो के अनुसार सामान्य इच्छा का महत्वपूर्ण कार्य विधि-निर्माण करना है। रूसो के ही शब्दों में संविदा राज्य को अस्तित्व एवं जीवन प्रदान करता है और व्यवस्थापन द्वारा हमें उसे गति तथा इच्छा प्रदान करनी होती है, क्योंकि जिस मूल संविदा के द्वारा राज्य का निर्माण तथा संगठन होता है, वह किसी भी प्रकार यह निर्धारित नहीं करता कि राज्य को अपने प्रतिक्षण के लिए क्या करना चाहिए।''

विधि-निर्माण का कार्य सम्प्रभुताधारी का है और सम्प्रभुता सामान्य इच्छा में निहित है, अतः विधि-निर्माण एकमात्र सामान्य इच्छा का ही कार्य होना चाहिए। सामान्य इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा विधायी कार्य नहीं किया जा सकता और चूँकि विधि सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है अतः प्रत्येक मनुष्य के लिए उसकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक है। विधि अन्यायपूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि वह उस सामान्य इच्छा का आदेश होती है। जिसका उद्देश्य सर्वसाधारण का वास्तविक कल्याण होता है। रूसो के अनुसार विधि के अधीन रहने पर भी हम स्वतन्त्र रह सकते हैं, यदि विधि स्वयं हमारी इच्छा को ही अभिव्यक्त करती हो। विधि का अस्तित्व भी तभी है जब सब लोग तद्नुसार कार्य करते रहें। रूसो के विचारों में यहाँ एक विरोधाभास है। वह सामान्य इच्छा द्वारा अभिव्यक्त विधि की सर्वोच्चता का भी उतना ही समर्थक है जितना व्यक्तिगत अधिकारों का। वह स्वयं कहता है, ''राज्य अपने सदस्यों पर ऐसा कोई बन्धन नहीं लगा सकता जो समाज के लिए बेकार हो।''

चूँकि सामान्य इच्छा सदैव सद् होती है, किन्तु उसका निर्देशन करने वाली निर्णयबुद्धि पूर्ण ज्ञानयुक्त नहीं होती अतः जनता को सद-असद या शुभ-अशुभ का ज्ञान कराने के लिए और दूरदर्शितापूर्ण एवं विवेक-सम्मत विधि निर्माण करने के लिए रूसो विधि निर्माता का विधायक (स्महपेसंजवत) की भी व्यवस्था करता है। इस विधायक को अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न और उचित विधियों एवं संस्थाओं की व्यवस्था करने में समर्थ होना चाहिए। उसे एक ऐसा विद्वान दार्शनिक होना चाहिए जो जनसाधारण की विभिन्न आवश्यकताओं को समझता हो और परिस्थितियों के अनुरूप विधियों की रूपरेखा बना सकता हो। उसका कार्य मात्र एक विशेषज्ञ परामर्शदता का है। विधियों को कार्यान्वित करने का कार्य सम्प्रभुताधारी ही करेगा।

10.8.7 रूसो की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त की आलोचना

रूसो की सामान्य इच्छा राजदर्शन को एक अमूल्य देन है तथापि इस सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर कटु आलोचना की गई है-

रूसो की सामान्य इच्छा का सिद्धान्त बड़ा अस्पष्ट और जटिल है। यह बताना कठिन है कि यह सामान्य इच्छा कहाँ है। रूसो की सामान्य इच्छा की परिभाषा में हमको कहीं भी स्पष्ट प्रकाश नहीं मिलता।'' वेपर - कहता है कि ''जब रूसो सामान्य इच्छा का पता ही हमको नहीं दे सकता तो इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का लाभ ही क्या हुआ? यद्यपि

रूसो ने हमको सामान्य इच्छा के बारे में बहुत कुछ बतलाया है फिर भी जो कुछ बतलाया गया है वह पूर्णतः अपर्याप्त है।

रूसो के बचाव में हम यहीं कह सकते हैं कि वह पूर्णतः दोषी नहीं है। यह विषय ही बड़ी जटिलता लिए हुए है। 'सामान्य इच्छा' कितनी भी वास्तविक क्यों न हो, वह साकार नहीं हो सकती और उसका यह निराकार स्वरूप ही उसके विश्लेषण को बड़ा कठिन बना देता है।

सामान्य इच्छा जिस सार्वजनिक हित पर आधारित है उसे जानना कठिन है। सार्वजनिक हित की व्याख्या शासकगण अपनी इच्छानुसार करते हैं। ऐसे में सामान्य इच्छा के माध्यम से शासकगण इसका दुरूपयोग भी कर सकते हैं।

मानवीय इच्छा को यथार्थ और वास्तविक इच्छा में बाँटना सम्भव नहीं है। क्योंकि मानवीय इच्छा तो ऐसी जटिल, पूर्ण, अविभाज्य समष्टि है यदि ऐसे विभाजन की कल्पना कर भी ली जाय तो यह निर्णय करना असम्भव सा होगा कि कौन सी इच्छा यथार्थ है और कौन सी वास्तविक?

'सामान्य इच्छा' का सिद्धान्त एक ओर तो राज्य की निरंकुशता की स्थापना करता है और दूसरी ओर क्रान्ति के औचित्य को सिद्ध करता है। रूसो के सिद्धान्त में व्यक्ति अपने समस्त अधिकार 'सामान्य इच्छा' को समर्पित कर देता है जो सर्वोच्च शक्ति के रूप में शासन करती है। यद्यपि उसका उद्देश्य वैयक्तिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना है तथापि बहुमत से असहमत होने वाले व्यक्तियों के लिए बचाव के सभी मार्ग बन्द हैं। रूसो ने व्यक्ति की तुलना में राज्य और सरकार के हाथ में असाधारण सत्ता और शक्ति सौंप दी है। पुनश्च, रूसो लिखता है कि, ''जनता सदैव अपना हित चाहती है, किन्तु वह सदैव इसे नहीं देख सकती।'' अतः जनता को उसका हित बतलाने वाले नेता और पथ-प्रदर्शक सम्पूर्ण सत्ता हथियाकर निरंकुश शासक बन सकते हैं। जोन्स का कहना है कि ''सामान्य इच्छा की धारण के प्रयोग में मनुष्य का भय यह है कि राज्य में तानाशाही की प्रवृत्ति का उदय हो जाता है।''

सामान्य इच्छा का सिद्धान्त छोटे राज्यों में भले ही सफल हो सके, पर आधुनिक विशाल और विविध हितों से परिपूर्ण जनसंख्या वाले राज्यों में सफल नहीं हो सकता। आधुनिक राज्यों में सामान्य हित का निर्धारण करना लगभग असम्भव ही है।

रूसो सामान्य इच्छा के निर्धारण के लिए राजनीतिक दलों की सत्ता और प्रतिनिधि मूलक शासन-व्यवस्था का विरोध करता है जबकि इनका होना आधुनिक प्रजातान्त्रिक राज्यों की सफलता के लिए अनिवार्य है।

रूसो की सामान्य इच्छा न तो सामान्य है और न इच्छा ही, वरन् निराधार एवं अमूर्त चिन्ता मात्र है।

वस्तुतः रूसो की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त की गम्भीरतम आलोचना यही लगती है कि न तो ''यह सामान्य है और न इच्छा ही'' इस आपत्ति का अर्थ यह है कि इच्छा सामान्य होने पर इच्छा ही नहीं रहती। दूसरे शब्दों में इच्छा किसी विशेष की हो सकती है। व्यक्ति अपनी जन्मजात शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए तथा अपनी जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ कामना करता है और कुछ चीजें चाहता है और यही वास्तव में उसकी इच्छा है। इस प्रकार की इच्छा अलग-अलग व्यक्तियों में निवास करती है क्योंकि अलग-अलग व्यक्तियों का अपना-अपना जीवन होता है। वास्तव में सामान्य जीवन जैसी कोई चीज नहीं है और जब सामान्य जीवन ही नहीं है तो सामान्य इच्छा कैसे हो सकती है? हो सकता है कि एक व्यक्ति अपने कल्याण की

इच्छा करे और अपने ही सरीखे दूसरे लोगों के कल्याण की इच्छा करें किन्तु इन दोनों ही सूरतों में इच्छा विशिष्ट होगी, सामान्य नहीं।

10.8.8 रूसो की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त का महत्व

रूसो की सामान्य इच्छा के सिद्धान्त की विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद राजदर्शन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है-

रूसो की सामान्य इच्छा ने आदर्शवादी विचारधारा की नींव डाली जिसे आधार मानकर टी.एन. ग्रीन ने राज्य का मुख्य आधार बल न मानकर इच्छा को माना। उसने इसी सिद्धान्त की सहायता से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि जनतन्त्र बहुमत की शक्ति का परिणाम नहीं है वरन् सक्रिय निःस्वार्थ इच्छा का फल है।

रूसो की सामान्य इच्छा राजनीतिक कार्यों में पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है। उसके अनुसार सामान्य इच्छा का प्रमुख कार्य विधि निर्माण और शासनतन्त्र की नियुक्ति और उसे भंग करना है।

अपने सिद्धान्त के द्वारा रूसो ने व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा सामान्य हित को उभारा है और बतलाया है कि सामान्य उद्देश्य की सामान्य चेतना ही समाज को स्वस्थ और परिष्कृत बनाती है।

रूसो ने एक ऐसे समाज की स्थापना की जिसमें नागरिक नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। रूसो के अनुसार व्यक्ति के अधिकार-स्वतन्त्रता और नैतिकता, सामान्य इच्छा के द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। रूसो के इस सिद्धान्त के आगे चलकर कल्याणकारी राज्य सिद्धान्त के विकास में बड़ा योग दिया। सामान्य इच्छा के सिद्धान्त ने इस विचार का पोषण किया कि राज्य एक नैतिक संगठन है जो मानव की असामाजिक एवं स्वार्थी प्रवृत्तियों का परिष्कार करते हुए सामूहिक कल्याण पर ध्यान देता है।

सामान्य इच्छा का सिद्धान्त समाज एवं व्यक्ति में शरीर तथा उसके अंगों का सम्बन्ध स्थापित करके मानव के सामाजिक स्वरूप को दृढ़ करता है।

रूसो की सामान्य इच्छा स्पष्ट करती है कि राज्य एक प्राकृतिक संस्था है और हम उसका पालन इसलिए करते हैं क्योंकि सामान्य इच्छा हमारी आन्तरिक इच्छा का प्रतिनिधित्व मात्र है।

10.9 रूसो की सम्प्रभुता सम्बन्धी अवधारणा

रूसो का सम्प्रभुता सिद्धान्त हॉब्स, लॉक तथा बोदाँ के विचारों से प्रभावित है। उसने सम्प्रभुता की व्याख्या हॉब्स की पूर्णता और संक्षिप्तता के साथ तथा लॉक की विधि के आधार पर की है।

रूसो ने सम्प्रभुता को सामान्य इच्छा में केन्द्रित माना है। यह समाज अथवा समुदाय में निवास करती है। सम्प्रभुता को जनता में प्रतिष्ठित करके रूसो निरंकुशवाद के विरूद्ध एक बहुत बड़ा शस्त्र प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रभु शक्ति का हिस्सेदार है। चूँकि समाज स्वयं सम्प्रभु है, अतः वहीं सर्वोच्च शक्ति है और उस शक्ति का कोई शत्रु नहीं हो सकता। जनता सरकार के कार्यों पर कड़ी और सचेत निगाह रखती है। यहाँ विद्रोह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि जनता स्वयं सम्प्रभु है।

रूसो ने सम्प्रभुता को 'सामान्य इच्छा' में निहित करके एक असीम, अविभाज्य और अदेय सार्वभौमिकता का समर्थन किया है। हॉब्स की भाँति निरंकुशता के स्तर में उसने कहा है कि ''जिस प्रकार प्रकृति मनुष्य को अपने अंगों

पर निरंकुश सत्ता देती है उसी प्रकार सामाजिक समझौता भी राज्य को अपने अंगों पर सम्पूर्ण निरंकुश सत्ता प्रदान करता है।'' किन्तु हॉब्स की निरंकुशता और रूसो की निरंकुशता में एक बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ हॉब्स की निरंकुशता शासक से सम्बद्ध है वहाँ रूसो की जनता से। रूसो ने हॉब्स की निरंकुश प्रभुता और लॉक की सार्वजनिक इच्छा को एक साथ मिलाकर लोकप्रिय सम्प्रभुता को जन्म दिया है।

रूसो के अनुसार सम्प्रभुता सम्पूर्ण जनता में सामूहिक रूप से निवास करती है अथवा यह 'सामान्य इच्छा' को प्रदर्शित करती है, अतः इसका प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। वास्तव में यह सम्प्रभुता ही विधियों का मूल स्रोत है।

रूसो की सम्प्रभुता सिद्धान्त भी विराधाभासों से पूर्ण है। एक ओर तो वह सम्प्रभुता को असीमित बतलाता है। दूसरी ओर यह भी विचार रखता है कि सम्प्रभुता कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो सामान्य हित के विरोध में हो। सम्प्रभु को सर्वोच्च शक्तियाँ देने पर भी रूसो का आग्रह है कि शासक को उचित प्रकार से शासन करना चाहिए तथा न्याय और समानता का नियम सदैव लागू होना चाहिए। यह विरोधाभास लोकप्रिय शासन के प्रति रूसो के अगाध प्रेम के कारण ही है।

निष्कर्ष रूप में, रूसो लोकप्रिय प्रभुसत्ता में विश्वास रखता है। उसके राजनीतिक दर्शन का रहस्य 'एक राजा के स्थान पर लोकप्रभुत्व को स्थापित करने में है। क्योंकि समाज ही सम्प्रभुता का स्रोत और स्वामी है।

10.10 रूसो के शासन सम्बन्धी विचार

लॉक की भाँति ही रूसो भी राज्य और शासन अथवा सरकार के मध्य अन्तर स्पष्ट करता है। उसके शब्दों में ''सामाजिक समझौते द्वारा निर्मित सम्पूर्ण समाज जिसमें कि सामान्य इच्छा का वास होता है राज्य है। जबकि शासन अथवा सरकार केवल वह व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह है जिसको समाज द्वारा यह अधिकार दिया जाता है कि वह सम्प्रभुता की इच्छा लागू करे।'' अर्थात् यहाँ स्पष्ट है कि व्यक्ति एक बुरे शासक का विरोध कर सकता है, राज्य का नहीं।

रूसो के विचार से स्पष्ट है कि सामाजिक समझौते द्वारा राज्य अथवा सम्प्रभुता का जन्म होता है, शासन या सरकार का नहीं। शासन तो एक मध्यवर्ती संस्था (।द प्दजमतउमकपंजम ठवकल) है जिसकी स्थापना सम्प्रभुता ओर जनता के बीच की जाती है ताकि लोगों की नागरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके। इसी क्रम में शासन के निर्माण के लिए 'एकत्रित सम्प्रभु जनता' ने पहले शासन का स्वरूप निर्धारित किया और तब यह निश्चित किया कि इस प्रकार स्थापित पदों पर किन व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए। रूसो का विश्वास है कि प्रत्येक शासन का रूप जनतन्त्र से ही आरम्भ होता है।

रूसो के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि राज्य पूरे समाज का सूचक है जो अनुबन्ध द्वारा बना है और सामूहिक इच्छा को अभिव्यक्त करता है। इसके विपरीत शासन केवल शक्ति या व्यक्ति-समूह का सूचक है जो समाज द्वारा आदेश पाकर सामान्य इच्छा को कार्यान्वित करने में तत्पर है। रूसो ने सरकार को न्याय-रक्षक मण्डल अथवा राजा कहकर पुकारा है। सरकार या शासन सम्प्रभु सम्पन्न जनता की नौकर मात्र है और सम्प्रभु जनता द्वारा दी गई शक्तियों को प्रयोग ही कर सकता है। जनता अपनी इच्छानुसार सरकार की शक्ति को सीमित या संशोधित कर सकती है और उसे वापिस भी ले सकती है। यहाँ हॉब्स और रूसो की धारण में स्पष्ट अन्तर है। हॉब्स के अनुसार शासन को न तो बदला जा सकता है और न उसके विरूद्ध विद्रोह ही हो सकता है क्योंकि जनता और शासन के सम्बन्ध में आधार संविदा

है। इसके विपरीत रूसो के शासन या सरकार का निर्माण किसी संविदा द्वारा नहीं बल्कि सम्प्रभु सम्पन्न जनता के प्रत्यादेश द्वारा होता है।

रूसो ने शासन का वर्गीकरण किया है, किन्तु यह वर्गीकरण रूसो के राजनीतिक चिन्तन की सबसे कमजोर कड़ी है। उसके अनुसार शासन के निम्न रूप हो सकते हैं:-

(1) राजतन्त्र (Monarchy) (2) कुलीनतन्त्र (Aristocracy)

(3) जनतन्त्र (Democracy) (4) मिश्रित (Mixed)

जिस सरकार की बागडोर एक व्यक्ति के हाथ में होती है तो उसे राजतन्त्र, कुछ व्यक्तियों के हाथ में होती है तो उसे कुलीनतन्त्र और समस्त जनता या उसके बहुमत के हाथ में होती है तो उसे जनतन्त्र कहा गया है। सरकार के इन तीनों प्रकारों की रूपरेखा बदलती रहती है। चौथा वर्ग मिश्रित सरकार का है। सरकार के इन रूपों में सर्वोत्तम कौन-सा है, सैद्धान्तिक रूप से यह बताना सम्भव नहीं है। परिस्थितियों और देशकाल के अनुसार कोई भी शासन सर्वोत्तम या निकृष्टतम हो सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि शासन की प्रगति का निश्चित चिन्ह् जनसंख्या है। जिस राज्य में जनसंख्या बढ़ती जाएगी, समझना चाहिए कि वह प्रगति की ओर बढ़ रहा है। रूसो की यह बात आज के युग में निश्चय ही विचित्र लगती है।

उल्लेखनीय है कि शासन के विविध प्रकारों में रूसो का सुझाव यूनानी नगर राज्यों के प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की ओर है। वह प्रतिनिधि सभाओं को राजनीतिक पतन का चिन्ह् मानता है। प्रतिनिधित्व का अर्थ है- स्वतन्त्रता का हनन। ब्रिटेन की निवा्रचन प्रथा के विषय में उसका मत था कि वहाँ नागरिक केवल निर्वाचन काल में ही स्वतन्त्र होते हैं, इसके बाद दास बन जाते हैं। रूसो ने देखा कि सरकार में लोक नियन्त्रण से बचने और अपनी शक्तियों का प्रसार करने की प्रवृत्ति होती है। अतः उसने यह मत प्रकट किया कि सरकार द्वारा शक्ति के अपहरण को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि प्रभुत्व सम्पन्न जनता की समय-समय पर सभाएँ हुआ करें जो यह निश्चय करे कि वर्तमान शासन व्यवस्था और अधिकारियों में कोई परिवर्तन किया जाना उचित है अथवा नहीं। उसका यह भी कहना था कि जब जनता प्रभुत्व सम्पन्न सभा के रूप में एकत्रित होती है तो सरकार का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाता है। रूसो के दृष्टिकोण में इस विचार का पूर्वाभास मिलता है कि निश्चित अवधि पर संविधान की तथा सरकारी अधिकारियों के कार्यों की समीक्षा की जानी चाहिए।

10.11 रूसो के कानून, स्वतंत्रता, समानता, धर्म एवं शिक्षा सम्बन्धी विचार

10.11.1 रूसो का कानून सम्बन्धी विचार

रूसो ने अपनी रचना 'राजनीतिक अर्थशास्त्र' में कानून के विशेष महत्त्व देते हैं। कानून ही से प्रत्येक व्यक्ति को यह शिक्षा मिलती है कि वह अपने निर्धारित विचारों के अनुरूप कार्य करे और अपने से असंगत रूप के कार्य से बचे। यदि कानून का पालन नहीं किया जाएगा तो नागरिक समाज की व्यवस्था समाप्त हो जाएगी और मनुष्य को पुनः प्राकृतिक अवस्था में लौट जाना पड़ेगा। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सामाजिक अनुबन्ध में रूसो ने चार प्रकार के कानूनों का वर्णन किया है-(1) राजनीतिक कानून जिनके द्वारा सम्प्रभुता का राज्य के साथ सम्बन्ध निर्धारण होता है, (2) दीवानी कानून जिनसे नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित होते हैं, (3) फौजदारी कानून जो कानून की आज्ञा

के उल्लंघन का दण्ड निश्चिय करते हैं और (4) जनमत नैतिकता तथा रीति-रिवाज। रूसो के अनुसार ये राज्य के वास्तविक संविधान हैं और के हृदय-पटल पर अंकित हैं।

रूसो के अनुसार कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। सामान्य इच्छा सदैव जनता के कल्याण की कामना करती है, अतः यह कभी भी कानून द्वारा अन्याय करने की इच्छा नहीं कर सकती। ''कानून हमारे आन्तरिक संकल्प की अभिव्यक्ति है अतः स्वतन्त्रता और कानूनों की आज्ञाकारिता में कोई विरोध नहीं है।''

रूसो के अनुसार कानून ही समाज में समानता लाता है और कोई भी राज्य केवल तभी तक वैध है जब तक वह कानून के अनुसार कार्य करता है। स्पष्ट है कि रूसो भी कानून को उसकी प्रकार सर्वोच्चता देता है जिस प्रकार प्लेटो ने दी थी। अन्तर केवल यही है कि रूसो अपने कानून रूपी प्रभु को सामान्य इच्छा के अधीन कर देता है।

कानून पर विचार करते समय रूसो ने विधि निर्माता की आवश्यकता को नहीं भुलाया है। सही रूप में कानून की व्यापकता का उद्घाटन करने के लिए विधि निर्माता तथा विधायक का होना जरूरी है। किन्तु रूसो इसके लिए अद्वितीय बौद्धिक क्षमतायुक्त प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की ही संस्तुति करता है।

10.11.2 रूसो का स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार

रूसो स्वतन्त्रता का महान पैगम्बर था। अपने ग्रन्थ 'Social Contract में उसने लिखा है- ''स्वतन्त्रता मानव का परम आन्तरिक तत्त्व है।'' स्वतन्त्रता मानवता का प्राण है जिसके अपहरण का अर्थ है मानवता का विलोप होना। स्वतन्त्रता ही नैतिकता का आधार है। स्वतन्त्र भाव से काम करने पर ही उत्तरदायित्व अभिव्यक्त होता है। जड़वत कार्य करने में नैतिकता की अभिव्यंजना नहीं हो सकती। रूसो सम्प्रभु और सरकार में विभेद करता है। यदि सरकार सम्प्रभु की शक्ति का अपहरण कर ले तो सामाजिक अनुबन्ध टूट जाता है और समस्त नागरिक अपनी उस नैसर्गिक स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेते हैं जिसे नागरिक समाज में आने पर उन्होंने त्याग दिया था पर चूँकि अनुबन्ध सहमति पर आश्रित है अतः अनुबन्धवाद का समर्थन वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अनुमोदन है।

रूसो स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता या मनमाना कार्य करने की आजादी से नहीं लेता। समाज द्वारा सामान्य हित की दृष्टि से बनाए गए नियमों का पालन व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए। उसके विरूद्ध किया गया आचरण सामान्य इच्छा की अवहेलना करना होगा। जो स्वतन्त्रता नहीं उच्छृंखलता होगी।

अतः स्मरणीय है कि रूसो लॉक की भाँति स्वतन्त्रता, जीवन और सम्पत्ति को मनुष्य के प्राकृतिक नहीं अपितु राज्य-प्रदत्त नागरिक अधिकार मानता है।

10.11.3 रूसो का समानता विषयक विचार

रूसो की मान्यता है कि समानता के अभाव में स्वतन्त्रता नहीं रह सकती। यद्यपि भौतिक असमानताएँ नष्ट नहीं हो सकतीं किन्तु मनुष्य कानूनी दृष्टि से समान बनाए जा सकते हैं। रूसो यह भी नहीं चाहता कि किसी को इतनी शक्ति प्राप्त हो जाए कि वह उसका निरंकुश प्रयोग कर सके। शक्ति का प्रयोग तो कानून और पद के अनुरूप ही करना होगा। राज्य का आर्थिक स्वास्थ्य तभी बना रह सकता है जब न कोई नागरिक इतना धन सम्पन्न हो कि वह दूसरे को खरीद ले और न गरीब एवं साधनहीं हो कि वह स्वयं को ही बिक जाने दे। रूसो के इन विचारों से धन की भयावह विषमताओं के प्रति उसकी घृणा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

10.11.4 रूसो का धर्म सम्बन्धी विचार

रूसो के धर्म सम्बन्धी विचार क्रान्तिकारी हैं। वह हॉब्स की तरह धर्म को राज्याधीन मानता है। उसने धर्म के तीन प्रकार बताए हैं-(1) वैयक्तिक धर्म, (2) नागरिक धर्म एवं (3) पुरोहित धर्म।

वैयक्तिक धर्म मनुष्य की अपने संस्थाओं और अपने आन्तरिक विश्वासों पर आधारित है। यह धर्म सर्वश्रेष्ठ है किन्तु सांसारिक दृष्टि से अव्यावहारिक है। वैयक्तिक धर्म ईश्वरीय नियमों पर आधारित आडम्बरहीन सहज धर्म है।

नागरिक धर्म राष्ट्रीय तथा वाह्य और संस्कारों, रूढ़ियों तथा विधियों से निश्चित है। नागरिक धर्म रूसो की एक निराली कल्पना है जो सम्भवतः उसके मस्तिष्क में प्लेटो के 'लॉज' एवं अन्य यूनानी विचारकों के चिन्तन से उत्पन्न हुई है। रूसो ने समाज को दृढ करने के लिए नागरिक धर्म की कल्पना की है। रूसो ने इस धर्म के बीच विधेयात्मक सूत्र बताए हैं-(1) ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना और यह मानना कि वह परमज्ञानी, दूरदर्शी और दयालु है, (2) पुनर्जन्मवाद में विश्वास (3) पुन्यात्मा सुख पायेंगे, (4) पापात्मा दण्ड भोगेंगे तथा (5) सामाजिक अनुबन्ध और विधियों की पवित्रता की रक्षा करना महत् कर्त्तव्य है। रूसो ने नागरिक धर्म का केवल एक निषोधात्मक सूत्र बतलया है और वह है असहिष्णुता। इसका अभिप्राय है कि असहिष्णु व्यक्तियों के लिए राज्य में स्थान नहीं होना चाहिए। यह आश्चर्य की बात है कि रूसो नागरिक धर्म पर पूर्व सम्मति देकर फिर उसके प्रतिकूल आचरण करने वालों का वध करने का समर्थन करता है। आलोचकों का तर्क है कि रूसो का यह विचार निरंकुशता को प्रोत्साहन देने वाला है जो उसकी उदारता को समाप्त कर देता है।

पुरोहित धर्म वह धर्म है जो पुरोहितों-पादरियों द्वारा दिया जाता है। यह धर्म सबसे निष्कृष्ट है क्योंकि यह दो तरह के प्रधानों अथवा सत्ताओं को जन्म देता है और जनसाधारण को परस्पर विरोधी कर्त्तव्यों में फँसा देता है। फलस्वरूप संघर्ष और कहल का वातारण उत्पन्न होता है और राज्य की प्रगति में बाधा पहुँचती है।

रूसो के अनुसार राज्य को नागरिक विश्वासों के धर्म पर जो सामाजिकता और सज्जनता पर बना है चलना चाहिए।

10.11.5 रूसो का शिक्षा सम्बन्धी विचार-रूसो के शिक्षा सम्बन्धी विचार उसके श्म्उपसमश् नामक ग्रन्थ में है जिसमें शिक्षा का उद्देश्य 'मनुष्य की निर्वासित प्रकृति की पुनर्स्थापना बतलाया गया है। इस ग्रन्थ के कारण उसे प्रगतिवादी शिक्षा का जनक माना जाता है। रूसो ने ऐसी शिक्षा का समर्थन किया है जो मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति को संवार कर उसे वैभवशाली बनाए। रूसो ने शिक्षा-योजना और शिक्षण विधि जो विचार दिए हैं, वे आज भी शिक्षा के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। रूसो अपने समय की शिक्षा व्यवस्था का विरोधी था। उसने लिखा था कि तत्कालीन शिक्षा ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करती है जिनके पास न प्राकृतिक स्वाधीनता है, न पूर्ण नागरिक आश्रय। बाल-शिक्षा को पादरियों के हाथ से निकाल लेने तथा किशोरावस्था तक धर्म-शिक्षा का निषेध करने की उसकी प्रस्थापनाओं के कारण पादरी वर्ग उससे रूष्ट हो गया। उसने उसके ग्रन्थ 'एमिल' को अग्नि के भेंट चढ़ा दिया और फ्राँस की संसद तथा जेनेवा की सरकार ने भी उसकी निन्दा की।

10.12 रूसो की हाब्स तथा लॉक के साथ तुलना

इनमें सबसे पहले बड़ा अन्तर जो हम देखते हैं वह यह कि सोशल कॉन्टैक्ट में हमें इस बात का कोई विस्तृत विवरण नहीं मिलता है कि प्राकृतिक अवस्था कैसी थी और कौन से उद्देश्यों से मनुष्य राज्य की स्थापना करने के लिये उत्प्रेरित हुये। इसके विपरीत, हॉब्स तथा लॉक ने इस विषय पर विस्तारपूर्वक लिखा है। इसी के साथ-साथ रूसो के

लेखों में प्राकृतिक कानून तथवा प्राकृतिक अधिकारों का जिनका कि हॉब्स तथा लॉक की विचार प्रणालियों में इतना महत्वपूर्ण स्थान है, पूर्ण अभाव है। इन दोनों बातों का अभाव महत्वपूर्ण है, यह इस बात का सूचक है कि रूसो के मस्तिष्क में संविदा सिद्धान्त का स्थान केवल गौण है।

दूसरा अन्तर यह है कि जहाँ तक कि संविदा की शर्तों का सम्बन्ध है, रूसो, हॉब्स के सदृश परन्तु लॉक के विपरीत, व्यक्ति द्वारा अपनी समस्त शक्तियों के समर्पण की कल्पना करता है। परन्तु रूसो तथा हॉब्स में एक स्पष्ट अन्तर है। हॉब्स के मतानुसार व्यक्ति अपनी शक्तियों का समर्पण एक व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्ति समूह को करता है जो कि संविदा में कोई पक्षकार नहीं है, बल्कि उससे बाहर है, किन्तु रूसो के अनुसार व्यक्ति अपने आपको सम्पूर्ण समाज को समर्पित करता है। इन दोनों धारणाओं में आकाश-पाताल का अन्तर है जबकि लॉक के अनुसार यह समर्पण केवल आंशिक होता है, केवल प्राकृतिक कानून की व्याख्या करने तथा उसे लागू करने का अधिकार ही समाज को समर्पित किया जाता है, अन्य समस्त प्राकृतिक अधिकार व्यक्ति के पास अक्षुण्ण रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि हॉब्स तथा रूसो, दोनों के अनुसार (निःसन्देह दोनों में आधारभूत अन्तर तो है ही) राज्य निरंकुश अर्थात् एक नश्वर-देव बन जाता है, किन्तु लॉक के अनुसार राज्य का अधिकार सीमित रहता है। तीनों विचारकों के इस अन्तर को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

तीसरा अन्तर हम यह देखते हैं कि हॉब्स के अनुसार संविदा के फलस्वरूप जिस इच्छा का उदय होता है, वह वास्तविक होती है क्योंकि वह एक व्यक्ति की इच्छा होती है, परन्तु इसी कारण वह सामान्य नहीं हो सकती, लॉक में उस इच्छा को सामान्य तो कहा जा सकता है, क्योंकि वह बहुमत की इच्छा है, परन्तु वह वास्तविक नहीं होती क्योंकि वह एकात्मक नहीं होती, रूसो में वह वास्तविक तथा सामान्य दोनों है। वह वास्तविक इसलिये है क्योंकि वह समाज जिसकी इच्छा वह होती है, एक नैतिक तथा सामूहिक व्यक्ति होता है और इसलिये एकात्मक है, वह सामान्य है, क्योंकि वह समस्त नागरिकों की एक सामूहिक इच्छा है।

चौथा अन्तर इस प्रकार है कि रूसो का नश्वर-देव एक सम्पूर्ण समाज है, जबकि हॉब्स का केवल एक व्यक्ति। दोनों में इस महत्वपूर्ण अन्तर के अतिरिक्त इतना ही महत्वपूर्ण एक अन्तर और भी है, वह यह है कि हॉब्स के नश्वर-देव का व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका दोनों शक्तियों के ऊपर अधिकार है और इसलिये यह निरंकुश है और प्रजाजन दास, किन्तु रूसो का सम्प्रभुता सम्पन्न समाज केवल व्यवस्थापिका शक्तियों का प्रयोग करता है। कार्यपालिका शक्तियों को वह सरकार को सौंप देता है जो कि उसका अभिकर्ता अथवा नौकर है। इस प्रकार से रूसो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना चाहता है। दूसरे शब्दों में, रूसो में सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य तथा सरकार में भेद है, जबकि हॉब्स में दोनों एकरूप है।

लॉक के मतानुसार सरकार को न्यास कहकर पुकारा गया है, उनकी शक्तियाँ धरोहर के रूप में है, संविदात्मक नहीं। यहाँ तक तो लॉक तथा रूसो में कुछ साम्य है। परन्तु जबकि रूसो सम्प्रभुता सम्पन्न जनता को अपनी व्यवस्थापिका शक्तियों को किसी प्रतिनिधि निकाय के पक्ष में हस्तान्तरित करने का निषेध करता है, लॉक के विचार में व्यवस्थापिका शक्तियों का प्रयोग साधारणतया जनता के प्रतिनिधियों द्वारा ही होना चाहिए। सारांश यह है कि जब कि रूसो संसदात्मक संस्थाओं का बहिष्कार करता है और प्रत्यक्ष जनतन्त्र का समर्थन करता है जिसमें न प्रतिनिधि हो न दल, लॉक संसदात्मक संस्थाओं का पक्का समर्थक था।

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि संविदा सिद्धान्त की कुछ विशेषतायें रूसो, हॉब्स से और कुछ लॉक से ग्रहण करता है और उनका सम्मिश्रण करके एक नवीन सम्पूर्ण सिद्धान्त तैयार करता है। उसकी सम्प्रभुता की परिभाषा में हॉब्स जैसी पूर्णता तथा सुनिश्चितता है किन्तु उसे वह जनता में रखता है जिससे निस्सन्देह लॉक प्रसन्न हुआ होगा।

अभ्याय प्रश्न-

1. रूसो का जन्म किस देश में हुआ था।

   a. स्विट्जरलैंड b. फ्रांस c. इटली d. जर्मनी

2. ''विज्ञान तथा कला की प्रगति ने नैतिकता को भ्रष्ट करने में सहयोग दिया है'-यह किसका कथन है-

   a. बोदाँ b. हाब्स c. लॉक d. रूसो

3. निम्न में से कौन सा/से ग्रन्थ रूसो द्वारा लिखित है।

   a. सोशल कान्टैक्ट ;b. इमाइल

   c. लॉ नॉवेल हेलॉयज d. उपरोक्त सभी

4. निम्न में कौन सा/से ग्रन्थ रूसो के हैं-

   a. कन्फैशन्स b. रिवरीज c. डाइलौग्स d. उपरोक्त सभी

5. 'सामान्य इच्छा' को सामाजिक संविदा का मूलतत्व कौन मानता है।

   a. लॉक b. हॉब्स c. रूसो d. बोदाँ

10.13 सारांश

रूसो के मूल्याँकन के विषय में आलोचकों में घोर मतभेद है। जहाँ वेपर, कोल, लैंसन आदि ने रूसो की खुलकर प्रशंसा की है वहाँ वाल्टेयर, बर्क, मार्ले आदि ने रूसो की कटु आलोचना की। एक ओर रूसो को महान दार्शनिक पुकारा गया है और दूसरी ओर उसे मिथ्यावादी तथा सभ्यताहीन कहा गया है। जी0डी0एच0 कोल ने रूसो को राजदर्शन का पिता कहा है और उसके 'सोशियल कॉन्टे*क्ट' को राजदर्शन के ऊपर महानतम ग्रन्थ बताया तो कॉन्सटेन्ट ने रूसो को प्रत्येक प्रकार के अधिनायकवाद का सबसे भयानक मित्र कहा है। इसी तरह अन्य कतिपय विद्वानों ने रूसो को व्यक्ति के लिए अधिकतम स्वतन्त्रता चाहने वाला व्यक्तिवादी माना है तो कुछ ने उसे सर्वाधिकारवाद का पोषक बतलाया है।

इन परस्पर विचारों के लिए रूसो स्वयं उत्तरदायी है। उसने विरोधाभास संयुक्त वाक्यों का प्रयोग इतनी अधिकता से किया है कि वे पाठक के मस्तिष्क में भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। साथ ही उसने अपने द्वारा प्रयुक्त शब्दों को कोई सुनिश्चित परिभाषा भी नहीं दी है उल्टे किन्हीं-किन्हीं शब्दों को उसने अनेक स्थानों पर विभिन्न अर्थों के लए प्रस्तुत किया है।

किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विरोधाभासी विचारों को प्रकट करते हुए भी रूसो ने राजदर्शन के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। वह सामान्य इच्छा के सिद्धान्त द्वारा प्रभुसत्ता और स्वाधीनता में समन्वय स्थापित करता है और इस प्रकार प्रजातन्त्र के लिए बहुत बड़ा नैतिक आधार प्रदान करता है। उसका यही सिद्धान्त इस मूल सत्य का उद्घाटन करता है कि 'शक्ति नहीं, इच्छा राज्य का आधार है।' रूसो ने लोकप्रिय सम्प्रभुता की नींव डाली है। रूसो ने राज्य और शासन के मध्य तथा सम्प्रभु कानून एवं सरकारी कानून के बीच स्पष्ट भेद किया है। उसका सम्प्रभु कानून ही आधुनिक मौलिक अथवा साँविधानिक कानून का स्रोत है। उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप ही आधुनिक युग में इस बात पर बल दिया जाता है कि शासन के विधेयात्मक कानून देश के मौलिक कानून के अनुकूल होने चाहिए। फ्रेंच क्रान्ति के समय रूसो के प्रभाव की तुलना उस प्रभाव से की जा सकती है जो धर्म-सुधार युग में बाइबिल का जनता पर पड़ा था अथवा 20वीं शताब्दी में रूसी जनता पर मार्क्स की पुस्तक 'दास कैपिटल' ने डाला था। डॉयल ने ठीक ही लिखा है-रूसो ने घोर दुविधा एवं असन्तोष के समय में यूरोप के सामने एक प्राचीन और जर्जर ढांचे को तोड़ डालने का औचित्य प्रदर्शित किया तथा एक ऐसे आदर्श को उसके सामने रखा जिसे वह विनाश के पश्चात् प्राप्त कर सकता था।

सेबाइन के अनुसार, ''रूसो स्वयं राष्ट्रवादी नहीं था किन्तु उसने नागरिकता के प्राचीन आदर्श को एक ऐसा रूप प्रदान किया जिससे राष्ट्रीय भावनाओं के लिए उसे अपनाना सम्भव हो सका।'' रूसो के विचारों का जर्मन विज्ञानवाद पर भी गहरा असर हुआ। वह मानव की नैतिकता का समर्थक था। स्वतन्त्रता को वह जीवन का परमतत्त्व मानता था और इस कारण नीतिशास्त्र के क्षेत्र में भी उसका क्रान्तिकारी प्रभाव रहा। काँट कहता था कि सरल मानव की नैतिक वृत्तियों का महत्त्व उसे रूसो के ग्रन्थ से ही विदित हुआ। तार्किक वाग्जाल के बदले हृदय की सरलता पर जो ध्यान रूसो ने दिया वहीं मानववादी नीति-शास्त्र का आधार हो सकता है। स्वतन्त्रता की विराट उद्घोषणा रूसो ने की और नैतिकता का इसे आधार बतलाया। इस प्रस्ताव का गहरा असर जर्मनी के दार्शनिकों पर पड़ा। इसी कारण हीगल ने कहा था कि रूसो के ग्रन्थों में ही स्वतन्त्रता की बुद्धिपूर्वक अभिव्यक्ति हुई है। स्वतन्त्रता के साथ ही समानता पर रूसो ने जो बल दिया है, इस कारण कहा जा सकता है कि न केवल लोकतन्त्र का ही नहीं अपितु समाजवाद का बीज भी रूसो के ग्रन्थों में निहित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रूसो की विचारधारा से तीन दृष्टि बिन्दुओं व्यक्तिवाद, समूहवाद और नैतिक स्वातन्त्रयवाद को ग्रहरा प्रश्रय प्राप्त हुआ।

10.14 शब्दावली

1. सामान्य इच्छा- इस शब्द का आरम्भिक प्रयोग फ्राँसीसी विचारक डेनिस दीद्रो (1713-1784) ने अपने विश्वकोश में किया था फिर इसे जीन-जेकस रूसो (1712-1778) ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'सोशल कान्टै^{a}क्ट' में विकसित किया। रूसो मनुष्य की तात्कालिक और तात्विक इच्छा में अन्तर करते हुये कहते हैं कि तात्कालिक इच्छा स्वार्थ आधारित होती है जबकि तात्विक इच्छा सबके हित एवं परमहित से जुड़ी होती है। सामान्य इच्छा पूरे समाज की तात्विक इच्छा को व्यक्त करती है।

2. लोकप्रिय प्रभुसत्ता- यह वह सिद्धान्त है जो साधारणतः नैतिक आधार पर जनसाधारण को प्रभुसत्ता का उपयुक्त पात्र मानता है। इस विचार के आरिम्भक संकेत प्राचीन रोमन विचारक मार्कस तुलियस सिसरो के दर्शन में दिखता है। किन्तु सबसे पहले चौदहवीं शताब्दी में इतावली दार्शनिक मार्सीलियो आफ पादुआ ने लोकप्रिय प्रभुसत्ता को पोप की सत्ता को चुनौती देने में प्रयोग किया। 18वीं शताब्दी में यह सिद्धान्त जे0जे0 रूसो के राजनीतिक दर्शन का सार तत्व बना। टॉमस जैफ़र्सन ने भी लोकप्रिय प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। लोकप्रिय प्रभुसत्ता की अनिवार्य

शर्तें हैं: सार्वजनिक मताधिकार, विधानमण्डल पर सर्वसाधारण के प्रतिनिधियों का नियंत्रण और राष्ट्र के वित्त पर जन-प्रतिनिधियों के सदन का नियंत्रण।

3. भोला-भाला असभ्य जीव -ऐसा मनुष्य जिसकी कल्पना रूसो प्राकृतिक अवस्था में स्वतंत्र, सन्तुष्ट, आत्मतुष्ट, स्वस्थ एवं निर्भय जीव के रूप करता है जो प्रकृति की गोद में स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन यापन करता है।

10.15अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.a 2.d 3.d 4.d 5.c

10.16सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजनीति दर्शन का इतिहास- जॉर्ज एच0 सेबाइन

2. मास्टर्स ऑफ पॉलिटिकल थॉट- डब्ल्यू0टी0 जोन्स

3. राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा- ओ0पी0 गाबा

4. राजदर्शन का स्वाध्ययन- सी0एल0 वेपर

10.17सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राजनीति कोश- डा0 सुभाष कश्यप एवं विश्वप्रकाश गुप्त

2. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक- आर0एम0 भगत

3. राजनीति विज्ञान विश्वकोश- ओ0पी0 गाबा

10.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1.''रूसो की सामान्य इच्छा हॉब्स का शीर्षविहीन लेवियाथान है।'' स्पष्ट करते हुए विश्लेषणात्मक व्याख्या कीजिए।

2.रूसो के विचार में पाये जाने वाले अन्तर्विरोधों को उत्पन्न करने वाले कारणों पर प्रकाश डालते हुए विवेचनात्मक विश्लेषण करें।

3.आधुनिक राजनीतिक विचार को रूसो की देन का मूल्यांकन कीजिये।

4.रूसो का सामाजिक समझौता लॉक का ही सिद्धान्त है, जिसे हॉब्स की पद्धति द्वारा विकसित किया गया है। व्याख्या कीजिए।

इकाई – 11 : हीगल

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 हीगल के आत्म तत्व का सिद्धान्त
11.4 हीगलः द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त
11.5 हीगल का राज्य सिद्धान्त
11.6 राष्ट्रीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और युद्ध
11.7 दण्ड तथा सत्पत्ति
11.8 संविधान पर हीगल के विचार
11.9 हीगल और ग्रीन के विचारों का एक तुलनात्मक अध्ययन
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.14 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.15 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हीगल के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेंगे। हीगल को दार्शनिकों का राजा ही नहीं अपितु राजाओं का दार्शनिक माना जाता है। हीगल के बाद आने वाले कई विचारकों पर हीगल का प्रभाव देखा जा सकता है जिसमें मार्क्स, ग्रीन और बोसांके हैं। राजनीतिक चिंतन के इतिहास में हीगल उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक थे, जिन्होंने इतिहास को चेतना की महान यात्रा मानते हुए ऐसे समाज के उदय की उम्मीद की जिसमें व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर विश्वजनीन परार्थवाद की भावना से प्रेरित होंगें। इसमें हम सर्वप्रथम हीगल के आत्मतत्व संबंधी विचार का अध्ययन करेंगे। इसके पश्चात हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से हीगल ने द्वन्द्ववादी पद्धति से समाज के उद्विकास की व्याख्या की है और स्पष्ट किया है कि समाज के विकास में मुख्य सत्ता चेतना की है। साथ ही हम हीगल के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, युद्ध ,दण्ड तथा सत्पत्ति तथा संविधान के सम्बन्ध में दिए गए विचारों का भी अध्ययन करेंगे।

11 .2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम

1. हीगल के द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त का अध्ययन कर सकेंगे।
2. द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त के आधार पर समाज के विकास की गति को समझ सकेंगे।
3. अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, युद्ध ,दण्ड तथा सत्पत्ति तथा संविधान पर हीगल के विचारों को समझ सकेंगे।

हीगल का परिचय

हीगल एक द्वन्दवादी विचारक थे। जर्मन आदर्शवादी परंपरा में कांट के बाद अगला नाम हीगल का ही आता है। इनका जन्म जर्मन नगर स्टुटगार्ट में 1770 में हुआ था। हीगल का चिंतन उसकी लिखी पुस्तकों से समझा जा सकता है। उसकी प्रमुख रचनाओं में से एक 'फिनोमिनोलोजी ऑफ़ स्पिरिट' है जो हीगल के दार्शनिक विचारों से सम्बंधित है। इसके अलावा हीगल ने साइंस ऑफ़ लॉजिक, फिलोसोफी ऑफ़ लॉ (फिलोसोफी ऑफ़ राईट), द फिलोसोफी ऑफ़ हिस्ट्री, आदि पुस्तकें लिखी। फिलोसोफी ऑफ़ राईट राजनीतिक दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। हीगल के विचारों पर जर्मन दार्शनिकों कांट, फिक्टे, यूनानी दार्शनिकों – प्लेटो, अरस्तू तथा फ्रांसीसी दार्शनिक मांटेसक्यू और रूसो का बहुत प्रभाव पड़ा।

11.3 हीगल के आत्म तत्व का सिद्धान्त

एक आदर्शवादी दार्शनिक के रुप में हीगल की यह आधारभूत मान्यता है कि सृष्टि में सम्पूर्णता व्याप्त है। इस सृष्टि का चरम सत्य दैविक मन है। इसी दैविक (सत्य) शक्ति को हीगल विचार तत्व विवेक अथवा आत्म तत्व जैसे अनेक नामों से भी सम्बोधित करता है। सृष्टि, इसका जड़ जगत और बाह्य जगत इत्यादि इसी आत्म तत्व की ही निर्मित

है। हीगल के अनुसार विवेक विश्वात्मा ही संसार का सम्प्रभु है। आत्म तत्व की विशेषता यह है कि वह सर्वज्ञ है। सभी चीजों का ज्ञान प्राप्त करना इसका विशेष गुण है जब तक विवेक अपने स्वंय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेती, तब तक यह सृष्टि में विकसित होती रहती है। इसकी यात्रा का अन्त केवल आत्म बोध प्राप्त करके ही होता है। यदि हम इतिहास को देखें तो ज्ञात होगा कि यह आत्म तत्व अपनी लीला करता रहा है। हीगल के कथनानुसार विवेकशील ही यथार्थ है और यथार्थ ही विवेकशील है। हीगल की मान्यता है जो आधारभूत और महत्वपूर्ण है केवल वही यथार्थ है। फिर भी हीगल वास्तविक की उपेक्षा नहीं करता क्योंकि उसका मानना है कि जो कुछ भी वास्तविक घटता है वह घटना आत्म तत्व के द्वारा ही संभव है।

हीगल के भावात्मक सिद्धान्त का सार इतना ही है कि इतिहास में जो कुछ होता है वह वैसे ही हुआ है जैसे उसे होना चाहिए जो हुआ है वह विवेक की रचना है अतः उसका सम्मान किया जाना चाहिए। इतिहास में जो कुछ भी विकसित हुआ है वह प्रयोगात्मक है, उनमें अनावश्यक पीछे रह जाती है, और आत्म तत्व जिन तत्वों को आगे बढ़ाता है उनमें विवेक है। आत्म तत्व ने जिस स्वरुप में अपने आप को प्रकट किया वह विकास के मार्ग का एक चरण था जो निरन्तर आत्म प्राप्ति की दिशा की ओर बढ़ रहा था। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण इतिहास आत्म-तत्व की विस्तृत कहानी है। इतिहास में आत्म-तत्व जन्म लेते हुए दिखता है, उसके उतार-चढ़ाव दिखते है, उसका पतन भी दिखता है और उसकी उन्नत अवस्था भी।

11.4 हीगलः द्वन्दवाद का सिद्धान्त

उत्तरकालीन यूनान के विचारकों का मानना था कि यदि किसी स्थिति को उसकी अति तक पहुँचाया जाय तो प्रतिक्रिया स्वरुप उसकी विपरित स्थिति उत्पन्न होती है। उदाहरर्ण के तौर पर,

राजतंत्र की अति से कुलीनतंत्र उत्पन्न होता है और कुलीनतंत्र की अतियाँ लोकतन्त्र को जन्म देती है। लोकतंत्र को अति तक धकेलने पर तानाशाही उत्पन्न होती है और तानाशाही से राजतंत्र। हीगल द्वन्द्धवाद के इस यूनानी सिद्धान्त से प्रभावित हुआ था जिसे उसने अपनी दार्शनिक पद्धति अंग बनाया।

हीगल की मान्यता है किसी भी वस्तु के उसकी पूर्ण वस्था पर पँहुचने पर यह आभास होता है कि उसमें अपने तत्व के अलावा उसके विपरित अथवा विरोधी तत्वों का समावेश होता है। हीगल के अनुसार परिवर्तन की प्रक्रिया में वाद प्रतिवाद और संवाद की तीन कड़िया निहित रहती है। इस आधार पर हीगल की मान्यता है कि प्रत्येक अस्तित्व को समझने के लिए केवल इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है कि यह क्या है अपितु यह भी जानना आवश्यक है कि "यह क्या नहीं है" हीगल कहता है कि द्वन्द्धवाद की प्रमुख अवधारणा यह है कि विरोधी तत्वों के संघर्ष और सांमजस्य के द्वारा प्रगति होती है। इतिहास को इस सिद्धान्त के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। सृष्टि विचार जगत अथवा मानवीय इतिहास में प्रगति अथवा विकास कैसे और क्यों होता है, द्वन्द्धवाद इन प्रश्नों की खोज करता है हीगल के द्वन्द्धवाद की यह प्रमुख धारणा है कि प्रकृति में, विचार जगत में अथवा मानवीय इतिहास मे प्रगति संघर्ष और समन्वय के नियमों द्वारा होती है।

हीगल ने द्वन्द्धवाद की प्रक्रिया की जिन तीन कड़ियों की चर्चा की है, वे तीन कड़ियाँ वाद प्रतिवाद, और संवाद की है वाद किसी प्रस्थापना की पुष्ठि करता है। उस प्रस्थापना का खण्डन प्रतिवाद करता है। किन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती वाद और प्रतिवाद में जो सत्यांश है वह मिल कर सवांद में प्रकट होता है। इस प्रकार वाद, प्रतिवाद और सवांद पर आकर समाप्त नहीं होती। जो कल तक सवांद था वह कालान्तर में पुनः वाद में परिवर्तित हो जाता है और

एक बार पुनः वाद प्रतिवाद सवांद की त्रयी क्रियाशील होती है। यह प्रक्रिया तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि अंतिम सत्य को प्राप्त नहीं कर लिया जाता स्पष्ट है कि हीगल का द्वन्द्धवाद से अर्थ द्वन्द्ध और सामंजस्य की उस प्रक्रिया से है जिससे विचार जगत और सृष्टि में प्रगति होती है विचार तत्व के विकास का उदाहरण ले सकते है। जिसे हीगल वाद कहते है विचार तत्व के विकास का उदाहरण ले सकते है। जिसे हीगल वाद कहते है, जब तक यह अपने उद्देश्य तक नहीं पहुँच जाता तब तक वह वाद पूर्णता से दूर रहता है इन अपूर्णताओं को दूर करने के लिए एक प्रतिक्रिया शुरु होगी जिसे हीगल प्रतिवाद कहता है। उसके बाद वाद और प्रतिवाद का द्वन्द्ध होगा और यह संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक कि सवांद का आविर्भाव नहीं हो जाता। सवांद तक पहुंचकर विचार तत्व की समाप्ति नहीं होती, वहीं सवांद अब वाद का रुप धारण करता है और एक बार फिर से वाद का प्रतिवाद और वाद प्रतिवाद से सवांद की प्रक्रिया चालू हो जाती है जब तक कि विचार तत्व अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेता है।

हीगल वाद प्रतिवाद सवांद सिद्धान्त द्वारा इस तथ्य को रेखाकित करना चाहता हूँ। कि सृष्टि जगत में जो कुछ भी सत्यांश है, उसका कभी लोप नहीं होता। सत्य का वह अंश, चाहे विचार जगत में हो अथवा सामाजिक जगत में, सदा संघर्ष और समन्वय की प्रक्रिया में और अधिक शुद्ध और उन्नत होकर आगे बढ़ता है। अतः हम कह सकते है कि वाद-प्रतिवाद के अन्तर्विरोधी को बाधाएं नहीं मानना चाहिए। ये बाधाएँ नहीं अपितु सत्य को उजागर करने वाली आवश्यक परिस्थितियां है। यदि अन्तर्विरोध नहीं है तो प्रगति भी संभव नहीं है। प्रगति इन द्वन्द्धो का ही परिणाम है।

हीगल के वाद प्रतिवाद सवांद सिद्धान्त की प्रक्रिया किस प्रकार कार्य करती है उसको स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरण का सहारा ले सकते है। हीगल का जो तर्कशील सिद्धान्त है यदि हम उसके अनुसार 'अस्तित्व' ;(Thesis) वाद है तो 'अनस्तित्व' ;(Antithesis) उसका प्रतिवाद है और वाद प्रतिवाद से बना है 'सवांद (Synthesis) है। सरकार के प्रकारों का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार होता है, हीगल के विचारानुसार 'निरंकुशवाद' वाद है, जिसका प्रतिवाद लोकतन्त्र है और निरंकुशवाद तथा लोकतन्त्र का समन्वय संवैधानिक राजतन्त्र रुपी सवांद में होता है। इस प्रकार जब हम इस सिद्धान्त का अध्ययन गहनता के साथ करते है तो ज्ञात होता है कि राज्य जैसी संस्था की व्याख्या हीगल ने अपने द्वन्द्धवाद के सिद्धान्त के आधार पर की है। हीगल मानता है कि कुटुम्ब वाद है, 'सिविल समाज' ; उसका प्रतिवाद है और वाद प्रतिवाद के द्वन्द्ध से राज्य रुपी सवांद का आविर्भाव होता है। हीगल ने द्वन्द्धात्मक प्रणाली से होने वाले परिवर्तनों के तीन आधारभूत नियमों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

परिवर्तन के तीन नियम

1. संख्यात्मक चीजों में गुणात्मक परिवर्तन और गुणात्मक चीजों में संख्यात्मक परिवर्तन का नियम।

2. विरोधों की एकता का नियम।

3. निषेध के निषेध का नियम।

उपरोक्त तीनों नियमों का संक्षेप में सार यह है।

1. संख्या का गुण में और गुण का संख्या में परिवर्तन का नियम:- हीगल कहता है कि वस्तुओं में संख्यात्मक /मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होते रहते है। किसी वस्तु में अदृश्य संख्यात्मक परिवर्तनों के द्वारा उस वस्तु का गुणात्मक रुप इतना बदल जाता है कि उसके आगे वह वस्तु एक नया गुणात्मक रुप धारण कर लेती है। पानी का

भाप बनना अथवा बर्फ बनना संख्या से गुणात्मक परिवर्तन का उदाहरण है। इसी प्रकार, इसके विपरित गुण से संख्या में परिवर्तन होता है बादल से पानी का बनना इसका उदाहरण हो सकता है। मात्रा से गुण में और गुण से मात्रा में परिवर्तनों का होना, परिर्तन का पहला नियम है। हीगल इस सिद्धान्त से यह बताता है कि सामाजिक संस्थाएँ परिवर्तनशील है जिनमें संख्यात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होते रहते है।

2. विरोधी तत्वों की एकता का नियम:- हीगल प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक एकता में विरोध के स्वर होते है। हम जिस वस्तु को एकता मानते है, जैसे कि संस्था की एकता, उसकी कुछ समय वह एकता बनी रहती है किन्तु कालान्तर में यह स्पष्ट होने लगता है कि उस एकता में, उस संस्था की एकता में परस्पर विरोधी तत्व है। इन परस्पर विरोधी तत्वों का संघर्ष होगा और उनकी एकता नष्ट होगी तथा संस्था नया रुप धारण करेगी। जो नियम संस्था के लिए सही है वह सत् के लिए भी सही है। हीगल मानता है कि सत् की अन्तर्विरोधी प्रकृति होती है। मूल मान्यता है कि प्रत्येक एकता में विरोधी तत्वों का समावेश रहता है।

3. निषेध के निषेध का नियम:- हीगल कहता है कि अपने अन्तः विरोधों के कारण वाद का विस्फोट होता है और उसका स्थान प्रतिवाद का विस्फोटक होता है और उसका स्थान प्रतिवाद द्वारा ले लिया जाता है, अर्थात वाद का निषेध प्रतिवाद है। इसी तरह प्रतिवाद भी उन्ही कारणों के फलस्वरुप बिखर जाता है यही प्रतिवाद का निषेध है इसका साधारण अर्थ यह है कि प्रतिवाद पहिला निषेध है और सवांद प्रतिवाद का भी निषेध है अतः उसे निषेध कहा गया है।

इस विचार को समझाने के लिए हीगल ही एक उदाहरण देते है। राज्य जैसी संस्था की व्याख्या करते हुए हीगल मानते है कि विकास के क्रम में पहले परिवार का आविर्भाव हुआ फिर सिविल समाज का और अन्त में राज्य का। हीगल की भाषावली में परिवार वाद है, सिविल समाज उसका प्रतिवाद और राज्य इनका सवांद। इस तरह सिविल समाज परिवार का निषेध है पहला निषेध और सिविल समाज का निषेध राज्य (दूसरा निषेध) है अतः राज्य पहले निषेध का भी निषेध है।

11.5 हीगल का राज्य सिद्धान्त

हीगल ने द्वन्द्धात्मक प्रणाली के आधार पर अपने राज्य सिद्धान्त की व्याख्या की है। हीगल कहता है कि मानव की विकास यात्रा पहले परिवार को जन्म देती है, परिवार के प्रतिवाद के रुप में सिविल समाज का आविर्भाव होता है और इनके सवांद के रुप में राज्य का उदय होता है। जैसे भौतिक जगत के विकास का सर्वोच्च बिन्दु मनुष्य है, उसी तरह सामाजिक जीवन का सर्वोच्च बिन्दु राज्य है जिसमें अत्म तत्व अपने पूर्ण उद्देश्य को सिद्ध करता है।

परिवार स्त्री और बच्चे:-

परिवार के बारे में हेगल का विचार बड़ा ही आदर्शवादी था। इसे वे संतुष्टि एवं एकता पर आधारित क्षेत्र मानते थे। हेगल ने परिवार के सभी महत्वपूर्ण पक्षो विवाह परिवार, संपत्ति, पूंजी बच्चों की शिक्षा परिवार के नियमन इत्यादि पर विचार किया। उनके लिए विवाह एक नैतिक सम्बन्ध था। यह एक विशेष प्रकार की एकता थी "जिसका वस्तुगत स्रोत व्यक्तियों की मुक्त सहमति है, विशेषकर एक व्यक्ति में विकसित होने की सहमति, प्राकृतिक एवं व्यक्तिगत व्यक्तित्व त्यागकर एक दूसरे के साथ एकता" विवाह प्रेम पर आधारित होता है। परिवार एवं समुदाय द्वारा मान्यता उतनी ही महत्वपूर्ण है।

हेगल में उनके काल के पुर्वाग्रहों का प्रतिबिम्ब मिलता है। वे परिवार में यौन विभाजन और स्त्री की पारम्परिक छवि के समर्थक थे। बाहरी मामलों में पुरुष शक्तिशाली था और स्त्री निष्क्रिय और मनोवादी नागरिक समाज पूरी तरह पुरुष के लिए था। स्त्री का क्षेत्र घर है।

अरस्तू के समान हेगेल भी विवाह को प्रजनन के लिए आवश्यक और इतिहास से बाहर प्राकृतिक मानते थे। बाद में उन्होने मन की एकता माना। विवाह तर्क स्वरुप था और एकता के साथ यह गुण राज्य के लिए जरुरी था। परिवार में पुरुष में अवधारणा सम्बन्धी चितंन की क्षमता थी। इससे वे इतिहास एवं राजनीति की रचना कर सकते थे। स्त्रियों को शिक्षा दी जा सकती है लेकिन उनमें विज्ञान, दर्शन या कला की क्षमता नहीं होती ये विषय आदर्श के लिए जरुरी है। इसलिए वे अनुभव पर ही निर्भर रहती है और इससे परे जाने में असमर्थ होती है। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र में उन पर रोक लगती है।

लॉक के समान हेगेल का विचार था कि बच्चों को खर्चे का अधिकार था और अभिभावक उनके अनुशासन एवं शिक्षा के लिए जिम्मेदार थे। बच्चों को दडं नैतिक रुप से उचित था ताकि उन्हें प्राकृतिक रुप से विकसित होती आजादी का उपभोग करने से और उनकी चेतना में सार्वगिकता भरने से रोका जाए। बच्चे स्वाभाविक रुप से मुक्त होते है और अभिभावक उन्हें सम्पत्ति नहीं समझें। शुरू के वर्षो में प्रेम, आस्था और आदेश पालन पर जोर होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना है ताकि वे व्यक्तित्व की आजादी का उपभोग कर सकें। वे इतनी शक्ति प्राप्त कर लें कि परिवार की स्वाभाविक एकता छोड़ बाहर आने के काबिल बन सकें और अपना परिवार और अपनी सम्पत्ति रख सकें। व्यक्ति को पारिवारिक संपत्ति को अपनी इच्छानुसार प्रयुक्त करने की आजादी होनी चाहिए।

विकास की इस प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होगा कि सामाजिक विकास का पहला चरण परिवार है और इसका दूसरा चरण 'सिविल समाज' है। द्वन्द्ध की भाषा में परिवार वाद है और सिविल समाज उसका प्रतिवाद। परिवार रूपी वाद की कुछ न्यूनतम थी उसमें कुछ अर्न्तविरोधी थे जिनके प्रतिवाद के रूप में सिविल सामाजिक का आविर्भाव हुआ।:

सिविल समाज

परिवार और राज्य के बीच एक महत्वपूर्ण रचना सिविल समाज है जिसका उदय आधुनिक है। जब व्यक्ति परिवार मे रहते हुए उसके मन परिवार से अलग रहने का विचार उसके मन में आते हुए अपने दायित्वों का बोध होता है कि उसके कुछ धार्मिक या आध्यात्मिक दायित्व भी है तो व्यक्ति को अहसास होने लगता है अब उसे परिवार में बोझ नहीं बनना चाहिए। अब उसे स्वंय आजिविका अर्जित करनी चाहिए। वह एक मानसिक तनाव का अनुभव करता है। इसी व्याकुलता के बीच वह परिवार को छोड़ कर 'सिविल समाज' में प्रवेश करता है। 'सिविल समाज' को हीगल 'बुर्जुआ समाज' के नाम से भी सम्बोधित करता है। सिविल समाज के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए हीगल स्पष्ट करता है कि यह वृहत्तर समाज स्वतंत्र विचार वाले स्त्री पुरुषों की संस्था है जो कि स्वहित भावना से तथा अनुबंध के सुत्रों से बनती है। कुटुम्ब में परिवार के मुखिया का नियन्त्रण है तो सिविल समाज में कानून का नियन्त्रण है। सिविल समाज में मनुष्य की उन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जो कुटुम्ब द्वारा पूरी नहीं की जाती। हीगल कहता है कि इस नये समाज में व्यापार, उद्योग कानून का शासन, गिल्डो तथा निगमों की उत्पत्ति होती है जो आर्थिक जीवन को संचालित करते है।

हीगल का द्वन्द्ध वाद अभी तक यह प्रतिपादित कर चुका है कि प्रेम पर आधारित कुटुम्ब एक एकता है जो वाद है कुटुम्ब का प्रतिवाद सिविल समाज है जो प्रतिस्पर्धा पर आधारित व्यक्तियों का समूह है। परिवार रुपी वाद का सिविल समाज रुपी प्रतिषाद है। इस वाद प्रतिवाद का सवांद राज्य है। राज्य रुपी सवांद में परिवार (वाद) और सिविल समाज प्रतिवाद के श्रेष्ठ गुणों का संरक्षण होता है।

राज्य

हेलेग का राज्य सर्वात्रिक वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करते हुए परिवार एवं नागरिक समाज के तत्वों का डाइलेक्टिकल समावेश करता है। परिवार के समान राज्य भी सबके हितों में काम करता है। यह समाज के सर्वात्रिक तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है और इसलिए नागरिकता के विचार को जन्म देता है। राज्य का अस्तित्व विशेष आत्म चेतना में निहित है जो सर्वात्रिक के स्तर तक उठता है। राज्य पूरी तरह तार्किक है और सार रुपी इच्छा है जो इतिहास के जरिए प्रकट होता है और इसलिए अन्त है। मस्तिष्क इतिहास के जरिए स्वंय को हासिल करता है। राज्य एक ऐसी रचना है "जिसका व्यक्ति पर सर्वोच्च अधिकार है और जिसकी उच्चतम जिम्मेदारी राज्य का सदस्य होना है।

राज्य का स्वरूप:-

(1) राज्य दैविक है- हीगल के कथनानुसार यह पृथ्वी पर ईश्वर की यात्रा है। क्योंकि आत्म तत्व ईश्वर का रुप है। राज्य उस आत्म तत्व का एक भाग मात्र है। अतः हम कह सकते है कि राज्य भी ईश्वर के द्वारा जनित है। राज्य एक कृत्रिम संस्था है हीगल इसका खन्डन करता है और कहता है कि राज्य एक दैवीय संस्था है।

(2)राज्य का अपना व्यक्तित्व:- हीगल कहता है कि राज्य का अपना स्वंय का व्यक्तित्व होता है। राज्य की अपनी स्वतंत्र इच्छा होती है तथा उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। हम यह नहीं मान सकते कि राज्य केवल व्यक्तियों की इच्छाओं का योग मात्र है। मनुष्य के जीवन का अन्त उसकी मृत्यु है किन्तु राज्य का जीवन पीढ़ी दर पीढी बना रहता है। राज्य का अस्तित्व, वर्तमान भूतकाल और भविष्य भी रहता है।

(3) राज्य एक साध्य है:- हीगल राज्य को एक साध्य स्वीकार करता है राज्य से उच्च और कोई

उद्देश्य नहीं होता। राज्य आत्म तत्व की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। आत्म तत्व अपनी आत्मानुभूति की जिस यात्रा को आरम्भ करता है उसकी सर्वोच्च उपलब्धि राज्य है, राज्य को साध्य बताकर हीगल व्यक्ति को राज्य का एक साधन मानता है।

(4) राज्य की सावयवी एकता:- हीगल का विचार है कि "राज्य को एक सावयव के रुप में समझा जाना चाहिए"। राज्य एक ऐसी सम्पुर्ण ईकाई है जो कि अपने विभिन्न अंगो के योग मात्र से कहीं अधिक है। जिस प्रकार मनुष्य शारीर के अंगों का कोई स्वतंत्र महत्व नहीं होता उसी प्रकार राज्य से भिन्न व्यक्ति का भी कोई महत्व नहीं होता। व्यक्ति के अधिकारों तथा उसके व्यक्तित्व का महत्व केवल इसलिए है कि वे राज्य रुपी विशाल शरीर के अंग मात्र है।

(5) राज्य में व्यक्ति की स्वतनत्रता का विस्तार:- राज्य में व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित नहीं होती अपितु उसकी स्वतंत्रता का दायरा विकसित होता है। हीगल की मान्यता 'आत्म तत्व' की विशेषता उसकी स्वतन्त्रता है। आत्म तत्व स्व केन्द्रित है और स्व केन्द्रीयता में ही स्वतंन्त्रता सार निहित रहता है। जैसे2 आत्मतत्व का विकास होता है उसी के साथ2 स्वतन्त्रता का भी विकास होता है। हीगल धारणा है कि राज्य के कानूनों में और व्यक्ति की स्वतंत्रता में कोई अन्तर्विरोध नहीं होता। हीगल के दर्शन में स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति के अधिकारों से नहीं है जैसा कि

व्यक्तिवादियों के दर्शन की मान्यता है। हीगल के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अर्थ राज्य की आज्ञाओं का, राज्य के कानूनों का स्वेच्छा से पालन करना है।

11.6 राष्ट्रीय राज्य, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और युद्ध

हीगल के राज्य सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट है कि वह राष्ट्रीय राज्य का समर्थन करते हुए उसे मानव संगठन का सर्वोच्च रुप मानता है। वह किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व व्यापी सगंठन के राष्ट्रीय राज्य के उपर होने की कल्पना नहीं करता। हीगल कहता है कि एक पूर्ण स्वतंत्र राज्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न आत्म रक्षा का है अतः अपना सार्वभौमिकता व सम्प्रभुत्ता बनाये रखने के लिए राज्य कोई भी कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। इसलिए हीगल के शब्दों में राज्य स्वंय पूर्ण मस्तिष्क है जो अच्छाई और बुराई लज्जा और तुच्छता और धोखेबाजी आदि के भावात्मक नियमों को स्वीकार नहीं करता।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विषय में हीगल कहते है कि राज्यों को अन्य राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं होती बशर्ते कि उसकी सुरक्षा कायम रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ऐसे प्रभुसम्पन्न राज्यों के साथ होता है। जो या विश्वास करते है कि अपना हित ही उचित है तथा अपने हित के विरुद्ध कार्य करना पाप है अर्थात जब राज्यों की विशेष इच्छाएँ आपसी समझौता से पूर्ण नहीं हो पाती तो विवाद को केवल युद्ध द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

हीगल का मत है कि युद्ध को एक पूर्ण बुराई नहीं मानना चाहिए। मानव जाति का विश्व व्यापी प्रेम तो एक मूर्खतापूर्ण आविष्कार है। युद्ध अपने आप में एक गुणात्मक कार्य है। हीगल शान्तिपूर्ण उपायों और समझौतो को अस्वीकार करता है। वह स्थायी शान्ति का विरोध बन गया है। समाज चाहे युद्ध को सदैव हय समझती रहे, किन्तु हीगल के विचार से युद्ध के अनेक लाभदायक परिणाम होते है। युद्ध व्यक्ति के अहम का नाश करता है और समाज की पतन से रक्षा कर उसमें क्रियाशीलता का संचार करता है।

हीगल का मत है कि युद्ध को घोर अपराध नहीं मानना चाहिए। युद्ध स्वमेव एक नैतिक कार्य है। शान्ति भ्रष्टाचार का प्रसार करती है और अनन्त शक्ति भ्रष्टाचार फैलाएगी। युद्ध वह कार्य है जो सांसारिक स्वार्थो और अहम को व्यस्थित करती है।

11.7 दण्ड तथा सत्पत्ति

कॉण्ट की भाँति हीगल भी दण्ड के प्रश्न को नैतिक दृष्टि से देखता है कि किसी भी अधिकार के उल्लघंन होने पर राज्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपराधी को दण्डित करें। हीगल की दृष्टि में दण्ड का उद्देश्य सार्वजनिक सुरक्षा नहीं है। बल्कि दण्ड की भावना को बलवती करता है। दण्ड समाज और अपराधी दोनों का समान अधिकार है। और इसी के द्वारा दोनों को अपना उचित न्याय मिल जाता है। हीगल के अनुसार जब किसी अधिकार का अतिक्रमण हो तो उस अधिकार की स्थापना का एक मात्र उपाय है प्रथम पीड़ित व्यक्ति पर किए गए अत्याचार का सार्वजनिक निराकरण और द्वितीय उनके माध्यम से समाज और न्याय के नियमों पर अनाधिकार चेष्टा का निराकरण । हीगल सम्पत्ति को मनुष्य के लिए आवश्यक मानता है। हीगल की मान्यता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए सम्पत्ति आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही व्यक्ति की इच्छाशक्ति क्रियाशील रह सकती है। यदि व्यक्ति के पास

सम्पत्ति नहीं है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। हीगल के अनुसार सम्पत्ति का निर्माण राज्य अथवा समाज नहीं करता प्रत्युत वह मानव व्यक्तित्व की अनिवार्य अवस्था है।

11.8 संविधान पर हीगल के विचार

हीगल ने राज्य की सांविधानिक शक्तियों को तीन भागों में ही विभाजित किया है। तीन शाक्तियाँ है कार्यपालिका व्यवस्थापिका और न्यायपालिका जो कि माण्टेस्क्यु आदि विचारको ने बताई थी जब हीगल के अनुसार ये शक्तियाँ है विधायी, प्रशासनिक तथा राजतन्त्रात्मक हीगल न्यायपालिका को कार्यपालिका की शाखा मानते है। दूसरा सबसे बड़ा अन्तर यह है कि हीगल ने तीनों शक्तियों को एक दूसरे से स्वतंत्र और एक दूसरे को नियन्त्रित करने वाली न मानते हुए उनहें परस्पर पूरक और एक महान समष्टि के अभिन्न अंग के रुप में माना है।

हीगल तीनों शक्तियों में राजतन्त्रात्मक शक्ति को प्रमुख मानते है हीगल की धारणा है कि सांविधानिक राजतन्त्र में ही पूर्ण विवेकशीलता उपलब्ध हो सकती है क्योंकि इसमें राजतन्त्र, कुलीनतंत्र औ प्रजातंत्र तीनों के तत्व निहित है।

हीगल कहता है कि प्रभुसत्ता जनसाधारण को न दी जाकर राजा के हाथों में रहनी चाहिए। विधानमण्डल में चाहे जनता का प्रतिनिधित्व हो और उसके द्वारा निर्मित कानूनों को कार्यपालिका देश में लागू करे, किन्तु अन्तिम रूप देने का अधिकार राजा को होना चाहिए। हीगल संविधानिक शासन के सिद्धान्त को निरूपन करता है। हीगल मानता है कि राज्य की शक्ति निरपेक्ष अवश्य है लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं राज्य को अपनी नियामक शक्ति को विधि के अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

हीगल के विचारों की दुर्बलताएँ:-

हीगल का द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है - हीगल का द्वन्द्ववाद बहुत अस्पष्ट है। उसकी तार्किक प्रणाली दुषित है। वास्तविकता यह है कि द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त परस्पर विरोधी तत्वों के संघर्ष और समन्वय की प्रक्रिया से होने वाली प्रगति का सिद्धान्त हीगल के दर्शन में मात्र फार्मूला बनकर रह गया है। आलोचको का कहना है कि द्वन्द्ववाद के नाम पर किसी भी मनचाही विरोधी दिखने वाली परिस्थिति अथवा घटनाक्रम को वाद प्रतिवाद का नाम दिया जा सकता है, जैसे कि विरोधी स्थिति दण्ड है अथवा कि केन्द्र विमुख स्थिति का विरोधी तत्व केन्द्र मुखी है। वास्तविकता यह है ये तार्किक विरोधाभास नहीं है। इतिहास की व्याख्या के रुप हम इस सिद्धान्त की वैज्ञानिकता को स्वीकार नहीं कर सकते है। द्वन्द्व की आलोचना करते हुए डॉ0 वेपर ने ठीक ही कहा है कि "उन्नीस्वी और बीसवी शताब्दियों में द्वन्द्ववाद सिद्धान्त इसलिए लोकप्रिय हो गया क्योंकि इसके आधार पर विचारक इतिहास से राज्य सम्बन्धी ऐसे निष्कर्षो को निरुपित कर सके जिनकों कि वे स्वीकार कर लेना चाहते थे। संक्षेप में हीगल का द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त एक विवादस्पद धारणा है जिसके माध्यम से स्वेच्छित निष्कर्षो को सही अथवा गलत सिद्ध किया जा सकता है। इसे आप व्याख्या का वैज्ञानिक साधन नहीं मान सकते।

हीगल चरम राष्ट्रीयतावादी विचारक था। जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता का राज्य के बलिदान कर देता है। वह एक शक्तिशाली निरकुशंता वादी राज्य का पुजारी या समर्थक था। वार्कर के शब्दों में उसने राष्ट्रीय राज्य को एक रहस्यात्मक स्तर तक पहुँचा दिया है। 17वी शताब्दी में विचारक राजाओं के दैवीय अधिकार की बात करते है लेकिन हीगल ने राज्य के दैवीय अधिकार की स्थापना की है। हीगल का सार्वाधिकारवादी राज्य जनतन्त्रवादी राज्य से बिलकुल मेल नहीं खाता है। आलोचकों ने हीगल को 20वी शताब्दी की दो बड़ी सर्वाधिकारवादी विचारधारणाओं

फासीवाद और साम्यवाद का मूल स्रोत माना है। ऐबेंसटीन का आरोप है कि हीगल ने शक्ति और नैतिकता को अभिन्न बना दिया है।

हीगल ने स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का जो प्रस्तुतीकरण किया है वो ऐसा लगता है कि जैसे उस सिद्धान्त को तोड़ मरोड़ कर स्वतन्त्रता को आज्ञाकारिता का रुप दे दिया है। उसने व्यक्ति के व्यक्तित्व के सिद्धान्त को परिवर्तित कर मनुष्यों की दैवी शक्ति की प्रवाधिक नलिका बनाकर उन्हें राज्य में आत्मसात कर दिया है। जोड़ के शब्दों में, राज्य का निरपेक्ष सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता का शत्रु है क्योंकि जब भी व्यक्ति और राज्य में कोई संघर्ष होता है तो उसके अनुसार राज्य ही सही होना चाहिए हीगल किसी भी सूरत में राज्य के विरुद्ध विद्रोह का अधिकार प्रदान नहीं करता।

राज्य की सावयवी धारणा:- हीगल की राज्य और समाज की सावयवी धारणा दोषपूर्ण है। हीगल कहता है कि राज्य एक सावयव रुपी अवधारणा है। मनुष्य को राज्य रुपी शरीर का अंग मानना उसके दर्शन की बड़ी दुर्बलता है। शरीर का और उसके अंगो का कोई उद्देश्य नहीं होता, सिवाय इसके ईकाई कि शरीर को अक्षुण्ण बनाये रखा जाए, किन्तु समाज की प्रत्येक ईकाई मनुष्य का उद्देश्य होता है मनुष्य

में विवेक उद्देश्य परकता और मावामकता होती है जिन गुणों का शरीर (राज्य) में अभाव रहता है। हीगल के विचारों में मनुष्य के इन विशिष्ठ गुणों की, उसकी विवेक शीलता, उद्देश्यपरकता और भावात्मकता की अवमानना दिखायी पड़ती है। व्यक्ति को राज्य समाज का अंग मानकर हीगल का चिन्तन मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्मान नहीं कर सका। राज्य की एकता की धुन में हीगल व्यक्ति को विस्मृत कर देता है। हीगल के इस दृष्टिकोण का सबसे दुर्बल पक्ष यह है कि वह यह भूल जाता है कि व्यक्ति के लिए जिस तरह समाज आवश्यक है उसी प्रकार समाज भी अन्ततोग्त्वा व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित होता है। हीगल व्यक्ति की इस निर्माणकारी भूमिका को भूला देता है।

अभ्यास प्रश्न

1. हीगल के अनुसार संगठन का प्रारंभिक रूप क्या है?
2. हीगल के अनुसार राज्य क्या है ?
3. हीगल के द्वंद्वात्मक दर्शन में क्या शामिल है?
4. हीगल के राज्य सम्बन्धी सिध्दांत को समझने के लिए उसके दो ग्रन्थ कौन-कौन से हैं?

11.9 सारांश

उपरोक्त अध्ययन में हमने हीगल और ग्रीन के चिंतन के विविध पक्षों का अध्ययन किया है ।जिसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि विभिन्न त्रुटियों और दुर्बलताओं के बावजूद हीगल की युग परिवर्तनकारी विचारधारा का अग्रलिखित कारणों से विशेष महत्व है। हीगल ने राजनीति तथा नीतिशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों को हीगल ने सर्वाधिक स्पष्ट एवं सूक्ष्म रुप से समझा था। हीगल ने अपने दर्शन में इस बात पर विशेष जोर दिया कि राज्य व्यक्ति की उन्नति के लिए अनिवार्य है तथा व्यक्ति राज्य का एक अविभाज्य अंग है। यही नहीं हीगल पहला विचारक था जिसने इतिहासिक प्रणाली को समझा तथा अपने सिद्धान्त में प्रयोग किया। हीगल को वैज्ञानिकता का प्रतिपादक भी माना जाता है। हीगल ने अपने दर्शन में इस अत्यन्त वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि विवेक द्वारा प्रगति होती है। हीगल ने व्यक्ति की आत्म चेतना पर समाज की प्रेरणामूलक बुद्धि के कारण को समझने और स्वीकार करने का बहुमूल्य प्रयास किया है। हीगल व्यक्तिवाद के विरोध में है वह मानता है कि व्यक्तिवाद मनुष्य के सामाजिक चरित्र का परित्याग करता है। हीगल सन्तुलनवादी है। वह यह भी प्रतिपादित करता है कि मनुष्य समाज के लिए कितना प्रभावित रहता है। हीगल ने स्वतन्त्रता पर बहुत बल दिया है। वह स्वतंन्त्रता को व्यक्ति के जीवन का सार मानते हुए कहता है। "स्वाधीनता मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है जिसे अस्वीकार करना उसकी मनुष्यता को अस्वीकार करता है।

इसी क्रम में हम ग्रीन के चिंतन के विविध पक्षों का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ग्रीन राज्य को नैसर्गिक एवं नैतिक जीवन की आवश्यक संस्था मानते हुए भी उसकी शक्तियों के दायरे को सीमित करता है। वह राज्य को आन्तरिक एवं बाह्य क्षेत्र में नियंत्रित रखने का समर्थन करता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि ग्रीन राज्य कर निरंकुशता का समर्थन नहीं करता है। ग्रीन मानता है कि व्यक्ति के विकास के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं उसके अधिकार पूर्ण रुप मिलने चाहिए। वह राज्य के विशेष कार्यो में बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य तक सीमित रखता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रीन राज्य के नैतिक महत्व को स्वीकार करते हुए भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता का बलिदान नहीं करता। उसके राजनीतिक दर्शन का सार सीमित शक्तियों वाला राज्य है जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा के स्वतन्त्र विकास का समर्थन है। ग्रीन के आदर्शवाद के प्रेरणा स्रोत अरस्तु और कॉष्ट है। ग्रीन के विचारों का महत्व इस बात में है कि उसने राज्य की सत्ता को सीमित कर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन किया है। इस प्रकार ग्रीन ने आदर्शवाद को उदारवादी स्वरुप प्रदान किया है।

11.10 शब्दावली

1.बर्जुवा समाजः- पूंजीवाद के अन्तर्गत बड़े बड़े पूंजीपतियों का वह वर्ग जो सामाजिक उत्पादन के प्रमुख साधनों (भूमि, कारीखानों, कच्चेमाल के स्रोतो) पर अपना स्वामित्व और नियन्त्रण स्थापित कर लेता है।

2.संवैधानिक राजतन्त्र:- ऐसी शासन प्रणाली जिसमें राजा या सम्राट नाममात्र को राज्य का अध्यक्ष होता है और शासन की वास्तविक शक्तियां लोकप्रिय संस्थाओं जैसे कि संसद मंत्रिमण्डल, तथा अन्य ऐसे अंगो में निहित होती है जिनकी व्यवस्था संविधान में की जाती है।

3.कुलीनतन्त्र:- ऐसी व्यवस्था जिसमें एक छोटा सा गुट या समूह किसी संगठन की सम्पूर्ण सत्ता पर अपना नियत्रंण स्थापित करके स्वार्थ- पूर्ति के लिए उसका उपयोग करता है।

4.सिविल समाज:- सामाजिक जीवन में राज्य औा विस्तृत परिवार की मध्यवर्ती संस्थाओं का समुच्चय। जैसे कि धार्मिक संगठन, शिक्षा संस्थाऐं मनोरंजन क्लब तथा अनेक स्वैच्छिक साहचर्य।

5.सर्वाधिकारवाद:- वह सिद्धान्त जो राज्य की सारी शक्ति को एक ही जगह केन्द्रित करने, और लोगों के सम्पूर्ण जीवन पर पूर्ण या लगभग पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने का समर्थन करता है।

6.राज्य का सावयव सिद्धान्त:- राजनीति का वह सिद्धान्त जिसमें राज्य और व्यक्ति का सम्बन्ध निर्धारित करने के लिए जीवित प्राणी के दृष्टांत का प्रयोग किया जाता है। इसके अनुसार राज्य एक सम्पूर्ण शरीर के समान है।

7.अन्तर्राष्ट्रीयवाद:- यह मान्यता कि विश्व शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब समस्त राष्ट्र अपने अपने राष्ट्रीय चरित्र का त्याग किए बिना अन्तर्राष्टीय न्याय और सहयोग की सिद्धि के लिए समानता के आधार पर एक मैत्रीपूर्ण संघ के रुप में संगठित हो जाये।

8.संप्रभुता - राज्य की सत्ता का सबसे बुनियादी आधार संप्रभुता के बल पर ही कोई राज्य ऐसे कानून और आदेश जारी कर सकता है जो इसके कार्यक्षेत्र में अनिवार्य रुप से लागू होते है। संसाधनों का आवंटन कानून या आदेशों का उल्लंघन करने वालो को दंण्ड, सन्धियाँ करना आदि कर सकता है।

9.उदारवादी:- उदारवादी राजनीति का वह सिद्धान्त है जो सामन्तवाद के पतन के बाद राजनीति को बाजार अर्थव्यवस्था के अनुरुप मोड़ देने के लिए अस्तित्व में आया।

10.व्यक्तिवाद:- वह राजनीतिक सिद्धान्त जो व्यक्ति, अर्थात प्रत्येक मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए यह मांग करता है कि सार्वजनिक नीति और नियमों का निमार्ण करते समय व्यक्ति की गरिमा, उसके स्वाधीन अस्तित्व को पूरी मान्यता दी जानी चाहिए।

11.परिवर्तनवादी:- वह व्यक्ति या समूह जो वर्तमान व्यवस्था को अनुपयुक्त भृष्ट या गई बीती मानता है और उसमें तत्काल आमूलचूल परिवर्तन मांग करता है।

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परिवार, 2. साध्य, 3. विचार, 4. फिनोमिनोलोजी ऑफ़ स्पिरिट और फिलोसोफी ऑफ़ राईट

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा - ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण-1996

2.आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, चतुर्थ भाग-ज्योति प्रसाद सूद- के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1994-95

3.राजनीति कोश- डॉ0 सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण-1998

4.राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा- ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, पंचम संस्करण-2001

5.राजनीति विज्ञान विश्वकोश- ओ0पी0 गाबा- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

6.पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – पी.डी. शर्मा

11.13 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन- जीवन मेहता

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.हीगल की द्वंद्वात्मक पद्धति की विवेचना कीजिये।

2. हीगल के अनुसार क़ानून और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की व्याख्या कीजिये।

3.ग्रीन के अनुसार –राज्य का आधार इच्छा है न कि शक्ति। व्याख्या कीजिये।

इकाई : 12 जरमी बेन्थम(1748-1832),

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 जरमी बेंथम जीवन परिचय
12.4 बेंथम का उपयोगितावाद
12.5 राज्य संबंधी विचार
12.6 बेंथम का दंड का सिध्दांत
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हमने हीगल के राजनीतिक विचारों के साथ ही साथ चिंतन के अन्य पक्षों का भी अध्ययन किया है जिसमे विशेष रूप से हीगल के आत्म तत्व का सिद्धान्त,द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त ,राज्य सिद्धान्त ,राष्ट्रीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और युद्ध ,दण्ड तथा सत्पत्ति तथा संविधान संबंधी दृष्टि का विशेश रूप से अध्ययन किया है।

अब हम इस इकाई में 19 वीं सदी के उपयोगितावादी विचारक बेंथम के बारे में अध्ययन करेंगे। जिसमें हम दोनों विचारकों के चिंतन का अध्ययन समग्रता में करेगे और देखेंगे कि किस प्रकार से बेंथम राज्य को जनमानस के हित का साधन माना है। यद्यपि दोनों के द्वारा व्यक्ति की आवश्यकताओं और इच्छाओं को लेकर मतभेद भी है। परन्तु एक बात में मतैक्य है कि राज्य एक कृत्रिम संस्था है जिसका कार्य जनमानस के हित की सिद्धि है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम -

1.बेंथम के उपयोगितावाद के बारे में जान सकेंगे।

2.यह भी जान सन सकेंगे कि राज्य किस प्रकार से कृत्रिम संस्था है ,जो जनता के हित का साधन है।

3.यह भी जान सकेंगे कि मिल ने किस प्रकार से बेंथम के उपयोगितावाद में संशोधन किया है।

12.3 जरमी बेंथम जीवन परिचय (1748-1832)

जेरेमी बेन्थम 18 वीं शताब्दी का अंग्रेज विचारक था जिसने शास्त्रीय उदारवाद को नया मोड़ दिया। इनका जन्म 1748 में इंग्लैड के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। पढ़ाई पूरा कर वह विधिशास्त्री बन गया। उसने उस युग में न्यायिक सुधार योजनाओं का समर्थन किया तथा न्यायिक सुधार के माध्यम से समाज में बदलाव लाने का प्रयत्न किया। अपने जीवन काल में एक प्रबल जनतंत्री जेम्स मिल से बेन्थम की मित्रता हो गई जिसके प्रभाव से बेन्थम राजनैतिक सुधारों का भी प्रबल समर्थक बन गया। अपनी पुस्तक Introduction to the Principles of morals and legislation में उसने मनोवैज्ञानिक तर्कों का सहारा लेकर एक नए न्यायदर्शन एवंम विधि निर्माण के लक्ष्य की स्थापना की। डेविड हयूम द्वारा अपनी पुस्तक "Treatise on human nature" में प्रतिपादित उपयोगिता की अवधारणा तथा प्रीस्टल द्वारा प्रतिपादित अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की अवधारणा से मेल कराकर उसने एक नए सुखवाद की रचना कर डाली।

12.4 बेंथम का उपयोगितावाद

बेन्थम ब्रिटेन में उपयोगितावाद के प्रवर्तक बने। उन्होने प्राचीन यूनानी दार्शनिक एपीक्यूरस के विचार को नए सन्दर्भ में दोहराया कि मनुष्य को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वह अपने सुख को बढ़ा सके और दुःख से बच सके। 19 वीं सदी की प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं से यह सिद्धान्त इतना अलग हो गया कि इसे दार्शनिक उग्रवाद तक की संज्ञा दे दी गई पर इसी उपयोगितावाद ने अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की अवधारणा के द्वारा एक ऐसे राज्य की नींव डाली जिसे 20 वीं सदी में आकर कल्याणकारी राज्य कहा गया।

सुखवाद के विचार का समर्थन करते हुए बेंथम ने लिखा कि प्रकृति ने मनुष्य को दो शक्तिशाली स्वामियों के नियंत्रण में रखा है , सुख और दुःख । व्यक्ति हमेशा सुख पाना चाहता है। जो बात सुख को बढाती है और दुःख रोकती है या कम करती है , उसे उपयोगिता कहा जाता है।

हयूम ने संशयवाद की अपनी अवधारणा के आधार पर उपयोगिता में ही किसी वस्तु का औचित्य ढूँढ़ा था। इसी आधार पर बेथम ने घोषणा की कि उपयोगिता ही सुख की कसौटी है। सुख एवंम् दुःख मनुष्य एक इन्द्रिय परक प्राणी है, जो सुख पाना चाहता है एवंम् दुःख कम करना चाहता है। जो बात सुख को बढ़ाती है तथा दुःख कम करती है उसे उपयोगिता कहते है। बेथम का मानना है कि सुख एवम् दुःख आत्मपरक अनूभूति नहीं वरन् वस्तुपरक मानदण्ड है। इनकी प्रकृति परिमाणात्मक है, अर्थात दो सुखों में अंतर इनके गुण का नहीं होता बल्कि इनके परिणाम का होता है। सुख उत्कृष्ट या निकृष्ट नहीं होते, मात्रा कम या अधिक होते है। बेथंम लिखता है यदि सुख की मात्रा बराबर हो तो कविता पाठ् एवम् कंचे के खेल में कोई अन्तर नहीं है।

बेन्थम का सुखवाद सुख एवम् दुःख का नैतिक आयाम प्रदान कर देता है। बेन्थम का कहना है कि सुख ही नैतिक है। अतः हर वह कर्म जो सुख को बढ़ाती हो नैतिक है। अब प्रश्न यह उठता है, कि सुख एवंम् दुःख परिमाणात्मक है तो फिर इस परिमाण की गणना कैसे की जाए? बेन्थम ने इसके लिए एक सुखवादी गणना पद्धति का निर्माण किया है जिसके 7 आधार हैं-

तीव्रता , समयावधि, निश्चितता, निकटता, उर्वरता, शुद्धता, तथा विस्तार है। अब इन आधारों पर वह कार्य श्रेयस्कर है, जिसमें तीव्रता सुख मिले, अधिक समय तक सुख मिले, निश्चित सुख मिले तथा शीघ्र सुख मिले। उर्वरता का तात्पर्य एक ऐसे सुख से है जो आगे चलकर भी सुख दे। कुछ ऐसे कार्य होते है, जो सुख तो देते है, पर उनका परिणाम दुःखद होता है। ऐसे कार्य उचित नहीं है। शुद्धता का तात्पर्य ऐसे सुख से है, जो विशुद्ध हो अर्थात जिसमें दुःख की मिश्रित अनुभूति न हो। विस्तार का तात्पर्य ऐसे सुख से है, जो अधिक लोगों को सुख दे। इन आधारों पर सुख की गणना करने के पश्चात बेन्थम कहता है, कि अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख ही सामाजिक लक्ष्य होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि बेन्थम वैयक्तिक अभिरुचियों का ध्यान नहीं रखता है। वह यह मान लेता है कि अगर कोई एक कार्य सुखद है तो उससे सभी को सुख की प्राप्ति होगी। वह यह नहीं मानता कि एक ही कार्य अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग प्रभाव रख सकते है। इस प्रकार उसका सुखवाद नैतिक मान्यताओं को छिन्न-भिन्न कर देता है। इसी आधार पर कार्लाइव ने उपयोगितावाद को सुवरों का दर्शन तक कह डाला। उपयोगितावाद ने मनुष्य को एक ऐसा प्राणी मान लिया जो, जीवन पर्यन्त एद्रिक सुखों की तलाश में मारा-मारा फिरता है। सुखवाद की मनोवैज्ञानिक आधारों पर भी आलोचना की जाती है। मनोविज्ञान कहता है कि जब तक सुख के पीछे भागा जाए तब

तक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। बेन्थन का मनुष्य तो जीवन पर्यन्त सुख के पीछे भागता रहता है। क्या वह ऐसे सुखी हो पायेगा।

12.5 राज्य संबंधी विचार

बेन्थम राज्य को कृत्रिम संस्था माना है। राज्य ऐसी संस्था है, जो व्यक्तियों के सुखों में अभिवृद्धि करती है। इसे लक्ष्य अधितम व्यक्तियों के अधिकतम सुखों को बढ़ावा देना है। दूसरे शब्दों में राज्य से सुखों में वृद्धि हो। अब अगर तात्कालिक परिस्थियों में राज्य के इस कार्य को देखा जाए तो हम पाते है कि स्वभावतः राज्य के कार्यों में वृद्धि होने लगती है। बेन्थम ने माना कि एक निरक्षर व्यक्ति की अपेक्षा साक्षर व्यक्ति के सुख पाने की सम्भावना बेहतर होती है। इस आधार उसने शिक्षा की व्यवस्था करने, का कार्य राज्यों को सौप दिया। इन्हीं आधारों पर बैन्थम ने न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने, रोजगार की गारंटी देने स्वास्थ सुविधाओं की व्यवस्था करने आदि का समर्थन किया। इस प्रकार बेथंम का राज्य सीमित राज्य नहीं रह गया उसके सिद्धातों में कल्याणकारी राज्य की झलक दिखाई देने लगी इस आधार पर हम मान सकते है कि कल्याणकारी कार्यो का समर्थन करने वाला पहला सिद्धांत बेथंम ही बना।

बेथंम अपने युग की दुविधा से पुर्णतः बाहर नहीं निकल सका। कल्याणकारिता की तमाम संभावनाओं के बावजूद बेथंम नकारात्मक उदारवादी ही बना रहा। सकारात्मक उदारवाद स्वतंत्रता को आत्मोपलब्धि बताकर मनुष्य के चरित्रक विकास से राज्य को जोड़ देता है, पर बेथंम के राज्य का लोगों के नैतिक अथवा चरित्रक विकास से कोई मतलब नहीं हो बेथंम कहता है कि व्यक्ति के जीवन में शासन का हस्तक्षेप कम से कम हो क्योंकि व्यक्ति अपने भले बुरे को सबसे बेहतर समझता है। राज्य एक विधि निर्माता निकाय है। जनता से इसका सम्बन्ध केवल कानून द्वारा स्थापित होता है। यह दण्ड एवंम् पुरस्कार की व्यवस्था द्वारा लोगों को समाज विरोधी कार्य करने से रोकता है। राज्य का कार्य लोगों के अधिकार का निर्धारण करना है जिससे एक व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरे के लिए खतरा बन जाए। साईबाईन ने बेंथम को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करेगा तो वह दण्ड का भागी बनेगा। इसी दण्ड के भय से दूसरे व्यक्ति को पहले की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने से रोका जा सकता है। स्पष्टतः यह प्रतिबंधों के अभाव की अवधारणा से ही जुड़ा है, जो नकारात्मक उदारवाद की अवधारणा है। इसके साथ ही बेथंम ने नकारात्मक उदारवाद की पद्धित पर संपत्ति के अधिकार का समर्थन किया एवंम् आर्थिक असमानता का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया। बेथंम कहता है, कि अगर सभी आर्थिक रुप से समान हो जाएँ तो आर्थिक उत्पादन ठप हो जाएगा। मनुष्य काम करना नहीं चाहता, क्योंकि काम करना कष्ट देता है। अतः अगर भूख से मरने का डर तो लोग काम करना बंद कर देंगे सामाजिक उत्पादकता समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार बेथंम ने आर्थिक समानता का परित्याग कर दिया जो उसके सिद्धान्त का स्वभाविक निष्कर्ष था। अगर ह्रासमान उपयोगिता के नियम के आधार उपयोगिता को परखें तो हम पाते है, कि सामाजिक सम्पत्ति में हुई वृद्धि पहले गरीब को मिलनी चाहिए, क्योंकि इस संपत्ति से अमीर की अपेक्षा गरीब को अधिक खुशी मिलेगी। इस प्रकार अगर अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख के लक्ष्य के अनुसार राज्य सामाजिक लाभ का बँटवारा करने, लगे, तो निम्न स्थितिवाले को अधिक लाभ मिलेगा और समानता अपने आप स्थापित हो जाएगी। पर बेथंम ने जैसा कि C.B. Mc.Pherson ने कहा है, पूँजीवाद के लाभ के लिए समानता की अवधारणा का त्याग कर दिया। अतः बेथंम तथा J.S. Mill भी, जिसमें कल्याणकारिता बेथंम से अधिक है, नकारात्मक उदारवाद को पूर्णतः नहीं छोड़ सका। J.S. Mill एक ऐसा सिद्धांतकार बन गया, जो नकारात्मक एवंम् सकारात्मक उदारवाद के बीच स्थित है।

जहाँ तक राजनीति की बात है, बेथंम ने समानता के सिद्धांत को कुछ हद तक स्वीकार भी किया। शासन पद्धति की बात करते हुए बेथंम ने लोकतंन्त्र का समर्थन किया। बेथंम कहता है कि स्वशासन दूसरे द्वारा शासन से बेहतर हैं यह शासन जिसमें शासितों का शासन में हिस्सा हो, लोकतन्त्र ही हो सकता है। इस लोकतन्त्र में भी बेथंम ने व्यस्क मताधिकार का समर्थन किया। उदारवादी मान्यता के अनुसार बेथंम मनुष्य को विकशील प्राणी मानता था तथा सभी सुख दुःख से ही परिचालित होते थें अतः बेथंम ने कहा कि प्रत्येक को एक गिना जाए तथा किसी को भी एक अधिक न गिना जाए। बेथंम ने एक व्यक्ति एक मत का समर्थन किया। स्पष्टतः समानता को बेथंम ने राजनैतिक क्षेत्र में तो सही माना पर आर्थिक क्षेत्र में नहीं बेथंम ने कहा भी समानता राजनैतिक शुभ है।

लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए ही बेथंम ने लार्ड सभा के समाप्ति की मात्रा को तथा संसद के वार्षिक चुनाव का समर्थन किया। वस्तुतः 19वीं शदी के ब्रिटेन के राजनैतिक पर बेथंम का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। उसने ऐसे सुधारों का भी समर्थन किया जिसके लिए आज का ब्रिटेन भी तैयार नहं हो सका है बेथंम ने राजतन्त्र को समाप्त कर गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के स्थापना की माँग की जिसे आज भी स्वीकार नहीं किया जा सका है। जैसा कि हम देख चुके है, बेथंम ने कानून के आधार पर ही राज्य और व्यक्ति का संबंध निर्धारित किया। वह विधि अधिकारों को ही मान्यता प्रदान करता है एवंम् टॉम पेंन जैरां लोगों द्वारा समथित प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त को नकार देता है। बेथंम कहता है कि प्राकृतिक अधिकार भ्रम है अथवा मानसिक प्रमाद है। फ्रांस में मनुष्य के अधिकारों की घोषणा ने उन हजारों में से एक व्यक्ति के प्राणों की रक्षा नहीं की जो क्रांतिकारी न्यायालय के सामने खीचकर लाए गए, न ही अमेरीका में इसने एक भी हब्शी को दासता के बन्धन से मुक्त किया।

बेथंम के उपयोगिता के संबन्ध में यह भी प्रश्न उठता है कि अगर हर मनुष्य व्यक्तिगत सुख और दुःख के आधार पर कार्य करें, तो सामाजिकता का निर्वाय किस प्रकार संभव होगा। इस वैयक्तिक सुख और अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख में टकराव भी तो संभव है? बेथंम ने नैतिक मानयताओं के अपने विचार द्वारा इस विवाद को दूर करने का प्रयास किया है। वह कहता है कि कुछ ऐसे सुख तथा दुःख होते है, जो व्यक्ति को दूसरों के सुख के लिए अपने निजी सुख का बलिदान करने के लिए प्रेरित करते है, बेथंम इन्हें नैतिक मान्यता कहता है। उसने ऐसी चार मान्यताओं की बात की है। भौतिक मान्यता, सार्वजनिक मान्यता, धार्मिक मान्यता एवंम् राजनैतिक मान्यता।

भौतिक मान्यता कहती है, कि हम किसी वस्तु का उतना ही प्रोग करे जिससे वह हमें अधिकतम सुख पहुंचाए। जरूरत से अधिक खाना हमारी सेहत को बिगाड़ सकता है, अथवा जरुरत से अधिक अधिक वस्त्र पहन लेना कष्टप्रद हो सकता है। अतः हम सीमित मात्रा में ही इन वस्तुओं का प्रयोग करते है। जिससे यह औरों को भी सुलभ हो जाता है। सार्वजनिक मान्यता के कारण हम ऐसे कार्यो को पसन्द करते है, जिसके करने से हमें कीर्ति मिले अथवा यश प्राप्त हो तथा ऐसे कार्यो से बचते है, जिसमें निन्दा का भय हो। धार्मिक मान्यता भी हमें कुछ कार्यो को करने से मना करती है, तथा कुछ कार्यो के लिए प्रोत्साहित करती है। राजनैतिक मान्यता का तात्पर्य राज्य की मान्यता से है। राज्य कुछ कार्यो को पुरस्कृत करता है, तो कुछ कार्यो को दण्डित करता है। इन्ही मान्यताओं के कारण अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की प्राप्ति संभव हो पाती है, तथा सामाजिकता का निर्वहन संभव हो पाता है।

1.6 बेंथम का दंड का सिध्दांत

बेंथम ने माना है कि समाज में कानून बहुत जरुरी है। उसने दंड पर विस्तार से चर्चा की। उसका मानना था कि दंड का स्वरुप सुधारात्मक होना चाहिए। दंड ऐसा होना चाहिए जिससे अपराध को कम किया जा सके व अपराधी के चरित्र को सुधारा जा सके। बेंथम का यह भी मानना था कि अपराध जितना गंभीर हो उस अनुसार ही दंड दिया जाना चाहिए

और यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए की अपराधी दोबारा वह अपराध न करे। दंड ऐसा होना चाहिए जिसे देखकर अन्य व्यक्ति भी वह अपराध करने की न सोच पाए। बेंथम के अनुसार, दंड को तभी उपयुक्त मानना चाहिए जब उससे लोककल्याण के लक्ष्य की सिध्दि हो सके।

अभ्यास प्रश्न

1. बेन्थम का जन्म कहाँ हुआ था ?

2. बेन्थम राज्य को कृत्रिम संस्था माना है। सत्य/असत्य

3. Introduction to the Principles of morals and legislation नमक पुस्तक के लेखक कौन हैं?

4. बेंथम किस प्राचीन यूनानी विचारक से प्रभावित थे?

5 सार्वजानिक मताधिकार का समर्थन किसने किया?

12.7 सारांश

बेथंम का सिद्धान्त 19वी सदी के प्रारम्भिक चरण में लोकतांत्रिक दबावों का प्रमुख माध्यम बनता है। बेंथम ने जब व्यस्क मताधिकार की बात की तब बहुत कम लोग इसके लिए तैयार थे। ब्रिटेन में तो अगले 100 वर्षों वर्षों तक इसे लागू करना संभव नहीं हो सका। इस दृष्टिकोण से बेंथम अपने समय से काफी आगे की सोच रखते थे। पर अपने समय के दबाओं से वे पूर्णत मुक्त भी नहीं हो सके। पूँजीवाद का उन्होने गैर तांत्रिक समर्थन करने का प्रयास किया। उपयोगितावाद नैतिक मान्यताओं पर सही नहीं ठहर सका। यह एक प्रकार के बहुमतवाद में बदल गया। इसमें यह सम्भव था कि बहुमत के सुख के लिए अल्पमत का दमन किया जा सके। इसमें 5 के सुख के लिए 4 को साधन बनाना सम्भव था। अतः कान्तीवादी नैतिकता जिसके अनुसार व्यक्ति अपने आप में साध्य है इसे दूसरे के हित का साधन नहीं बनायाजा सकता के मापदण्ड पर वह सही नहीं उतरता। जॉन रॉल्स ने इसी आधार पर आलोचनावाद की आलोचना की है। बेंथम ने सुख और दुःख को पूर्णतः परिणात्मक बता दिया जिसकी उसके शिष्य निल तक ने आलोचना की। वह सुखी, खुशी, आनन्द आदि अनुभूतियों में भी अंतर नहीं कर सका पर बेंथम का योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। फ्रांस में जिन मूर्तियों की स्थापना के लिए क्रान्ति की आवश्यकता पड़ी उन्हे अगर ब्रिटेन में क्रमशः स्वीकार कर लिया गया तो इससे बेंथन जैसे सिद्धान्तकारी के महत्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा। राज्य को मनुष्य के सुखों में अभिवृद्धि करने वाली संस्था बताकर बेंथन ने एक ऐसे नए मार्ग की खोज की, जिस पर----- चलकर राज्य कल्याणकारी राज्य में बदला। उपयोगितावाद स्वयं चाहे जितना सही या गलत हो परन्तु ब्रिटेन के राजनैतिक जीवन में इसकी उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता।

12.8 शब्दावली

उपयोगितावाद – इस शब्द का प्रयोग बेंथम और मिल ने राज्य की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए किये है ।जिसके अनुसार राज्य एक कृत्रिम संस्था है । जिसका आधार यह है कि राज्य व्यक्ति लिए एक उपयोगी (साधन)संस्था है ।

प्रतिनिधि सरकार – ऐसी सरकार जो जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है ।जिसके अस्तित्व का आधार जनता की सहमति होती है ।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इंग्लैड , 2. सत्य 3. बेंथम, 4. एपीक्यूरस, 5. बेंथम

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा - ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण-1996

2.आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, चतुर्थ भाग-ज्योति प्रसाद सूद- के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1994-95

3.राजनीति कोश- डॉ0 सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण-1998

4.राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा- ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, पंचम संस्करण-2001

5.राजनीति विज्ञान विश्वकोश- ओ0पी0 गाबा- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

12.11 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – पी.डी. शर्मा

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – जीवन मेहता

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.बेंथम के उपयोगितावादी सिद्धांत पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 13 टॉमस हील ग्रीन, जे. एस. मिल

इकाई संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 ग्रीन का जीवन परिचय

13.3ग्रीन का आध्यात्मिक सिद्धान्त
13.4 ग्रीन के राजनीतिक विचार
13.4.1 ग्रीन की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा
13.4.2 ग्रीन की अधिकार सम्बन्धी धारणा
13.4.3 प्राकृतिक कानून पर ग्रीन के विचार
13.4.4 सामान्य इच्छा पर ग्रीन के विचार
13.4.5 राज्य के कार्यो पर ग्रीन के विचार
13.4.6 राज्य और व्यक्ति
13.4.7 सम्पत्ति पर ग्रीन के विचार
13.5 जे. एस. मिल का जीवन परिचय
13.5.1 उपयोगितावाद में संशोधन
13.5.2 स्वतंत्रता संबंधी विचार
13.5.3 राज्य के कार्य
13.5.4 प्रतिनिधि सरकार
13.5.5 मिल अनिच्छुक लोकतन्त्रवादी
13.6 मिल के महिलाओं सम्बन्धी विचार
13.7 सारांश
13.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
13.9 शब्दावली
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम थामस हिल ग्रीन और जे. एस. मिल के राजनीतिक विचारों को पढेंगे। जिसके अंतर्गत थामस हिल ग्रीन के स्वतन्त्रता , अधिकार और कानून सम्बन्धी धारणा का अध्ययन करेंगे और देखेंगे किस प्रकार से ग्रीन ने लोंगो के अधिकारों को महत्व प्रदान किया है और इसका व्यक्ति और राज्य के बीच संबंधो पर क्या प्रभाव पडता है ,इसका भी अध्ययन किया जाएगा। जे. एस. मिल को 19 वीं शताब्दी का व्यक्तिवादी और स्वतंत्रता की महत्व देने वाला विचारक माना जाता है। इस इकाई में हम ग्रीन के राजनीतिक विचारों के बाद मिल के उपयोगितावाद में किये गये संशोधन, स्वतंत्रता संबंधी विचार, राज्य के कार्य विचार, प्रतिनिधि सरकार सम्बन्धी विचार को जानने का प्रयास करेंगे।

13.1 उद्देश्य

1. ग्रीन की स्वतन्त्रता, अधिकार और कानून सम्बन्धी धारणा को जान सकेंगे।

2. सामान्य इच्छा पर ग्रीन के विचार का अध्ययन कर सकेंगे।

3. ग्रीन के अनुसार व्यक्ति और राज्य के मध्य सबंधों का अध्ययन कर सकेंगे।

4. जे. एस. मिल उपयोगितावाद में किये गये संशोधन को जान सकेंगे

5.जे. एस. मिल के स्वतंत्रता संबंधी विचार, राज्य के कार्य सम्बन्धी विचार, प्रतिनिधि सरकार सम्बन्धी विचार को जान सकेंगे।

13.2 ग्रीन का जीवन परिचय

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का अंग्रेजी दार्शनिक और समाज सुधारक ग्रीन को कहा जाता है उसने लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को बढ़ावा दिया टी.एच. ग्रीन ने रूसो , कांट, हेगल के विचारों से सीख कर उदारवादी परंपरा को कल्याणकारी राज्य की ओर ले जाने का काम किया। ग्रीन का जन्म 7 अप्रैल 1836 ई. को इग्लैंड के यार्कशायर में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई , उच्च शिक्षा के लिए 1855 में ऑक्सफ़ोर्ड के बलियन कॉलेज में प्रवेश लिया। ऑक्सफोर्ड में यूनानी दार्शनिकों प्लेटो और अरस्तू को पढ़ाया जाता था। प्लेटो की द रिपब्लिक और अरस्तु की एथिक्स पाठ्यक्रम में शामिल थी इमानुएल कांट और हीगल जैसे दार्शनिकों का भी ग्रीन पर प्रभाव पड़ा। रूसो की सामान्य इच्छा की अवधारणा ने भी ग्रीन का मार्गदर्शन किया लोकप्रिय संप्रभुता को सामान्य इच्छा का आधार बनाकर ग्रीन ने उसके उन तत्वों को हटा दिया जो सर्वाधिकार वादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देते थे प्लेटो अरस्तु कांट, हीगल और रूसो इन सब की विचारधारा एक सामान्य दिशा की ओर अग्रसर होती है और वह है आदर्शवाद जिससे ग्रीन का चिंतन ओतप्रोत हैं। 1860 में ग्रीन बलियन कॉलेज में फेलो निर्वाचित किये गये और

1878 में उन्हें ऑक्सफ़ोर्ड में नैतिक दर्शन का प्रोफेसर बनाया गया। वह सार्वजानिक क्षेत्र में भी सक्रिय रहे , वे उदार दल के सदस्य रहे । उन्होंने शराब विरोधी आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया और सरकार से यह मांग की कि शराब के व्यापार पर नियंत्रण होना चाहिए। 26 मार्च 1882 को इनकी मृत्यु हो गयी।

1880 से 1920 तक ग्रीन के राजनीतिक दर्शन ने ग्रेट ब्रिटेन में विश्वविद्यालय शिक्षा और सार्वजनिक नीति को प्रभावित किया है। ग्रीन की दो प्रमुख कृतियां प्रोलेगोमेना टू एथिक्स और लेक्चरर्स ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ़ पॉलीटिकल ऑब्लिगेशन (नीति शास्त्र की प्रस्तावना और राजनीतिक दायित्व का सिद्धांत पर व्याख्या) यह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई। राजनीति में उसने जर्मन आदर्शवाद और अंग्रेजी उदारवाद का समन्वय किया। उसका विचार है कि राज्य मनुष्य को नैतिक नहीं बन सकता परंतु वह निश्चित ही ऐसी परिस्थितियों पैदा कर सकता है, जिसमें मनुष्य की नैतिक उन्नति हो सके मतलब कि वह राज्य से यह आशा करता है कि वह मनुष्य की नैतिक जीवन की मार्ग में आने वाली बाधाओं और व्यवधानों को दूर हटाए। हीगल की तरह ग्रीन भी मानता है की विश्व के मूल में एक ही आध्यात्मिक तत्व है हीगल ने इसे विश्वात्मा विचार या विवेक का नाम दिया और ग्रीन ने इसे शाश्वत चैतन्य का नाम दिया।

13.3 ग्रीन का आध्यात्मिक सिद्धान्त

हम मनुष्य को भौतिक प्रकृति का एक अंश मानकर तथा उसकी अन्य क्रियाओं को केवल प्राकृतिक घटनाएं मानकर उसके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकते। वह आधारभूत बिन्दु जिससे ग्रीन मानव स्वभाव का विश्लेषण करता है, मनुष्य की आत्म चेतना प्राप्त करने का गौरव केवल मनुष्य को है।

हीगल तथा फिम्टे की भांति ग्रीन भी यह मानता है कि संसार और आत्मा में एक ही तत्व निहित है। यह तत्व बुद्धिगम्य होता है। इस विवेकशीलता के कारण ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि संसार की कोई वस्तु बुद्धिगम्य नहीं होगी तो उसका अस्तित्व ही नहीं होगा। ग्रीन की मान्यता है कि संसार की सभी वस्तुऐं तथा आत्मा विवेकशील होती है। बाह्माण्ड का ज्ञान विवेक द्वारा हो सकता है। इस परम विवेक या बुद्धि को ही जिसके द्वारा सांसारिक वस्तुओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है, परमात्मा का नाम दिया जाता है। ग्रीन ने इसे शाश्वत चेतना की संज्ञा दी है। चुंकि यह ब्रह्माण्ड की सत्ता है और इसको जाना जा सकता है, इसलिए यह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त और उसकी चेतना सबमें विद्यमान रहती है। एकता और व्याख्या स्थापित करने वाला यह एक क्रमबद्ध सिद्धान्त है। संसार की प्रत्येक वस्तु इसी शाश्वत चेतना की ओर बढ़ने का प्रयास करती है।

ग्रीन कहता है कि संसार में तीन तत्व है, मनुष्य तत्व या मानव आत्मा, जगत तत्व ओर परम तत्व इनको मिलकर एक ईकाई का निर्माण होता है। इनका आपस में जो सम्बन्ध है वह योगिक न होकर सावयविक होता है। इस प्रकार ग्रीन का पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य में शाश्वत् चेतना का निवास रहता है। यही उसके राजनीतिक एवं नैतिक विचारों का जन्म दाता है। अतः मनुष्य जो कि शाश्वत चेतना का ही अंश है, भी सदैव नैतिक जीवन के लिए सत्त स्वतन्त्रता की कामना करता है। मानवीय चेतना की व्याख्या करते हुए ग्रीन बताता है कि मनुष्य एक नैतिक ईकाई है और उसके नैतिक जीवन की उपलब्धि के लिए स्वतंत्रता नितान्त आवश्यक है।

13.4. ग्रीन के राजनीतिक विचार

13.4.1 ग्रीन की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा

ग्रीन के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों अध्ययन करते हुए हमें ज्ञात होता है कि ग्रीन ने स्वतन्त्रता को मानवीय चेतना के साथ जोडा है। रुसों तथा कान्ट की स्वतन्त्रता की धारणा से प्रभावित होकर ग्रीन यह मानता है कि नैतिक स्वतन्त्रता मनुष्य का विशिष्ट गुण है। स्वतन्त्र नैतिक इच्छा के कारण ही मनुष्य सदैव अपने आपको एक लक्ष्य के रुप मे मानता है। ग्रीन के पूर्व व्यक्तिवादी विचारकों ने स्वतन्त्रता को नकारात्मक शक्ति नहीं मानता। ग्रीन की मान्यता स्वतनत्रता व्यक्ति को प्राप्त एक सकारात्मक शक्ति है जिसका प्रयोग व्यक्ति आदर्श दृष्टि से करने योग्य कार्यो को करने में करता है और अपनी नैतिक पूर्णता को प्राप्त करता है ग्रीन के शब्दों में स्वतन्त्रता करने योग्य कार्यो को करने की तथा उपभोग करने योग्य चीजों के उपभोग करने की सकारात्मक शक्ति है। साधारण शब्दों में वे कार्य जो नैतिक उत्थान की दृष्टि से करने योग्य है, अथवा वे वस्तु जिनका उपभोग करना नैतिक दृष्टि से वांछनीय है ऐसे कार्यो को करने की सकारात्मक शक्ति को स्वतन्त्रता कहते है। स्वतन्त्रता का सम्बन्ध सद् इच्छा से है, अतः किसी कुत्सित कार्य को करने की छूट को स्वतन्त्रता नहीं कहते है। जो करने योग्य कार्य है अर्थात जो सामाजिक दृष्टि से नैतिक व स्वीकृत कार्य है, उनको करने की शक्ति ही स्वतन्त्रता है। ग्रीन के अनुसार करने योग्य कार्य वे कार्य होते है जिन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है, अर्थात जो समाज के हित में हो। संक्षेप में सामाजिक नैतिकता से स्वीकृत कार्यो को करने की शक्ति ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता है। यह व्यक्ति की सकारात्मक शक्ति इसलिए है कि वह इसका स्वेच्छा से सदुपयोग कर, करने योग्य कार्यो को कर सके।

ग्रीन स्वतन्त्रता को व्यक्ति द्वारा करने योग्य कार्यो की सकारात्मक शक्ति बताकर उसका सम्बन्ध अधिकारों की धारणा के साथ जोड़ता है। स्वतन्त्रता का वास्तविक उपभोग तभी किया जा सकता है जब अधिकार मुक्त हो। अधिकार विहिन स्वतन्त्रता उच्छखंलता में परिणत हो जाती है। यदि हमें व्यक्तित्व की उन्नति के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की अपेक्षा है तो यह स्वाभाविक है कि हमें जीवन का अधिकार सम्पत्ति का अधिकार, स्वतन्त्रता पूर्वक भ्रमण का अधिकार, व्यवसाय, शिक्षा एवं कार्य का अधिकार आदि प्राप्त हों, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि हम अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं को इस रुप में हटाने को प्रयत्नशील हो जाएँ जिससे दूसरें लोगों के अधिकारों का हन्न हो।

13.4.2 ग्रीन की अधिकार सम्बन्धी धारणा

ग्रीन के मतानुसार अधिकार व्यक्ति के कार्य करने की स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता को समाज द्वारा स्वीकृति मिलती है। ग्रीन कहता है कि सामाजिक मान्यता अधिकार का आवश्यक तत्व है। सामाजिक मान्यता के बिना कोई दावा अधिकार का रुप ग्रहण नहीं कर सकता। ग्रीन प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को अस्वीकार करता है। तथा साथ2 प्राकृतिक अधिकारों की आलोचना करता है। प्राकृतिक अधिकार उन अधिकारों को कहते है जो अधिकार व्यक्ति को नैसर्गिक देन है, व्यक्ति के अधिकार उसे प्रकृति से जीवन के साथ मिले है, समाज अथवा राज्य से नहीं। अतः राज्य को अधिकारों को छीनने का अधिकार भी नहीं है। ग्रीन प्राकृतिक अधिकारों को सिद्धान्त को अस्वीकार करने के पीछे कारण बताते है कि अधिकारों के लिए सामाजिक मान्यता आवश्यक है। ग्रीन का कथन है कि "प्राकृतिक अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो कि समाज हीन प्राकृतिक अवस्था में पाया जाता है।"

ग्रीन कहता है कि अधिकार न तो व्यक्ति के स्वार्थ से जुड़े हुए होते है जिसे कि वह समाज के सम्मुख पेश करता है और न ही अधिकार प्राकृतिक होते है। अधिकार वे होते है जिन्हें समाज मान्यता प्रदान करता है और जिन्हें प्राप्त करके व्यक्ति सार्वजनिक कल्याण को अपना कल्याण बना लेता है।

ग्रीन के अधिकारों के दो प्रकारों को स्वीकार किया है। वे दो प्रकार है।

(1) आदर्श नैतिक अधिकार ;

(2) कानूनी अधिकार ;

आदर्श अधिकार उन अधिकारों को कहते हैं जिनकी व्यक्ति को एक मनुष्य होने के नाते आवश्यकता होती है। चाहे राज्य ऐसे अधिकारों को मान्यता दे अथवा नहीं , ऐसे अधिकार मानव जीवन में आदर्श के रुप में आवश्यक होते है। जीवन के अधिकार को हम इसका एक उदाहरण मान सकते है। आदर्श अधिकारों का दायरा व्यापक होता है लेकिन इनको लागू करने वाली कोई बाध्यकारी शक्ति इनके पीछे नहीं होती है। आदर्श अधिकार समाज के सम्मुख नैतिकता का मापदण्ड प्रस्तुत करते है जिसके आधार पर कानूनी अधिकार सरलता से समाज में लागू किये जा सके।

कानूनी अधिकार उन अधिकारों को कहते है जिन्हें राज्य द्वारा अपने नागरिकों को प्रदान किये जाते है और सरकार जिन्हें समाज में लागू करती है या व्यक्तियों से उनका पालन कराती है। अर्थात राज्य द्वारा निर्मित एवं प्रदत्त होने से उनको लागू करने वाली राज्य की बाध्यकारी शक्ति जुड़ी रहती है। ग्रीन के अनुसार आदर्श नैतिक अधिकारों की तुलना में कानूनी अधिकारों का दायरा सीमित रहता है।

अर्थात कानूनी अधिकार लागू किये जाते हैं किन्तु आदर्श अधिकारों को लागू नहीं किया जा सकता।

ग्रीन के आदर्श नैतिक अधिकारों का जब हम मूल्यांकन करते है तो ज्ञात होता है कि यद्यपि ग्रीन ने प्रकृतिक अधिकारों का खंडन किया है किन्तु जब गहराई से अध्ययन करते है तो स्पष्ट होता है आदर्श नैतिक अधिकारों का सिद्धान्त भी प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त से मेल खाता है। ग्रीन के आदर्श नैतिक अधिकारों में एक दोष यह कि ग्रीन उनकी स्पष्ट होता है कि ग्रीन का आदर्श नैतिक अधिकारों का सिद्धान्त उसी प्रकार दोष पूर्ण है जिस प्रकार के दोष प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त में पाये जाते है।

13.4.3 प्राकृतिक कानून पर ग्रीन के विचार

ग्रीन के अनुसार कानून इस दृष्टि से प्राकृतिक कहे जाते है कि वे सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। समाज की नैतिक भावना के विकास के साथ प्राकृतिक कानूनों में भी परिवर्तन हुआ करता है। उनका मानना है कि प्राकृतिक न्याय शास्त्र को ही इस बात का निर्णय करना चाहिए कि किन कानूनों को प्राकृतिक समझा जाए। तभी वह मान्य होगें और लागू करने योग्य होंगे फिर चाहे वे राज्य द्वारा निर्मित कानूनों का अंग हो अथवा न हों।

ग्रीन प्राकृतिक कानून और नैतिक कर्तव्य में भेद प्रकट करते हुए कहता है "प्राकृतिक कानून और नैतिक कर्तव्य में अन्तर हैं क्योंकि प्राकृतिक कानून और विधि पारित कानून में शाक्ति तत्व निहित है तथा नैतिक कर्तव्यों में किसी बाह्य शक्ति का दबाव नहीं होता"। नैतिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए बाहरी दबाव, जिसकी नीवं कतिपय लक्ष्यों की पूर्ति पर निर्भर है, उन लक्ष्यों की पूर्ति असम्भव कर देता है और इसी कारण राज्य द्वारा लागू किए गए कानूनों की सीमा निर्धारित होती है। अतः प्राकृतिक कानून, अधिकार और कर्तव्यों का अनुबन्ध वास्तविक नैतिकता से भिन्न है, किन्तु इससे जुड़े हुए है।

13.4.4 सामान्य इच्छा पर ग्रीन के विचार

सामान्य इच्छा की धारणा के सम्बन्ध में ग्रीन हॉब्स, लॉक तथा रुसो से बहुत प्रभावित है। ग्रीन मानता है कि सामान्य हित की चेतना समाज को जन्म देती है। सामान्य हित की जो सामान्य चेतना होती है, उसकी ग्रीन 'सामान्य इच्छा'

की संज्ञा देता है। सामान्य इच्छा ही राज्य की प्रकृटिकरण है। यह सम्प्रभुता की सृष्टि करती है जिसका ध्येय अधिकारों को क्रियान्वित करना एवं उन संस्थाओं को पूर्ण स्वस्थ अवस्था में रखना है जो अधिकारों और कानूनों के मूर्तरूप है।

ग्रीन की मान्यता है कि राज्य का जन्म सामाजिक समझौते द्वारा न होकर मनुष्यों के सामान्य हित की सिद्ध के लिए होता है। राज्य के बिना सामान्य हित की प्राप्ति नहीं की जा सकती और रुसों के सिद्धान्त में सत्य का इतना अंश है कि राज्य का आधार शक्ति नहीं बल्कि सामान्य इच्छा है। ग्रीन ने भी इच्छा के दो रुप माने है 1. वास्तविक इच्छा 2. यथार्थ इच्छा। वास्तविक इच्छा स्वार्थपूर्ण होती है। वास्तविक इच्छा का निमार्ण काम, क्रोध, मोह आदि भावनाओं को लेकर होता है। इसमें विवेक नहीं होता है तथा ये यथार्थ इच्छा माने सद इच्छा के मार्ग में समस्या खड़ी करती है। सद इच्छा व्यक्ति के अर्न्तःमन से उत्पन्न होती है। इन सद इच्छाओं को सामूहिक रुप से ग्रीन सामान्य इच्छा का नाम देता है।

ग्रीन का मत है कि राज्य व्यक्ति की सद इच्छा पर आधारित है। ग्रीन का कथन है कि राज्य शक्ति पर नहीं अपितु व्यक्ति की सद इच्छा पर आश्रित है। ग्रीन की धारणा है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। ऐसा सामाजिक प्राणि अनिवार्यतः समाज की सदस्यता तथा सामाजिक पारस्परिकता के माध्यम से ही अपने जीवन के नैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है। ग्रीन स्वीकार करता है कि अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर राज्य बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग करता है और शक्ति उसके तत्वों में से एक तत्व है किन्तु एक मात्र शक्ति ही राज्य का आधार नहीं है। दूसरी और राज्य की दंण्ड शक्ति भी उसका आधार नहीं है। ग्रीन कहता है कि यदि मनुष्य दण्ड से डरकर किसी की आज्ञाओं का पालन करता है तो मनुष्य और पशु में क्या अन्तर रहेगा। ग्रीन का मानना है कि एक चेतनशील प्राणी के नाते मनुष्य राज्य का सदस्य है तथा शक्ति राज्य का आधार नहीं हो सकती है। राज्य का आधार व्यक्ति की सद्इच्छा है। ग्रीन का कथन है कि राज्य का आधार सामान्य उद्देश्य की सामान्य चेतना है। इसका अर्थ है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सद्इच्छा की यह चेतना है कि नैतिक जीवन की प्राप्ति उसके जीवन का लक्ष्य है नैतिक श्रेष्ठता की प्राप्ति उसका सामान्य उद्देश्य है। किन्तु इस सामान्य उद्देश्य की चेतना समाज की सद् इच्छाओं की है, अर्थात सद् इच्छाओं की यह सामूहिक चेतना है। इस नैतिक उत्थान के सामान्य उद्देश्य से प्रेरित होकर व्यक्ति की सद् इच्छा राज्य को स्वीकार करती है। अतः व्यक्ति की सद् इच्छा ही राज्य का आधार है। भय अथवा व्यक्ति राज्य का आधार नहीं है। व्यक्तियों की सद् इच्छा, जिसका सामूहिक रुप सामान्य इच्छा है, यही सामान्य इच्छा राज्य का आधार है। जिस शक्ति को रुसों ने सामान्य इच्छा कहा है उसी शक्ति को ग्रीन ने सामान्य हित की सामान्य चेतना कहा है।

13.4.5 राज्य के कार्यो पर ग्रीन के विचार

ग्रीन के अनुसार राज्य के कार्य नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार के होने चाहिए। सकारात्मक दृष्टि से वह चाहता है। कि राज्य व्यक्ति को वह कार्य करने दे जो कार्य करने योग्य है, और इनके करने में जहाँ बाधाएँ आती हो, उन बाधाओं को समाप्त करना राज्य का कार्य है। ग्रीन के अनुसार राज्य को यह अधिकार है कि नैतिकता के विकास के लिए उचित होने पर वह नागरिकों के कार्यो में हस्तक्षेप करे तथा आवश्यक होने और इनके करने में जहाँ बाधाएँ आति हो, उन बाधाओं को समाप्त करना राज्य का कार्य है। ग्रीन के अनुसार राज्य को यह अधिकार है कि नैतिकता के विकास के लिए उचित होने पर वह नागरिकों के कार्यो में हस्तक्षेप करे तथा आवश्यक होने पर बल प्रयोग से भी न हिचके।

नकारात्मक दृष्टिकोण के अनुसार ग्रीन के मत से राज्य का यह कर्तव्य किसी भी व्यक्ति को आन्तरिक अथवा नैतिक सहायता प्रदान करना नहीं है, अपितु राज्य का परम कर्तव्य है कि वह बाह्य हस्तक्षेप द्वारा ऐसा वातावरण का निमार्ण करे जिससे व्यक्ति के अन्दर अधिक से अधिक सामाजिक अथवा नैतिक चेतना उत्पन्न हो। राज्य को ऐसे व्यक्तियों के लिए दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिए जो व्यक्ति के सामाजिक उन्नति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर रहे हो। राज्य का निरन्तर प्रयास यह होना चाहिए, उन सब स्थितियों को दूर करने हेतु प्रयत्नशील हो, जो नैतिकता के विकास में बाधक हो। राज्य का विशेष कार्य सर्वोत्तम जीवन निर्वाह की बाधाओं को दूर करना है।

15.3.6राज्य और व्यक्ति

हीगल के राजनीतिक विचारों का जब हम अध्ययन करते है तो ज्ञात होता है कि हीगल ने व्यक्ति को पूर्ण रुप से राज्य के अधीन कर दिया है और व्यक्ति को राज्य के विरूद्ध किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं है। किन्तु ग्रीन के विचार राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध उदार है। ग्रीन का विचार है कि व्यक्ति को राज्य के किसी कानून को जिसे वह सामान्य हित का विरोधी होने के नाते बुरा मानता है, साधारण परिस्थितियों में उल्लंघन अथवा प्रतिकार नहीं करना चाहिए अपितु उसका पालन करना चाहिए। लेकिन व्यक्ति उस बुरे कानून को निरस्त कराने में संवैधानिक तथा कानूनी साधनों का प्रयोग कर सकता है। समाचार पत्र, राजनीतिक दल, गैर, सरकारी संगठन, सामाजिक संगठन इत्यादि के माध्यम से उस कानून के विरुद्ध जनमत तैयार कर सकता है। जिससे कि उस कानून को निरस्त किया जा सके। यदि संविधानिक साधन राज्य के बुरे कानून को समाप्त कराने में असमर्थ हो तब व्यक्ति राज्य की अवज्ञा अथवा उसका प्रतिकार करने के विषय में सोच सकता है।

ग्रीन हर परिस्थिति में राज्य की अवज्ञा को उचित नहीं मानता है। जिसके लिए उसने इतनी शर्तो को लगाया है। ग्रीन की इस सावधानी और सतर्कता को ध्यान में रखते हुए प्रो0 बार्मर ने ग्रीन को एक 'उच्च आदर्शवादी' के साथ उसे एक 'गंभीर यथार्थवादी' भी बताया है। क्योंकि वी मन चाहे तरीके अथवा मनचाही राज्य प्रतिकार करने का व्यक्ति का अधिकार नहीं मानता ग्रीन कहता है कि राज्य का प्रतिकार करने का व्यक्ति का अधिकार नहीं मानता। ग्रीन कहता है कि राज्य का प्रतिकार केवल विशिष्ट परिस्थितियों में एक दुःखपूर्ण कर्तव्य के नाते किया जा सकता है अधिकार के रूप में नहीं ।

ग्रीन एक आदर्शवादी विचारक होने के साथ शान्तिवादी विचारक भी है। एक ऐसा विचारक जो युद्ध को हमेशा एक बुराई के रुप में देखता है। ग्रीन मानता है कि युद्ध मनुष्य के जीवन के अधिकार को नष्ट करता है। उसका कथन है कि व्यक्ति के जीवन की स्वतन्त्रता युद्ध में नष्ट हो जाती है। ग्रीन ने आक्रामक तथा रक्षात्मक इन दो प्रकार के युद्धो की चर्चा की हैं। आक्रामक युद्ध वह युद्ध है जो किसी देश पर बल आक्रमणकारी राज्य द्वारा थोपा जाता है तथा रक्षात्मक युद्ध वह है जो किसी राज्य को उस पर थोपे गये युद्ध के विरुद्ध अपनी रक्षा के लिए करना पड़ता है। ग्रीन रक्षात्मक युद्ध को अपेक्षाकृत एक कम बुराई के रुप में मानता है। ग्रीन कहता है कि युद्ध चाहे रक्षात्मक हो या आक्रामक युद्ध तो युद्ध ही है। और इसलिए एक बुराई है। ग्रीन की मान्यता है कि युद्ध होने का अर्थ यही है कि राज्य में कहीं न कहीं 'नैतिक दोष' अवश्य है। युद्ध के विरोध में ग्रीन का सर्वोत्कृष्ट तर्क है। ग्रीन कॉष्ट की भाँति शान्तिवादी एवं विश्वबंधुत्व के आदर्श का अनुयायी है।

13.4.7सम्पत्ति पर ग्रीन के विचार

सम्पत्ति के विषय पर ग्रीन न तो व्यक्तिवादी है और न समाजवादी ग्रीन सम्पत्ति का समर्थन इस आधार पर करता है क्योंकि ग्रीन मानता है कि सम्पत्ति व्यक्ति के विकास के लिए अनिवार्य है। ग्रीन सम्पत्ति को परिभाषित करता है

सम्पत्ति उन समस्त साधनों का योग है जो मनुष्य में आत्मानुभूति के सिद्धान्त को स्वतन्त्र विकास और सामान्य हित में योग देने के लिए आवश्यक हैं। स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की मांग करते हुए चिरस्थायी आत्मा ने जिन वस्तुओं को प्राप्त कर लिया है, वह उसी का फल है। इस प्रकार हम देखते है कि ग्रीन व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थक है।

ग्रीन यह स्वीकार करता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति मानव योग्यता की सिद्धि का प्राकृतिक साधन है, स्वतन्त्र जीवन का एक आवश्यक आधार है और ग्रीन की मान्यता है कि यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को सदैव ही सामान्य हित के लिए प्रयुक्त करें। ग्रीन केवल इस बात पर बल देता है कि सम्पत्ति का सम्भावित लक्ष्य सामाजिक हित होना चाहिए। उसका विश्वास था कि सम्पत्ति के माध्यम से वस्तुओं को अपने अधिकार में कर एवं उन्हें मानव की आवश्यकताओं के अनुकूल रुप देकर मनुष्य जहाँ एक ओर अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है वही दूसरी ओर सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान उत्तम मनोभावों को भी व्यक्त कर सकता है। इस प्रकार ग्रीन के सम्पत्ति पर विचारों का अध्ययन करने के बाद हमें ज्ञात होता है कि ग्रीन सम्पत्ति विषयक अपनी धारणा में वास्तव में उदार था।

13.5 हीगल और ग्रीन के विचारों का एक तुलनात्मक अध्ययन

ग्रीन एक ऐसा आदर्शवादी है जो एक ओर हीगल के अनेक आदर्शवादी विचारों को स्वीकार करता है किन्तु दूसरी ओर वह उग्र व्यक्तिवाद का प्रतिपादन करता है। ग्रीन के विचारों में निम्नलिखित हीगलवादी तत्व पाये जाते है।

1.ग्रीन हीगल की 'दैविक आत्मा' अथवा विवेक की इस धारणा को स्वीकार करता है। हीगल की भाँति ग्रीन भी यह मानता है कि सृष्टि में 'ईश्वरीय आत्मा' की लीला है जो अपनी पूर्णता के लक्ष्य की ओर निरन्तर है। हीगल की भाँति ग्रीन भी स्वीकार करता है कि मानवीय समाज की संस्थाएँ उत्तरोत्तर शाश्वत चेतनशीलता को अभिव्यक्ति करती हुई तब तक आगे बढ़ती है जब तक वह चेतना अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेती मनुष्य से कुटुम्ब, कुटुम्ब से समाज और समाज से राज्य वह शाश्वत चेतनशीलता का उत्तरोत्तर विकास है।

2.राज्य की धारणा के सम्बन्ध में भी ग्रीन के विचार हीगलवाद का ही अनुसरण करते है। वह राज्य को कोई आवश्यक बुराई नहीं अपितु व्यक्ति के नैतिक जीवन की पूर्ति करने वाली सस्था मानता है। जिस तरह हीगल राज्य को दैविक विचार मानता है, ग्रीन भी राज्य को ईश्वरीय विचार का प्रकटीकरण कहता है। दैविक संस्था से अलग राज्य समाज की सर्वश्रेष्ठ संस्था है जिससे व्यक्ति के अधिकारों का उदभव होता है, यह विचार दोनों के विचारों से मेल खाता है।

3.स्वतन्त्रता की धारणा के सम्बन्ध में भी ग्रीन हीगल के विचारों से प्रभावित होता है। हीगल के अनुसार, जब व्यक्ति अपना तादातम्य राज्य के कानूनों के साथ कर लेता है, मनमौजी तरीके से व्यवहार न करके विश्वात्मा के प्रतीक राज्य कानूनों का पालन करता है यही सच्ची स्वतन्त्रता है। ग्रीन मानता है कि स्वतन्त्रता नैतिक दृष्टि से करने योग्य कार्यो की सकारात्मक शक्ति है जिसे व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ भोगता है। ग्रीन का विचार भी स्वतन्त्रता 'सामाजिक हित' की तथा व्यक्ति के नैतिक उत्थान की भावना के साथ जुड़ी हुई है ऐसा मानता है।

4.समाज की धारणा में ग्रीन और हीगल के विचारों में समानताएँ पायी जाती है। हीगल की तरह ग्रीन भी समाज की समुदायों का समुदाय मानता है। अनेक समुदायों से समाज बनता है और समाज में भाग लेकर व्यक्ति सामाजिक हित को अपना अनुदान देता है। और स्वंय को वह नैतिक जीवन की अनुभूति करता है। हीगल और ग्रीन के विचारों

गहराई से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ग्रीन और हीगल में विचारों में विश्वात्मा राज्य, स्वतन्त्रता और समाज जैसी धारणाओं के सम्बन्ध में एक समान मान्यताएँ है

13.6 जे. एस. मिल

जान स्टुअर्ट मिल की पहचान ऐसे सिद्धान्तकार के रुप में होती है। जिसने उपयोगितावाद में सुधार करने के प्रयास में उसमें इतना बदलाव ला दिया कि मिल का उपयोगितावाद बेथंम के उपयोगितावाद का समर्थक नहीं बल्कि आलोचक बन जाता है। मिल को बेथंम तथा जे. मिल ने उपयोगितावाद के समर्थक के रुप में तैयार किया। किन्तु धर्म एवं साहित्य के अध्ययन ने मिल को नैतिक भावनाओं की तरफ मोड़ दिया। प्रतिबंधपूर्ण बचपन ने जे0 एस0 मिल को स्वतंत्रता के अकांक्षा की तरफ मोड़ दिया साथ ही अपने व्यक्तिगत जीवन पर लग रहे सामाजिक आक्षेपो ने मिल को इस विचार की तरफ मोड़ा कि सामाजिक रीतिरिवाज एवं जनमत व्यक्तिगत स्वतंत्रता को जितना नुकसान पहुँचाते है उतना तो राज्य के प्रतिबंध भी नहीं पहुँचते।

जे. एस. मिल का जन्म 20 मई 1806 को हुआ था। उसके पिता जेम्स मिल एक प्रसिद्ध इतिहासकार एवं उपयोगितावादी विचारक थे। मिल के पिता ने घर पर ही उनकी शिक्षा का प्रबंध किया उनका मानना था कि बच्चो की यदि प्रतिभावान बनाना है तो उन्हें घर पर ही कठोर और शुष्क वातावरण में पढाया जाना चाहिए। जे. एस. मिल को युवावस्था में फ्रांस भेजा गया जहाँ वह बेनतम के भाई सेमुअल बेंथम के पास रहा। जहाँ पहली बार उसने मुक्त जीवन का अहसास लिया । इंग्लेंड लोटने के बाद उसने बेंथम की 'कानून के सिध्दांत' पढ़ी । इस किताब ने उसके जीवन और मानसिक विकास को नई दिशा दी। मिल ने एक संस्था बनायीं जिसका नाम 'यूटिलिटेरियन सोसायटी' रखा। इस संस्था में इंग्लेंड के विद्वान सामयिक विषयों पर खुलकर बहस करते थे। 17 वर्ष की उम्र में वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क्लर्क की करने लगा। मिल के जीवन में घटी दो घटनाओं ने उसे बदलकर रख दिया । पहली उसे फ्रांस के उपन्यासकार ज्यां फ्रंक्वा मर्मोंतेल की किताब 'संस्मरण' मिली जिसे पढ़ कर उसके जीवन को नया प्रवाह मिला। दूसरा 1830 में मिल की मुलाकात हेरियट टेलर से हुई , जिनके कारण ही मिल के विचारों में मानवीयता की संवेदनशीलता विकसित हुई। बाद में मिल ने हेरियट टेलर से विवाह भी कर लिया। मिल ने अपनी पुस्तक स्वतंत्रता अपनी पत्नी को समर्पित की और लिखा " मेरे विचारों में जो सर्वोत्तम है, वह उसकी प्रेरक है तथा आंशिक रूप में उसकी लेखिका भी" । 1866 में वेस्टमिनिस्टर क्षेत्र से उसे कॉमन सभा का चुनाव लड़ाया गया। उसने संसद में महिला मताधिकार, अल्पमत प्रतिनिधित्व तथा खुले मतदान का प्रबल समर्थन किया। रुढ़िवादी अंग्रेजों को उसके प्रगतिशील विचार सही नहीं लगे और अगले चुनाव में मिल को हार मिली। 1873 में एविगनॉन में उसकी मृत्यु हो गयी।

पुस्तकें

1. सिस्टम ऑफ़ लॉजिक
2. द प्रिंसिपल आफ़ पोलिटिकल इकोनोमी
3. ऑन लिबर्टी

4. कांसीडरेशन ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट
5. यूटिलिटेरियानिज्म
6. थौट्स ऑन पार्लियामेंट्री रिफॉर्म्स
7. दि सब्जेक्शन ऑफ़ वेमैन
8. औटोबायोग्राफी
9. एसेज ऑन रिलिजन

13.6.1 मिल का उपयोगितावाद : बेंथम के उपयोगितावाद में संशोधन

जे.एस. मिल ने राजनीति दर्शन की शिक्षा बेंथम से ली। मिल ने अपना चिंतन बेंथमवादी के रूप में शुरू किया पर बाद में 1826-27 के आस पास उनका बेंथम के उपयोगितावाद से मतभेद होने लगा। इसके बाद मिल ने परम्परावादी उपयोगितावाद में संशोधन करने लगा। उपयोगितावाद पर लागू रहे आक्षेपो का जवाब देने के लिए मिल ने उपयोगितावाद में सुधार लाना जरूरी माना। इसी सुधार को लाने के प्रयास में उसके विचार बेथंम से अलग होने लगते है। जहाँ बेथंम ने यह माना था कि सुखों या दुखों में सिर्फ परिणात्मक फर्क होता है वही मिल ने इनके बीच गुणात्मक अन्तर को भी स्वीकार किया।

मिल का कहना है कि कुछ सुख उत्कृष्ट होते है तथा कुछ निष्कृष्ट एवं सुखों को उससे ऊंचा स्थान दिया। एक सन्तुष्ट सुअर से असन्तुष्ट मनुष्य हर हाल में बेहतर है या एक असन्तुष्ट सुकरात सन्तुष्ट मूर्ख की अपेक्षा बेहतर है। मिल ने यह भी स्वीकार नहीं किया कि हम सिर्फ सुख या दुःख के आधार पर कार्य करते है। इस बिन्दु पर वह ईसाई नैतिकता की अवधारणा को स्वीकार करता है। वह ईसा मसीह की इस युक्ति का उदाहरण देता है कि दूसरों के साथ वही करना चाहिए जो व्यक्ति स्वंय के साथ चाहता है।

मिल ने यह भी कहा कि उत्कृष्ट सुख को प्राप्त करने के लिए उच्च चरित्र का होना जरूरी है। वह बेथंम की तरह इस बिन्दु पर सबको समान नहीं पाता एवं चरित्र विकास के लिए वह स्वतंत्रता को आवश्यक मानता है। एक स्वतंत्र मनुपथ ही चरित्र विकास के द्वारा उच्च चरित्र प्राप्त कर सकता है। इसी कारण मिल ने स्वतंत्रता को अपने आप में एक सुख मान लिया। वह कहता है कि जिसे एक बार स्वतन्त्रता का अनुभव हो जाता है वह किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता का अनुभव हो जाता है वह किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता स्वंय में एक साध्य है एक सुख है।

व्यक्ति सुख एवं दुःख के बीच से सामूहिकता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए बेथंम 4 मान्यताओं की बात करता है।

1- भौतिक मान्यता

2- सामाजिक मान्यता

3- धार्मिक मान्यता

4- राजनीतिक मान्यता

किन्तु जान स्टुअर्ट मिल इन्हे मानता है, एवं कहता है कि व्यक्ति वाह्य प्रतिबंधों के आधार पर कार्य करता है। उचित कार्य करने से व्यक्ति को आन्तरिक उल्लास एवं नहीं करने से आन्तरिक पीड़ा होती है। अपने कार्य में वह आत्मसम्मान की भावना महसूस करता है। उचित कार्य से उसे व्यक्तिगत गरिमा की प्राप्ति होती है।

मिल ने अपनी पुस्तक उपयोगितावादी में उपयोगितावाद के बेथंम के सिध्दांत में दो मुख्य परिवर्तन किया। पहला जहाँ बेथंम का मानना था कि सुख में कोई गुणात्मक अंतर नहीं होता केवल परिमाणात्मक अंतर होता है, वहाँ मिल ने माना की अलग-अलग सुखों में गुणात्मक अंतर अवश्य होता है, और किसी सुख की गुणवत्ता उसके परिणाम से कम महत्वपूर्ण नहीं होती है। व्यक्ति के भौतिक सुख ही ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं होते बल्कि उसकी नैतिक, बौद्धिक और कलात्मक अभिरुचि का विकास भी जरुरी है । दूसरा मिल ने स्वतंत्रता को उपयोगिता का सार-तत्व माना। मिल ने माना की यदि एक बार किसी ने स्वतंत्रता का स्वाद चख लिया है तो वह किसी भी कीमत में उसे छोड़ेगा नहीं।

मिल ने उपयोगितावाद की आधारशील ही बदल दी तथा उसे नैतिक आवरण में रखकर नया रूप दिया। वह बेंथम के उपयोगितावाद से दूर हुआ पर उसने उपयोगितावाद की जो नई संकल्पना पेश की उसमें व्यक्ति केवल अपना सुख चाहने वाला न रहकर दूसरों का सुख चाहने वाला भी नैतिक प्राणी बन पाया।

13.6.2 स्वतंत्रता संबंधी विचार

जे. एस. मिल ने अपनी पुस्तक 'ऑन लिबर्टी' में स्वतंत्रता के समर्थन में लिखा है, इस पुस्तक की तुलना मिल्टन के ऐरियोपेजिटिका ग्रन्थ से की जाती है। मिल की पुस्तक 'ऑन लिबर्टी' को विश्व के राजनीतिक साहित्य की महान कृति माना जाता है। मिल ने माना कि स्वतंत्रता व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिए जरुरी है। व्यक्ति का लक्ष्य अपने व्यक्तित्व का विकास करना होता है और यह तभी संभव है जब उसे स्वतंत्र वातावरण मिल पाए।

स्वतंत्रता का लक्षण-

मिल का मानना है कि व्यक्ति के कार्य दो प्रकार के होते हैं।

1. **आत्मपरक कार्य** – जिन कार्यों से केवल वही प्रभावित होते है जो कार्य कर रहा हो, अन्य किसी पर उसका प्रभाव न पड़ रहा हो।

2. **अन्यपरक कार्य** – जिन कार्यों से समाज में सीधा प्रभाव पड़ रहा हो।

मिल का मानता है की स्व से सम्बंधित कार्यों में व्यक्ति पर कोई रोक नहीं लगायी जानी चाहिए ,व्यक्ति को तब तक स्वतंत्र छोड़ना चाहिए जब तक वह किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता। व्यक्ति के उन अन्य परक कार्यो पर रोक लगायी जनि चाहिए जो किसी को नुकसान पहुचाते हों।

स्वतंत्रता को अपने आप में एक सुख मानने के कारण मिल ने विशेष रुप से इनकी चर्चा की है। वह दो आधारों पर इस स्वतंत्रता को देखता है।

1- विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of Expression)- मिल ने मानव समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देने की बात की। मिल ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का अंकुश लगाने का पक्ष नहीं लिया। मिल का मानना है कि विचार एवं अभिव्यिक्ति के क्षेत्र में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए वह कहता है कि अपने शरीर एवं मस्तिष्क का व्यक्ति स्वयं स्वामी है। मिल कहता है कि अगर सम्पूर्ण मानवता एक व्यक्ति को छोड़कर एक जैसा सोचे तो भी उस अकेले व्यक्ति की बात को नहीं दबाया जा सकता अगर उसकी बात सत्य है तो उसकी बात दबाकर हम सत्य से विमुख हो जाऐगें एवं अगर उसकी बात आंशिक सत्य है तो दोनों विचारों में वाद विवाद होने से सत्य का स्वरुप और निखरेगा सत्य और परिशुद्ध होगा। लेकिन यदि उसकी बात पूर्ण रुप से गलत हो तो भी उसकी बात को नहीं दबाया जाना चाहिए। क्योंकि असत्य के समक्ष सत्य और निखरता है। जहाँ तक कर्म के क्षेत्र में स्वतंत्रता का सवाल है मिल के इस स्तरपरक जिस अर्थ में वृद्धि के द्वारा समय समय पर राज्य को बदला है। वह कहता है कि इसी ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर राज्य व व्यक्ति का सम्बन्ध देखा जा सकता है। इसी ऐतिहासिक अनुभव से राज्य के प्रति मनुष्य में विश्वास पनपता है, एवं यही विश्वास राज्य को चलाता है। मिल का मानना था कि अमूमन समाज परम्परावादी और रुदिवादी होता है और नए विचार सुनना पसंद नहीं करता है।वहीं समाज सुधारक नए विचारों से भरा होता है और समाज में चल रही सभी रूढ़ियों, रिवाजों और परम्पराओं को बदलना चाहता है। इस तरह का बदलाव तभी संभव है जब विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्ति को प्राप्त हो।

2- **कार्य की स्वतंत्रता(Freedom of Action)-** मिल के शब्दों में "विचारों की स्वतंत्रता अपूर्ण है यदि उन विचारों को क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता न हो।" मिल का मानना था कि व्यक्ति के उन कार्यों पर कोई रोक नहीं लगायी जानी चाहिए जो स्व सम्बन्धी कार्य हों। जेसे व्यक्ति का खान-पान ,व्यक्ति मांसाहारी हो या शाकाहारी। पर-सम्बन्धी कार्यों पर राज्य का हस्तक्षेप होना चाहिए जिनसे समाज या अन्य व्यक्ति प्रभावित होते हैं। जैसे- शांति भंग करना, सार्वजानिक स्थान को गन्दा करना। मिल की पुस्तक 'ऑन लिबर्टी' में लिखे स्वतंत्रता के दर्शन ने व्यक्तिवाद के विकास में योगदान दिया।

13.6.3 राज्य के कार्य

उपयोगितावाद में यह माना गया कि चूंकि मनुष्य के सूखों में वृद्धि करना ही सामाजिक उद्देश्य है अतः राज्य को वही कार्य करना चाहिए जो मनुष्य के सुखों को बढ़ाए। मिल भी राज्य के सकारात्मक कल्याणकारी कार्य का समर्थन करता है किन्तु वह इसके लिए अलग आधार लेता है वह कहता है कि एक उच्च चरित्र वाला ही उत्कृष्ट सुख का अनुभव कर सकता है अतः राज्य का कार्य है उन सभी कार्यो को करना जो मानव के चरित्र विकास की संभावनाओं को बढ़ाए। तात्कालिक ब्रिटिश समाज को देखकर मिल यह पाता है कि भूमि उद्योग एवं ज्ञान पर कुछ लोगों के नियन्त्रण ने बाकी लोगों को सम्मान पूर्ण जीवन से वंचित कर दिया है।

मिल का कहना है कि इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए भूमि का परिसीमन होना चाहिए एवं इसे कर के दायरे में लाया जाना चाहिए। उद्योग के क्षेत्र में वह न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने बालश्रम पर प्रतिबन्ध लगाने एवं काम के घण्टों को कम किए जाने की वकालत करना है। चरित्र विकास के लिए ज्ञान को आवश्यक मानते हुए मिल राज्य द्वारा निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने की भी बात करता है। सम्पत्ति के अधिकार को भी सीमित करते हुए मिल उत्तराधिकार के नियमन इस पर करारोपण एवं आरोही कर व्यवस्था की बात करता है।

राज्य द्वारा इन्ही प्रकार के कार्यो की बात करके जान स्टुअर्ट मिल ने एक निरकुंश एवं निष्पक्ष राज्य को मानव हित के लिए प्रतिबद्ध राज्य में बदल डाला। यही वे कारण है जिन्होने आगे चलकर कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को जन्म दिया हाँलाकि राज्यद्वारा कल्याणकारी कार्यो के सम्पादन को स्वीकार करने वाला पहला सिद्धान्तकार बेन्थम था किन्तु मिल ने ही इसे व्यवस्थित एवं प्रचारित किया।

13.6.4 मिल की प्रतिनिधि शासन सम्बन्धी अवधारणा

मिल अपनी पुस्तक 'प्रतिनिधि शासन : विचार और विवेचन' (Consideration on Representative Government) में लोकतंत्रात्मक शासन को संदेह की दृष्टी से देखता है पर वह एक लोकतान्त्रिक विचारक है। वह मानता है कि लोकतंत्र में ही व्यक्तियों का बौध्दिक एवं नैतिक विकास संभव है। मिल का मानना है कि लोकतंत्र सर्वोत्तम शासन प्रणाली है पर इसमें भी कमियां आ सकती हैं। मिल का मानना था कि अब राज्यों का आकार और जनसँख्या बढ़ रही है ऐसे में प्रतिनिधि लोकतंत्र को अपनाकर ही लोकतंत्रीय शासन लाया जा सकता है। मिल ने लोकतंत्र पर लिखी गयी अपनी किताब को भी 'प्रतिनिधि शासन' नाम दिया।

प्रतिनिधि शासन के विषय में मिल ने लिखा है "प्रतिनिधि शासन वह शासन है जिसमें सम्पूर्ण जन समुदाय या उसका अधिकांश भाग अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा अंतिम नियंत्रण शक्ति का प्रयोग करता है।" प्रतिनिधि शासन के सिध्दांत को मानते हुए मिल मताधिकार के क्रमिक विस्तार की योजना पेश करता है। उसने तर्क दिया की पहले स्थानीय मामलों में मत देने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

बेथंम के इस बात को स्वीकार नहीं किया कि सबको समान मताधिकार मिलना चाहिए। मिल का कहना है कि प्रत्येक को समान मानना अनूठे लोकतंत्र का आधार है सच्चे लोकतंत्र में योग्यता को उचित स्थान मिलना चाहिए। वह ऐसे लोगों को मताधिकार देने का विरोध करता है जो लिखना पढ़ना एवं सामान्य गणित भी नहीं जानते हो। मिल ने बहुल मतदान का पक्ष लिया ,जिनके लिए वह मताधिकार स्वीकार करता है उन्हे भी वह बराबर नहीं मानता अधिक योग्य व्यक्ति को वह अधिक मत देता है। उसका मानना था की सच्चे लोकतंत्र में योग्यता के आधार पर मतदान होना चाहिए । उसके अनुसार अशिक्षित व्यक्ति की तुलना में शिक्षित व्यक्ति को अधिक संख्या (बहुल मतदान) में मत का अधिकार होना चाहिए। मिल सम्पति रखने व कर देने वाले व्यक्तियों को मतदान का अधिकार देना चाहता था। तात्कालिक राजनीतिक व्यवस्था में अन्य सुधारों की मांग करते हुए मिल महिला मताधिकार का समर्थन करता है एवं अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए द्वितीय सदन अथवा उच्च सदन में अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व की बात करता है। मिल मतदान व्यवस्था के लिए अनुपातिक प्रतिनिधित्व को मान्यता देता है। इस आधार पर उसने हेयर प्रणाली का सर्मथन किया है। साथ ही मिल खुले मतदान का समर्थक है वह कहता है कि गुप्त मतदान में निन्दा का डर नहीं रहने से स्वार्थ पूर्ण मतदान की संभावना रहती है।

सरकार में मिल बहुमत के साथ साथ कार्यकुशलता का भी समावेश करना चाहता है। वह कहता है कि ससंद वाद विवाद का क्षेत्र होना चाहिए किन्तु वास्तविक या रोजमर्रा का प्रशासन नौकरशाही के जिम्मे होना चाहिए जो मन्त्रियों के नियंत्रण में कार्य करे। इसी प्रकार के शासन में बहुमत एवं कार्य कुशलता दोनों का समावेश हो सकेगा।

13.6.5 मिल अनिच्छुक लोकतन्त्रवादी

जे. एस. मिल के लोकतांत्रिक होने के सवाल पर लोगों ने विवाद उठाया। बेपर के अनुसार मिल अनिच्छुक लोकतन्त्रवादी है। इस सन्दर्भ में यह देखते है कि लोकतन्त्र को स्वीकार कर व्यक्ति के लिए मत प्रयोग एवं शासन

में भागीदारी को उसके चरित्र विकास में आवश्यक बताकर मिल अपने लोकतन्त्रवादी होने का सबूत देता है। वह कहता है कि मत प्रयोग करना मनुष्य को जिम्मेदार बनाता है, यह इसका शैक्षणिक मुदा है। राजनीतिक प्राणी के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार भौतिक प्राणियों के लिए श्वास लेना। साथ ही मिल स्वतंत्रता का पूर्ण समर्थक है वह राज्य के कार्यो में जन लाभ का आधार दिखाकर भूमि के परिसीमन एवं आरोही कर व्याख्या को मान्यता देकर भी लोकतन्त्रवादी होने का सबूत देता है। महिला मताधिकार का समर्थक होना भी मिल के लोकतान्त्रिक होने का सबूत है।

किन्तु कुछ ऐसे बिन्दु भी है जो मिल के लोकतंत्र समर्थक होने पर संदेह उठाते है, उसके द्वारा भारित मतदान का समर्थन किया जाना एवं पिछड़े राष्ट्रों के लिए लोकतंत्र को सही नहीं ठहराना इन बिन्दुओं में देखे जा सकते है। मिल का कहना है कि जो समाज समान वाद विवाद के आधार पर एक उचित बौद्धिक स्तर प्राप्त कर ले सिर्फ उन्हें ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। मिल मताधिकार के लिए सम्पत्ति को भी एक आधार मान लेता है मिल का कहना है कि जो स्वंय कर नहीं देते हो उन्हे अपने मत द्वारा दूसरों के पैसे से खिलवाड़ करने का हक नहीं दिया जाना चाहिए उपयुक्त समस्त तथ्य मिल के लोकतान्त्रिक होने पर संदेह व्यक्त करते है। किन्तु मिल के विचारों के मूल्यांकन का आधार 19 वीं सदी के मध्य की स्थितियां ही है। लोकतन्त्र की 20 वीं एवं 21 वीं सदी की परिकल्पना को हम मिल पर नहीं लाद सकते कल्याणकारी राज्य का आधार देकर एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मान्यता देकर मिल लोकतन्त्रवादी बन जाता है।

1-मनुष्य के कार्यो को स्वपरक एवं अन्य परक कार्यो में विभाजित नहीं किया जा सकता मिल द्वारा ऐसा किया जाना सही नहीं माना जा सकता।

2-यह मान लेना कि एक व्यक्ति के इच्छा को व्यक्ति से ज्यादा भी कोई जानता है या जान सकता है एक गलत अवधारणा है। स्वतन्त्रता की यह अवधारणा बाध्यता की तरफ ले जाती है।

3-मिल अल्पसंख्यक समूह के लिए स्वतन्त्रता का पूर्ण समर्थक है, न सिर्फ मिल पूरी मानवता के समक्ष एक व्यक्ति की आवाज को अभिव्यक्ति देता है बल्कि अल्प संख्यक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए इन्हे उच्च सदन में स्थान भी देता है।

4-मिल द्वारा उपयोगितावाद में लाया गया सुधार चाहे कितना ही सही क्यों न हो इसने उपयोगितावाद के स्वरुप को ही बदल डाला उपयोगिता वाद का समर्थन करने पर अपने प्रयोग में उपयोगितावाद ऐसी आलोचना कर डाली जो के आलोचको ने भी नहीं कि थी।

13.7 मिल के महिलाओं संबधी विचार

महिलाओं पर मिल के विचार की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति उनकी पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ़ वीमेन' (1869) में दिखाई देती है। 'सब्जेक्शन ऑफ़ वीमेन' में जॉन स्टुअर्ट मिल को अकसर समाज में महिलाओं के लिए समानता की वकालत करने वाले प्रगतिशील सिद्धांत का के रूप में देखा जा सकता है। मिल ने समाज में महिलाओं की स्थितियों की तुलना विशेष रूप से 19वीं शताब्दी में वैवाहिक संबंध में उन दसों की स्थिति से की जो उनके स्वामी की इच्छा के अधीन थे। इस अर्थ में मिल का तर्क है कि विवाह गुलामी के समान है। मिल का तर्क है कि महिलाओं को स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करने की स्वतंत्रता देने से और समाज में समान स्थान रखने की स्वतंत्रता की अनुमति प्रदान करने से कई लाभ होंगे, जैसे वैवाहिक संबंधों में महिलाओं के लिए बेहतर स्थिति होगी।

नारीवादी सिद्धांत के समर्थक आज जो तर्क दे रहे हैं उनकी सबसे पहले पहल मिल ने अपनी चर्चित कृति 'सब्जेक्शन ऑफ विमैन' (स्त्रियों की पराधीनता) के अंतर्गत यह मुद्दा उठाया। मिल ने प्रश्न किया कि स्त्री जाति को पुरुष जाति के पराधीनता में क्यों रखा गया? मिल ने प्रश्न उठाया कि यह पराधीनता चाहे कानून के माध्यम से स्थापित की गई हो या रीति-रिवाज के माध्यम से इसे उपयोगितावाद के आधार पर कहां तक उचित माना जा सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में मिल ने मजबूती के साथ यह मान्यता रखी की स्त्रियों की पराधीनता को किसी भी आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है। यह सच है कि जीव वैज्ञानिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष की बनावट में अंतर पाया जाता है और बहुत छोटे बच्चों की देखरेख करना भी स्त्रियों की स्वाभाविक गुण है, परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उन्हें मताधिकार से वंचित रखा जाना चाहिए ,उन्हें उच्च व्यवसाय से बाहर रखा जाना चाहिए या उन्हें उन्नति के उन सब अवसरों से दूर रखना चाहिए, जो ऐतिहासिक दृष्टि से पुरुषों को सुलभ रहे हैं। मिल ने स्त्री पुरुष की समानता के पक्ष में जो तर्क दिए हैं वह बहुत महत्वपूर्ण है और लिबर्टी में मिल ने अपनी आत्मकथा के अंतर्गत यह भी लिखा है कि यह पुस्तक उनकी पत्नी हैरियट टैलर के सहयोग से लिखी गयी और यह उन दोनों की संयुक्त रचना थी। इस तरह मिल को अपने व्यक्तिगत अनुभव से स्त्रियों की विलक्षण प्रतिभा का प्रमाण मिल गया था। इस अनुभव से प्रेरित होकर वह स्त्रियों के अधिकार का प्रबल समर्थक बन गया था। मिल ने तर्क दिया था कि पुरुष के प्रति स्त्रियों की अधीनता न केवल अपने आप में अनुचित है बल्कि यह मानव जाति की उन्नति के मार्ग में भी बाधा पैदा करेगी। अतः सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए स्त्रियों की पराधीनता को समाप्त करके स्त्री पुरुष की पूर्ण समानता स्थापित करनी चाहिए। ऐसा ना हो कि एक पक्ष को शक्ति एवं विशेषाधिकार प्राप्त हो और दूसरे पक्ष को आयोग बना दिया जाए मिल ने लिखा है कि स्त्रियों की पराधीनता पूरे विश्व में ऐसी हो चुकी है कि जब कहीं स्त्री के वर्चस्व का कोई संकेत मिलता है तो वह अस्वाभाविक सा लगता है, जैसे दुनिया के अन्य हिस्सों में जब लोगों को यह बताया जाता है कि इंग्लैंड की में महारानी का शासन है तो लोगों अत्यंत आश्चर्य होता है इधर इंग्लैंड के लोगों को महारानी के शासन में तो कोई विचित्र बात दिखाई नहीं देता परंतु वह भी यह नहीं सोच पाते कि महिलाएं सैनिक या संसद सदस्य भी हो सकती हैं दूसरी तरफ यूनान लोगों को यह विचार उतना अचंभित नहीं करता ,क्योंकि स्पार्टा में स्त्रियों को कुशल सैनिक बनने की शिक्षा दी जाती थी स्पार्टा की स्त्रियों के उदाहरण से प्रेरित होकर ही प्लेटो ने स्त्री पुरुष की समान क्षमताओं में विश्वास हो गया था और उसने अपने चिंतन के अंतर्गत स्त्रियों और पुरुषों की सामाजिक और राजनीतिक समानता का समर्थन किया था इन सब तर्कों के आधार पर मिल ने तत्कालीन परिस्थितियों में स्त्रियों को मताधिकार प्रदान करने की प्रस्ताव की शानदार पैरवी की।

13.8 सारांश

मिल ने बेंथम के उपयोगितावादी सिद्धांत में आमूलचूल परिवर्तन किया। जिसमें उन्होंने बेंथम के मात्रात्मक सुख के सिद्धांत का खंडन किया और बताया की मानव जीवन में महत्व मात्रात्मक सुख का नहीं है वरन गुणात्मक सुख का है। स्वतंत्रता को अपने आप में एक सुख मानने के कारण मिल ने विशेष रुप से इनकी चर्चा की है। उसने स्पष्ट किया है किस प्रकार से एक लोकतांत्रिक देश में स्वतंत्रता के अधिकार महत्वपूर्ण है। इसने स्वतंत्रता पर इतना बल दिया है कि मिल को उसके लिए विशेष रूप से जाना जाता है। मिल ने महिला अधिकारों का भी पुरजोर समर्थन किया।

अभ्यास प्रश्न

1. कौन मिल को अनिच्छुक लोकतन्त्रवादी मानता है ?

2. Consideration on Representative Government के लेखक कौन है ?

3 किसने यह माना कि सुखों या दुखों में सिर्फ परिणात्मक फर्क होता है

4. किसने यह माना कि सुखों या दुखों के बीच गुणात्मक अन्तर होता है।

5.सामान्य इच्छा की धारणा के सम्बन्ध में ग्रीन किससे से बहुत प्रभावित है

6. कौन मानता है कि राज्य व्यक्ति की सदइच्छा पर आधारित है शक्ति पर नहीं ?

7.किसने राज्य के कार्य नकारात्मक और सकारात्मक दो वर्गों में विभाजित किया है ?

8. ग्रीन व्यक्तिगत संपत्ति का समर्थक है। सत्य/असत्य

9. ग्रीन के विचारों का सार प्रस्तुत करते हुए किसने लिखा है "मानव चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता में अधिकार निहित हैं तथा अधिकार राज्य की मांग करते हैं"

10. राज्य का कार्य शुभ जीवन के मार्ग की बाधाओं को बाधा पहुँचाना हैं यह कथन है

11. ग्रीन ने तीन बड़ी बुराइयों के उन्मूलन पर बल दिया जिसमें शामिल है ?

13.9 शब्दावली

उदारवादी- उदारवादी राजनीति का वह सिद्धांत है जो सामंतवाद के पतन के बाद राजनीति को बाजार अर्थव्यवस्था के अनुरूप मोड़ देने के लिए अस्तित्व में आया

प्रतिनिधि सरकार – ऐसी सरकार जो जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है. जिसके अस्तित्व का आधार जनता की सहमती होता है.

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बेपर, 2. मिल, 3. बेथंम, 4. मिल, 5. रूसो, 6.ग्रीन, 7.ग्रीन, 8.सत्य, 9. बार्कर, 10. टी.एच. ग्रीन, 11. अज्ञानता, गरीबी और नशाखोरी

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

गाबा ओ.पी., राजनीतिक-चिंतन की रुपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, 2017

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. ग्रीन के राजनीतिक विचारों पर विस्तार से चर्चा कीजिये।
2. मिल के उपयोगितावादी सिध्दांत की विवेचना कीजिये।
3. मिल के स्वतंत्रता व महिला अधिकार सम्बन्धी विचारों की विस्तार से चर्चा कीजिये।

इकाई 14 : कार्ल मार्क्स

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 जीवन परिचय
14.4 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
14.5 ऐतिहासिक भौतिकवाद
14.6 वर्ग संघर्ष
14.7 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
14.8 युवा मार्क्स
14.9 सारांश
14.10 शब्दावली
14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.13 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.14 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

मार्क्सवाद का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के बीच में हुआ जिस समय उदारवाद उत्कर्ष में था और पुच्वाद स्थापित हो चुका था औद्योगिक विकास के कारण समाज में जो संपत्ति पैदा हुई थी, वह इने-गिने लोगों के हाथों में थी जिससे कामगार वर्ग का शोषण हो रहा था। उदारवाद ने जो मानव कल्याण व विकास की आशा दिखाई थी वो पूंजीवाद ने धूमिल कर दी। ऐसे समय में मार्क्स ने इस समस्या को समझने व सुलझाने की कोशिश की और मार्क्सवाद का आरम्भ हुआ। मार्क्सवाद के प्रमुख प्रवर्तक कार्ल मार्क्स थे और उनके साथी फेड्रिक एंगेल्स, लेनिन, माओ-त्से- तुंग आदि ने भी मार्क्सवाद के विकास में अपना योगदान दिया।

इस इकाई में हम मुख्यत: मार्क्स के राजनीतिक विचारों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसमें हम द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत का भी अध्ययन करेंगे, जिसमें यह देखेंगे कि किस तरह से समाज के विकास का आधार भौतिक शक्तिया है ।जिसमें उत्पादन संरचना ऐसी है कि उत्पादन के साधनों पर कुछ लोंगो का स्वामित्व स्थापित हो जाता है। जिससे समाज में वर्ग विभाजन स्पष्ट हो जाता है । इसी पूजीवादी व्यस्था में ही इसके विनाश के बीज निहित होते है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम मार्क्स के --

1. राजनीतिक विचारों के सम्बन्ध में विस्तार से जान सकेंगे ।

2. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत को समझ सकेंगे ।

3. ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को समझ सकेंगे ।

4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत और वर्ग संघर्ष के बारे में जान सकेंगे ।

5. यह भी जान सकेंगे कि वे कौन से कारक है जो अंततः सर्वाहार वर्ग को संगठित होकर क्रांति के लिए अग्रसर करते हैं ।

14.3 जीवन परिचय

कार्ल मार्क्स एक प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक थे जिसने समाज विज्ञान में आर्थिक व्याख्या के तत्व को शामिल कराया। राजनीति विज्ञान में मार्क्स साम्यवादी विचारधारा को लाया तथा सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना के लिए उसने क्रांति का समर्थन किया। मार्क्स का जन्म 1818 में पश्चमी प्रशा के एक यहूदी परिवार में हुआ। बाद में परिवार ने इसाई धर्म को अपना लिया था। 1830 से1835 तक मार्क्स की पढाई त्रियेर के माध्यमिक विद्यालय में हुई। यहाँ पर इन्होने एक निबंध " व्यवसाय के चयन पर एक नवयुवक के विचार" लिखा। यह निबंध उनकी सोच, प्रतिभा, और भावी आस्थाओं को दिखता है। इस निबंध में उन्होंने लिखा की ऐसा व्यवसाय चुना जाना चाहिए जिसके जरिये मानव जाति का भी भला किया जा सकता हो। 1835 में मार्क्स ने विधि की पढ़ाई करने बॉन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। उनके पिता उन्हें वकील बनाना चाहते थे पर कानून की पढाई में उनका मन नहीं लगा और वह दूसरे विषयों की किताबें पढ़ा करते थे। इसी दौरान से मार्क्स की सगाई हुई। एक साल तक बॉन में पढाई करने के बाद 1936 में वह बर्लिन पहुँच गया जहाँ पहुँचकर वह जी- जान से पढने में लगे रहे, साथ ही कला और साहित्य का अध्ययन और अंग्रेजी और इटेलियन भाषा भी करते रहे।

मार्क्स के सम्बन्ध में यह खास बात थी कि पढ़ी हुई किताबों के महत्वपूर्ण उद्ध्वरण व सारांश वह हमेशा लिखते थे।1838 में मार्क्स के पिता की मृत्यु हो गयी पर उस समय भी मार्क्स ने अपनी पढाई जारी रखी और प्राचीन यूनानी दर्शन को पढ़ा। डाक्टरेट के शोध प्रबंध के लिए उनका विषय " डेमोक्राइटस और एपिक्यूरस के प्राकृति दर्शनों में भेद। शोध प्रबंध के मूल्याङ्कन हेतु येना विश्वविद्यालय भेजा और अप्रैल 1841 में दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि पाई। 1842 से मार्क्स ने राइन समाचार पत्र में लगातार लिखना शुरू किया जो पाठकों को पसंद भी आया और अख़बार को एक नई पहचान भी मिली। 1842 मार्क्स को इस अखबार का संपादक बना दिया गया। 1843 में सरकार ने अखबार पर कड़ी पाबंदियां लगा दी अंततः मार्क्स को अख़बार छोड़ना पड़ा। 1843 में जेनी से मार्क्स का विवाह हुआ और इन्हीं दिनों पेरिस से निकले जानेवाले 'जर्मन-फ्रांस वार्षिकी'के संपादन का प्रस्ताव मार्क्स को मिला। इस प्रस्ताव को मार्क्स ने स्वीकार किया और जेनी के साथ पेरिस चले गये। पेरिस में मार्क्स की मुलाकात रुसी नेता मिखाइल, बाकुनिन, वसीली आदि से हुई। युही उसने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। 1844 में मार्क्स का परिचय फेडरिक एंगेल से हुआ और दोनों में दोस्ती हो गयी। अब मार्क्स पेरिस से जर्मन भाषा में निकलने वाले समाचार-पत्र 'आगे बढ़ो' पर ज्यादा ध्यान देने लगे। प्रशा सरकार के दबाव पर फ्रांस सरकार ने मार्क्स को पेरिस से निकाल दिया। अब मार्क्स ने बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्ज में शरण ली। इस समय एंगेल ने मार्क्स की बहुत मदद की एंगेल के साथ मिलकर उन्होंने अपनी पुस्तक जर्मन विचारधारा लिखी । मार्क्स को ऐंजल्स के साथ मिलकर साम्यवादियों के लिए घोषणापत्र लिखने का कार्य दिया गया तथा इन्होने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (Communist Manifesto) की रचना की। यही पुस्तक मार्क्स की ख्याति का आधार बनी। 1881 उनकी पत्नी जेनी की मौत हो गयी और दो साल बाद फेफड़ों की बीमारी के चलते 14 मार्च 1883 में लंदन में मार्क्स की मृत्यु हो गई। उन्हें उनकी पत्नी की कब्र के पास दफनाया गया यह लन्दन की हाईगेट कब्रिस्तान थी जहाँ उन लोगों को दफनाया जाता था जिन्हें चर्च और सरकार ने बहिष्कृत किया होता था । एंगेल ने मार्क्स की मौत को सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का नुकसान बताया।

14.4 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

द्वंदात्मक भौतिकवाद का सिध्दांत मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है । यह सिध्दांत भौतिकवाद की मान्यताओं को द्वंदात्मक पद्धतियों के साथ मिलकर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या देने का प्रयास करता है। दर्शनशास्त्र के अंतर्गत जब प्रश्न उठता है कि सृष्टी का सार-तत्व क्या है? तो आध्यात्मवाद के अनुसार चेतना, विचार सृष्टी का सार-तत्व है वहीँ भौतिकवाद के अनुसार सृष्टी का सार तत्व भौतिक या जड़ पदार्थ है। हीगल ने आध्यात्मवाद को अपनाया और मार्क्स ने भौतिकवाद को अपनाया। यह भी कहा जा सकता है कि हीगल के द्वंदात्मक पध्दति में मार्क्स ने भौतिकवाद को मिलकर समाज में हुए बदलाव की व्याख्या देने का प्रयास किया। भौतिकवाद को हम दो प्राचीन यूनानी विचारकों डेमोक्रिट्स और एपीक्यूरस के चिंतन में देख सकते । मार्क्स ने द्वंद्ववाद का दृष्टिकोण हीगल से से ग्रहण किया है। हेगल का मानना था की चिंतन की प्रक्रिया में निष्कर्ष तक पहुचने के लिए सबसे पहले दो परस्पर विरोधी विचार सामने आते है। इनके आपसी टकराव से कुछ असत्य अंश नष्ट हो जाते है और नया विचार अस्तित्व में आता है जो सत्य के निकट होता है। यह प्रक्रिया दोहरे जाती है और अंततः परम सत्य प्राप्त होता है। द्वंद्ववादी प्रक्रिया में यह माना जाता है कि अतं र्विरोध ही परिवर्तन का मूल कारण है। मार्क्स इस विचार को स्वीकार कर कहता है कि संघर्ष सभी परिवर्तनों के मूल में है। दूसरी और भौतिकवाद कहता है कि हमारे विचार भौतिक परिस्थितियों से निर्धारित होते है। मार्क्स इन दोनों विचारों अर्थात द्वन्द्ववाद एंव भौतिकवाद को मिला देता है। किन्तु इस परिवर्तन की पद्धति द्वन्द्वात्मक होती है। किसी भी समाज में भौतिकता आर्थिक ढ़ॉचे में निहित होती है जिसका निर्माण मनुष्य अपनी भौतिक जरूरतों की पूर्ति के लिए करता है। मनुष्य का उद्देश्य अपने भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है एवं इन्ही आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए समाज की आर्थिक प्रक्रिया समाज का आधारभूत ढांचा बनाती है। मार्क्स कहता है कि प्रत्येक सामाजिक संरचना में दो ढाँचे निहित होते है आधारभूत ढाँचा एवं ऊपरी ढाँचा। आधार का निर्माण आर्थिक प्रक्रिया से होता है एवं राजनैतिक विधिक वैचारिक एवं दार्शनिक व्यवस्थाएं ऊपरी ढाँचे में निहित होती है। भौतिकवादी दृष्टिकोण के आधार पर मार्क्स कहता है कि चूंकि भौतिकता आर्थिक प्रक्रिया में निहित होती है इसलिए आर्थिक प्रक्रिया का बदलाव ही सामाजिक बदलाव को निर्धारित करता है। एक समाज कि विचारधारा धर्म, राजनीति आदि वैसी ही होती है जैसी उस समाज की आर्थिक प्रक्रिया होती है। दूसरे शब्दों में जैसी उस एसमाज की उत्पादन रीति होती है वैसी ही समाज होता है। इन्हीं सन्दर्भो में मार्क्स ने कहा है कि राज्य की जड़ राजनीति में निहित न होकर आर्थिक प्रक्रिया में निहित होती है। हीगल के द्वन्द्वात्मक आदर्शवाद को भौतिकवादी आधार से जोड़ देने के कारण ही मार्क्स ने कहा कि हीगल का द्वंदवाद सर के बल खड़ा था मैने उसे पॉव पर खड़ा कर दिया। यहाँ सर का तात्पर्य चेतना से एवं पैर का तात्पर्य भौतिकता से है।

समाज की आर्थिक प्रक्रिया का निर्धारण उत्पादन रीति से होता है। मार्क्स का कहना है कि उत्पादन रीति में होने वाला हर बदलाव समाज को विकास की ओर ले जाता है। समाज विकास के विभिन्न चरणों में आने वाले पड़ाव एक निश्चित उत्पादन रीति द्वारा ही निर्धारित होते है। मार्क्स कहता है कि हर आर्थिक सामाजिक संरचना एक निश्चित उत्पादन रीति पर आधारित होती है। यदि सामंतवाद कृषक उत्पादन रीति पर आधारित था, तो पूंजीवाद औद्योगिक उत्पादन रीति पर आधारित होती है। प्रत्येक उत्पादन रीति के दो मार्ग होते है- उत्पादन शक्ति तथा उत्पादन सम्बन्ध उत्पादन शक्ति के भी दो भाग होते है- उत्पादन के साधन तथा मानव शक्ति। उत्पादन के साधन के भी दो भाग होते है- श्रम का साधन तथा श्रम की वस्तु। श्रम की वस्तु वह है जिस पर श्रम आरोपित होता है तथा श्रम का साधन वह है जिसकी सहायता से हम श्रम आरोपित करते है। यदि इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उदाहरणों से स्पष्ट किया जाये तो हम देखते है कि सामन्तवादी आर्थिक सामाजिक संरचना में कृषक उत्पादन पद्धति निहित होती है। यहाँ उत्पादन सम्बन्ध सामान्तों व कृषकों के बीच का सम्बन्ध है। मानव शक्ति का तात्पर्य कृषकों की उत्पादन शक्ति है। श्रम की वस्तु भूमि

है तथा श्रम का साधन हल है। मार्क्स कहता है कि इसी आर्थिक प्रक्रिया के बदलाव से समाज आता है। आर्थिक प्रक्रिया का बदलाव अन्तर्विरोध के कारण है।

यह अन्तर्विराध उत्पादन शक्ति एवं उत्पादन सम्बन्ध के बीच होता है। उत्पादन शक्तियाँ विकसित होती रहती है पर उत्पादन सम्बन्ध नहीं बदलते, यही इस अन्तर्विराध का कारण है। उत्पादन सम्बन्ध का उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण होता है। उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण दो प्रकार से सम्भव है- निजी अथवा सामूहिक निजी नियन्त्रण की स्थिति में उत्पादन सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित होते है। मार्क्स कहता है कि हर वर्ग विभाजित समाज में दो मूल वर्ग होते है एक वह जिसका उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण होता है दूसरा वह जिसका उत्पादन के साधनों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। इन वर्ग विभाजित समाजों में उत्पादन सम्बन्ध वर्ग हित में होते है। अर्थात इनमें उस वर्ग का हित होता है जिसका उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण होता है यह वर्ग उत्पादन सम्बन्ध को नहीं बदलने देना चाहता है। मार्क्स की परिकल्पना कहती है कि उत्पादक शक्तियों का विकास निरन्तर होता रहता है जबकि उत्पादन सम्बन्ध नहीं बदलते। उत्पादक शक्ति का हर बदलाव उत्पादन सम्बन्धों में बदलाव की अपेक्षा करता है, परन्तु जब उत्पादन सम्बन्ध नहीं बदलते तो उत्पादक शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों में तनाव बनने लगता है एवं उत्पादक शक्तियों का विकास अवरूद्ध होने लगता है।

परन्तु चुँकि उत्पादन शक्तियों का विकास होना ही है तो एक निश्चित अवस्था के बाद जब उत्पादक शक्ति और विकसित नहीं हो सकती, क्रांन्ति होती है तथा उत्पादक पद्धति बदल जाती है। इस नई उत्पादन पद्धति अथवा उत्पादन रीति में नये सम्बन्ध होते है और इन नये सम्बन्धों के तहत उत्पादक शक्तियों का विकास होने लगता है। लेकिन अगर उत्पादन सम्बन्ध अभी भी वर्ग हित में हो तो उत्पादक शक्तियों का विकास फिर अवरूद्ध होने लगता है और नए सिरे से क्रांन्ति होती है, नई उत्पादन रीति बनती है एवं उत्पादक शक्तियाँ बढ़ती रहती है। बदलाव की यह प्रक्रिया इन्हीं अन्तर्विरोधी के फलस्वरूप आगें बढ़ती जाती है। तबतक जब तक कि उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व स्थापित न हो जाए वर्ग विभाजन समाप्त न हो जाए और उत्पादक शक्तियों के विकास पर कोई प्रतिबन्ध न रहे। बदलाव की इस पद्धति में अन्तर्विरोधी में सामंजस्य एवं नए अन्तर्विरोधों का विकास अन्तर्निहित है। उत्पादन रीति में आने वाला वदलाव अगर वाद है तो उत्पादक शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों के बीच का तनाव प्रतिवाद है, नई आर्थिक सामाजिक संरचना का निर्माण संवाद है।

14.5 ऐतिहासिक भौतिकवाद/ इतिहास की आर्थिक /भौतिकवादी व्याख्या

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की इसी पद्धति को जब मार्क्स ने इतिहास की व्याख्या के लिए प्रयोग किया तो ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त सामने आया। इस सिध्दांत के जरिये मार्क्स ने यह बताने की कोशिश की कि सामाजिक विकास कोई सीधी सरल रेखा की तरह नहीं है न इ ईश्वरी। समाज की प्रगति द्वंदात्मक प्रणाली द्वारा होती है और विकास की प्रक्रिया एवं उसकी अंतिम दिशा को निर्धारित करने वाले आर्थिक तत्व होते है। उत्पादन की शक्तियों के विकास के फलस्वरूप सामाजिक जीवन की एक व्यवस्था में से दूसरी उच्चतर व्यवस्था का विकास होता है। उत्पादन प्रणाली में जैसे- जैसे परिवर्तन होता है वैसे-वैसे मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध भी बदल जाते हैं। जब उत्पादन हाथ की चक्की से हुआ तो सामंत अस्तित्व में आये और जब भाप की चक्की से हुआ तो पूंजीपति आये। मार्क्स के आनुसार " ऐतिहासिक क्रम की प्रत्येक अवस्था चाहे वह कितनी ही ख़राब क्यों न हो पिचली अवस्था से बेहतर होती है क्योंकि वह विकास की चरम परिवर्तन के निकट होती है। ऐतिहासिक भौतिकवाद वस्तुतः इतिहास की

भौतिकवादी व्याख्या का प्रयास है। मार्क्स कहता है कि इतिहास भौतिक आधारों और मूलतः उत्पादन रीति में आने वाले परिवर्तन से निर्धारित होता है। इतिहास का यह विकास एक निश्चित रेखा पर समान गति से न हो कर विभिन्न चरणों मे होता है। प्रत्येक चरण एक निश्चित सामाजिक आर्थिक संरचना से बनता है जिसका एक निश्चित उत्पादन रीति होती है। मार्क्स के अनुसार इतिहास में ऐसे पाँच चरण आते है। इनमें से चार चरणों से हम गुजर चुके है एवं पॉचवा भविष्य में सामने आएगा। प्रथम चार चरण

1. आदिम साम्यवाद

2. दासमूलक समाज

3.सामन्तवाद एवं

4. पूँजीवाद से बनते है।

पाँचवाँ चरण साम्यवाद का होगा किन्तु उसके पहले समाजवादी का एक मध्यवर्ती चरण आएगा जो पूँजीवाद से साम्यवाद में संक्रमण काल के दौर में दिखेगा।

1. आदिम साम्यवाद- प्रथम चरण जिसे मार्क्स आदिम साम्यवाद कहते है। एक वर्ग विहीन एवं राज्य विहीन स्थिति थी। उत्पादक शक्तियों का विकास काफी कम हुआ था, जिसके कारण उत्पादन, उपभोग से कम था। जो भी उत्पादित होता था वह उपभोग में आ जाता था, जिसके कारण किसी अधिशेष की उपस्थिति नहीं थी। अधिशेष न होने से निजी सम्पत्ति की अवधारणा भी नहीं थी। समाज में समानता थी एवं वर्ग का अस्तित्व नहीं था। वर्ग न होने से वर्ग शोषण के उपकरण की जरूरत भी नहीं थी, इस प्रकार राज्य भी अनुपस्थित था क्योंकि राज्य शोषण के उपकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आगे चलकर प्रकृति से मानव के अन्तर्द्वन्द्व ने औजारों को जन्म दिया। इंसान ने आग जलना, जानवर पालना, बर्तन बनाना, पौंधे उगाना सीखा। इस तरह खेती की भी शुरुआत हुई और अलग-अलग कबीले सामने आये । कबीलों में आपस में लड़ाईयां भी होती थी। उत्पादन बढ़ाने के लिए लड़ाई में हारे लोगों को गुलाम बनाकर उनसे काम लिया जाने लगा। इस तरह समाज में दो वर्ग मालिक और दास आये।

2 **. दास युग** - यह समाज विकास की दूसरी अवस्था थी। इसमें वर्ग एवं राज्य दोनों का अस्तित्व था। उच्च वर्ग अर्थात स्वामियों ने दासों को नियन्त्रित किया। कुछ लोग जबरन लोगों को दास बनाकर शारीरिक श्रम के कार्य उनसे लेने लगे और अपना समय मनोरंजन, शिक्षा, कला व राजनीति आदि में बिताने लगे। आदिम वर्गहीन समाज अब स्वतंत्र नागरिकों और दासों में बंट गया । इस युग में मालिको की संख्या दासों से कम थी इसलिए मालिक इस भय में थे कि दास कभी भी विद्रोह करके उन्हें नुकसान पंहुचा सकते है। इस लिए उन्होंने दासों को नियत्रित करने के लिए राज सत्ता (कानून, पुलिस, जेल) को जन्म दिया।

3 **सामंतीय युग**- सामंती युग में रजा और उनके सैनिक सामंत जमीनों के मालिक होते थे । इनका ज्यादार समय युद्धों में बीतता था इस लिए खेती का काम किसानों द्वारा किया जाता था। ये किसान सामंत की जमींन छोड़ के नहीं जा सकते थे और फसल का बड़ा हिस्सा सामंत को देना होता था। धीरे धीरे सामंत किसान से अधिक काम करवाकर उसका शोषण करने लगा। हालांकि सामंत व्यवस्था में किसानों का शोषण हो रहा था फिर भी खेती के बाद उनको काफी अतरिक्त समय मिल जाता था जिससे करघे व दस्तकारी की चीजों का अविष्कार हुआ, जिसकी मदद से किसान अपनी जरूरतों की दूसरी चीज बनाने

लगा पहले वह इससे अपनी जरुरतों को पूरा करता था बाद में इनका आदान- प्रदान भी शुरू हो गया और अब बस्तुएं आवशयकता पूर्ति के लिओये नहीं बल्कि व्यापार के लिए होने लगीं। इस प्रक्रिया से ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो एक व्यक्ति से चीजें खरीद कर दूसरे व्यक्ति को दे देता था। यह वर्ग व्यापारी कहलाया। धीरे- धीरे इस वर्ग के पास पैसा इकठ्ठा होता गया और विकसित होते हुए कल- कारखाने का मालिक भी बन गया। मशीन का अविष्कार होने पर सामंती समाज पूंजीवादी समाज में बदल गया।

4 **पूंजीवादी युग -** पूंजीवाद वह आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली है जो मुख्यत: औद्योगिक क्रांति के बाद अठारवीं शताब्दी के यूरोप में विकसित हुई और धीरे धीरे विश्व के बड़े हिस्से में फैल गयी। औद्योगिक क्रांति वैज्ञानिक क्रांति का स्वाभाविक परिणाम थी। वैज्ञानिक क्रांति ने नए- नए यंत्रों और उपकरणों का अविष्कार करके उत्पादन प्रणाली को कृषि- प्रदान से उद्योग प्रधान व्यवस्था में बदल दिया। नई उद्योग-प्रधान व्यवस्था ने सामंती व्यवस्था की नए वर्ग के लिए सम्पदा न कर पाने की बाधा को दूर कर दिया, क्योंकि अब नए उद्यमी वर्ग के लिए भी सूझ- बुझ और साधनों के बल पर संपत्ति अर्जित करना संभव हो गया। नए उद्योगों की स्थापना से नये बाजारों और शहर विकसित हुए और नई तरह के कला- कौशल एवं शिक्षा की आवशयकता पैदा हो गयी । गांवों का निर्धन वर्ग रोजगार और उन्नति के अवसरों की तलाश में शहरों की और जाने लगा । शहरों में नए उद्योग-धंधे स्थापित कराने और उनके बल पर सम्पदा अर्जित करने और इन उद्योगों-धंधों का विस्तार करके अतरिक्त सम्पद अर्जित करने के लिए, सबसे बढ़कर, विशाल धनराशि या 'पूंजी' की जरुरत थी । इस लिए ओद्योगिक क्रांति के बाद जो प्रणाली अस्तित्व में आई, उसे 'पूंजीवाद' की संज्ञा दी गयी । इस प्रणाली में सर्वसाधारण के पास उत्पादन के साधन, महँगी मशीनें, कल कारखाने, आदि सुलभ नहीं थे ,न ही वह अपने पुराने हस्तकौशल वाले रोजगार को ही चला सकते थे । मजबूरन उन्हें अपना श्रम बजना पड़ा और "वेतन पाने वाले दास" बन गये ।पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों का घोर शोषण हुआ और मजदूरों को अपना अस्तित्व खतरे में नजर आने लगा । सर्वहारा वर्ग के पास युद्ध के अतरिक्त कोई विकल्प नहीं रहता । युद्ध के अंत में पूंजीवाद का सर्वनाश हो जाता है इसे ही क्रांति कहते है । इस क्रांति के फलस्वरूप 'वर्गहीन एवं राज्य विहीन' समाज किन स्थापना होगी, और उत्पादन के साधनों का समाजीकरण किया जायेगा ।

मार्क्स कहता है कि पूँजीवाद का विकास स्वयं ही पूँजीवाद को विनाश की और ले जायेगा तथा क्रांति के पश्चात सर्वहारा अधिनायकतंत्र स्थापित होगा। अब समाज एक संक्रमण काल से गुजरेगा जिसे मार्क्स पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच का मध्यवर्ती चरण बताता है तथा समाजवाद का नाम देता है। इसकी पहचान सर्वहारा के अधिनायकयंत्र के रूप में इसलिए है क्योकि यह भी एक शोषण परक व्यवस्था होगी। इसमें सर्वहारा अर्थात बहुसंख्यक, पूँजीपति अथवा अल्पसंख्यक का शोषण करेगा। इसका लक्ष्य शोषण को बनाए रखना नहीं वरन इसे समाप्त करना होगा। इसमें सामाजिक वितरण प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार एवं प्रत्येक को उसके योग्यता के अनुसार होगा। इसमें पूँजीवादी प्रवृत्तियों को धीरे-धीरे समाप्त का दिये जायेगा तथा धीरे-धीरे वर्ग विभाजन समाप्त हो जायेगा।

5 **साम्यवाद युग -** साम्यवाद में न तो वर्ग की उपस्थिति होगी न वर्ग शोषण के उपकरण राज्य की। यह धर्म विहीन राज्यविहीन स्थिति होगी। इसमें सामाजिक वितरण का आधार होगा प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त हो सके । यहाँ वर्ग विरोध न होने के कारण उत्पादक शक्तियों को रोकने वाला उत्पादन संबंध नहीं होगा। उत्पादन के साधन सामूहिक स्वामित्व में होगे तथा संम्बन्ध समानता के होंगे। अतः उत्पादक शक्तियों एवम् उत्पादन संबंधों में तनाव उत्पन्न नहीं

हो पाएगा। उत्पादन शक्ति के विकास के कारण उत्पादन इतना बढ़ जाएगा कि सबके आवश्यकता की पूर्ति करना संभव हो जायेगा। मार्क्स का यह ऐतिहासिक भौतिकवाद अंततः नियतीवादी दृष्टिकोण बन जाता है। इसमें इतिहास की एक निश्चित रेखा निर्धारित कर दी गई है। हर समाज को इसी रेखा से होकर गुजरना है। मार्क्स कहता है कि एक विकसित राष्ट्र एक पिछड़े राष्ट्र को उसके भविष्य की तस्वीर दिखाता है। इसका यह तात्पर्य हुआ कि एक ही रेखा पर सभी बढ़ रहे है। कोई थोड़ा आगे है तो कोई थोड़ा पीछे। इस प्रकार का नियतिवादी दृष्टिकोण मानवीय प्रयास की संभावना को ब्यर्थ बना देता है। मानव समुदाय अपनी इच्छा एवंम् सोच से समाज के भविष्य का निर्धारण नहीं कर सकता है, पर मार्क्स के बाद के इतिहास को देखने पर हम पाते है कि ऐसा नहीं हुआ। रूस से सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना का प्रयास जरूर हुआ पर इससे राज्य के समाप्ति के प्रयास की झलक नहीं मिली एवम् साम्यवादी विचार को नकारकर लोकतंत्र की स्थापना की गई इसके अतिरिक्त साम्यवाद मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर भी सही नहीं ठहरता मानव मनोविज्ञान कहता है कि आवश्यकता को संतुष्टि संभव ही नहीं है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का महत्त्व – यद्यपि यह सत्य है कि इतिहास को बदलने में आर्थिक शक्तियां एकमात्र कारण चाहे न रहीं हों , परन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इतिहास को बदलने में आर्थिक शक्तियों की भी भूमिका रही है। आर्थिक परिस्थितियों की उपेक्षा करके इतिहास का वास्तविक या वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

14.6 वर्ग संघर्ष (Theory of class conflict)

मार्क्स ने ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में वर्ग संघर्ष की भूमिका पर विशेष बल दिया है। मार्क्स और एंजेल्स का मानना था कि धनवान और निर्धन वर्ग (Haves and Have not) के बीच का संघर्ष समाज के इतिहास में तभी से मौलिक महत्त्व की वस्तु रहा है जब से आदिम जनजातीय समुदाय समाप्त हुआ। आदिम जनजातीय समुदाय में उत्पादन के साधन सबके सामान थे। इतिहास गवाह है कि जब उत्पादन प्रणाली में जब परिवर्तन हुए तब सामाजिक वर्गों के परस्पर संबंधों में भी परिवर्तन आया। प्राचीन काल की दास प्रातः में स्वामी- दास दो परस्पर विरोध वर्ग थे। मध्यकाल में सामंत प्रथा में जमीदार-किसान वर्ग में बटें। आधुनिक युग में पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत पूंजीपति और कामगार परस्पर -विरोधी वर्ग में प्रकट होते है।

मार्क्स कहता है कि अब तक का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। यह वर्ग संघर्ष इस कारण है कि वर्ग विभाजित समाज में शोषण अन्तर्निहित है। वर्ग का निर्धारण उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण से होता है जिनका उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण से होता है वे समाज में शक्तिशाली होते है। मार्क्स का मानना है कि हर सामाजिक आर्थिक संरचना में जिसकी एक निश्चित उत्पादन रीति होती है एवं जो वर्ग विभाजित होता है। दो मूलवर्ग होते है। एक वह जिसका उत्पादन के साधन पर नियन्त्रण है तथा दूसरे वे जिनका नियन्त्रण नहीं होता है। इन दो के अलावा और भी वर्ग उपस्थित हो सकते है परन्तु यही दो मूलवर्ग होते है। इनका सम्बन्ध संघर्ष पूर्ण सम्बन्ध होता है क्योंकि एक शोषित होता है और दूसरा शोषण करने वाला होता है। एक शोषण पर ही दूसरे का हित टिका होता है। इस कारण इन दोनों वर्गो में संघर्ष अन्तर्निहित होता है। हर वर्ग विभाजित समाज में यह संघर्ष देखा जा सकता है। दासों व दासस्वामियों, सामान्तों एवं कृषकों तथा मजदूरों एवं पूँजीपतियों में यह संघर्ष विद्यमान रहा है। इस संघर्ष के दो परिणाम संभव हैं या तो शोषित वर्ग की विजय होगी या दोनों वर्ग समाप्त हो जायेगे । शोषितों की विजय सम्भव नहीं क्योंकि ये अल्पसंख्यक है जीतना तो शोषितों को ही है। पर न तो दास जीत सके न कृषक पर सर्वहारा इस संघर्ष में विजय प्राप्त

करेगा। दास मूलक समाज की समाप्ति पर न दास बचे न दास स्वामी एवं सामन्तवाद की समाप्ति पर सामन्त रहे न कृषक परन्तु पूंजीवाद की समाप्ति सर्वहारा की जीत के साथ होगी। ऐसा कारण होगा कि जहाँ दास एवं कृषक स्वंय में एक वर्ग थे वही सर्वहारा स्वंय के लिए एक वर्ग में बदल जाएगा।

स्वंय में एक वर्ग का तात्पर्य वर्ग चेतना की अनुपस्थिति से है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति अपनी वर्ग स्थिति को अपनी चेतना से नहीं जोड पाता और इस कारण वर्ग एकता का अभाव होता है। इस एकता के अभाव में वह अपनी निम्न एवं शोषित स्थिति का कारण नहीं समझ पाता। वह इन्हें व्यक्तिगत कारणों से जोडता है। सत्य का उसे पता नहीं होता। वह विचारधारा, धर्म आदि की मिथ्या चेतना से जुड़ा होता है। एकता की अनुपस्थिति ही उसे कमजोर बनाती है और इस कारण वर्ग संघर्ष में उसकी जीत की संभावना कम हो जाती है। ऐसा ही दासों एवं कृषकों के साथ हुआ परन्तु पूंजीवाद की स्थिति भिन्न है। इसने औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया है। लाखों मजदूर एक साथ कार्य कर रहे है। इससे उन्हे एक दूसरे का आभास मिलता है। अपने शोषण एवं अपने सहयोगियो के शोषण की समानता को वह पहचान जाते है। वे एकताबद्ध होने लगते है और स्वंय में एक वर्ग से स्वंय के लिए एक वर्ग में बदल जाते है। अब उन्हें अपनी वर्ग स्थिति एवं अपने वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका का अहसास हो जाता है। अपनी भूमिका की इसी स्वीकृति का परिणाम है क्रांन्ति के फलस्वरूप सर्वहारा अपना अधिनायकतन्त्र स्थापित करता है एवं उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व स्थापित कर दिया जाता है। इससे अधिशेष किसी एक वर्ग अथवा व्यक्ति के पास नहीं जाता। वर्ग विभाजन समाप्त होने लगता है और अन्ततः साम्यवाद में जाकर वर्ग की अवधारणा समाप्त हो जाती है। अन्तर मात्र इतना रहता है कि जहाँ आये दिन साम्यवाद में उत्पादन शक्तियों के कम विकसित होने एवंम् प्राकृतिक बंधनों के मजबूत होने के कारण मानव जीवन पर अनेक बंधन होते है वही साम्यवाद में आकर मानव प्राकृतिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। उसकी सभी आवश्यकताएँ संतुष्ट हो जाती है और वह विवशता के लोक से स्वतंत्रता के लोक में पहुँच जाता है। वह आत्मप्रेरित व्यवहार करने लगता है। इस प्रकार हम देखते है कि समाज का वर्ग विभाजन इतिहास के एक निश्चित दौर का यथार्थ है। वर्ग न तो हमेशा से थे न ही हमेशा रहेंगे। ये इतिहास की एक निश्चित अवस्था में उत्पन्न हुए तथा इतिहास की एक निश्चित अवस्था में जाकर समाप्त हो जाऐंगें। उत्पादक शक्तियों के विकास से जब उत्पादन उपभोग से अधिक हो गया तो इस अधिशेष ने वर्गो को उत्पन्न कर दिया एवमं जब उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व हो जायेगा तो वर्ग समाप्त हो जायेगें। पूर्ण समानता के इस समाज में ही वास्तविक स्वतन्त्रता निहित होगी।

वर्ग विभेद रहित समाज के इस स्वप्न ने पीढ़ियों तक लोगो को मार्क्सवादी विचार से जोड़ा है। पर यह दृष्टिकोण व्यवहारिक के पैमानो पर आलोचित भी होता रहा है। लोगों का कहना है कि हर समाज में श्रेणीक्रम निर्धारित हो जाते है। निश्चित रूप से यह माना जा सकता है कि वर्तमान समाज में सम्पत्ति असमानता का प्रमुख कारण है पर यह मानना मुश्किल है कि निजी सम्पत्ति की अनुपस्थिति वाले समाज में पूर्ण समानता आ जाएगी। इजराइल के किबुत्ज पर अध्ययन करने वाले लोगों ने भी कहा है कि पूर्ण समानता यहाँ भी नहीं है।

यहाँ मार्क्स ने जिस साम्यवादी स्थिति की बात की है उसमें राज्य को कोई अस्तित्व नहीं है। राज्य विषयक अपने दृष्टिकोण में मार्क्स ने कहा है कि आधुनिक राज्य शोषण के उपकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मार्क्स का कहना है कि राज्य का कार्यकारिणी पूजीपतियों की समिति मात्र है। मार्क्स के सहयोगी ऐजल्स ने अपनी पुस्तक 'Origin of Family, Private Property and State' में लिखा है कि राज्य समाज विकास में एक निश्चित अवस्था का उत्पाद है। यह अवस्था वस्तुतः आदिम साम्यवाद से दासमूलक समाज में संक्रमण की आवस्था है। इस संक्रमण काल में जब अधिशेष की उपस्थिति के कारण वर्ग विभाजन प्रकट हो गया तो सम्पत्तिवान वर्ग को अपने हितों को बनाए रखने की चिंता हुई इस चिंता ने वर्ग शोषण के एक उपकरण को जन्म दिया। राज्य यही वर्ग शोषण का उपकरण

है। इसकी सहायता से अमीर वर्ग अपना हित साधता है दासमूलक समाज में इस राज्य ने दासों को नियन्त्रित रखने में दास मालिकों की मदद की। सामतवाद में इसी प्रकार इसने सामंतो का और पूँजी वाद में पूँजीपतियों का साथ दिया। इसने शोषण से लोगों का ध्यान हटाने के लिए सहमति का भ्रम पैदा किया। इसके लिए इसने राष्ट्रवाद एवम् राष्ट्रीयता आदि विचारधाराओं का प्रयोग किया। मार्क्स का मानना है कि विचारधारा सत्य का अहसास नहीं होने देती, यह एक प्रकार की मिथ्या चेतना है। यहाँ विचारधारण एवंम सहमति आदि बातों से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि मार्क्स के अनुसार पूँजीपति वर्ग सहमति पैदा कर अपना हित साधता है। सहमति के आधार पर शोषण का दृष्टिकोण तो आगे चलकर ग्राम्शी ने दिया। मार्क्स तो बल प्रयोग पर ही अपनी आस्था रखता है। मार्क्स का मानना है कि राज्य अपनी शक्ति के द्वारा पूँजीपति वर्ग की मदद करता है। इसका कार्य उस शोषण परक अनुबन्ध को लागू करना है जो मजदूर को पूँजीपति का गुलाम बना देता है मार्क्स का मानना है कि जब क्रांन्ति के पश्चात सर्वहारा का अधिनायकतन्त्र स्थापित होता है तब भी राज्य की शोषण परक भूमिका बनी रहती है। अब वह मजदूरों के हित में पुँजीपतियों का शोषण करता है। इस चरण में उत्पादन के साधनों पर जिस सामाजिक स्वामित्व की बात होती है वह व्यवहारिक रुप में राज्य के स्वामित्व में ही रहता है। इस वस्तुतः मार्क्सवादी अवधारणा में राज्य की भूमिका तब तक बनी रहती है जब तक वर्ग विभाजन बना रहता है। इस अवधारणा के अनुसार जब साम्यवादी चरण में जाकर वर्ग विभेद समाप्त हो जाएगा तभी राज्य लुप्त हो जाएगा।

14.7 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

समाजिक परिवर्तन के माध्यम से साम्यवाद की स्थापना का प्राथमिक बिन्दु सर्वहारा क्रांन्ति है। मार्क्स कहता है। कि दुनिया के मजदूर एकजुट होकर पूँजीवाद का नाश करेगें किन्तु मार्क्स इसे मजदूरों की इच्छा पर नहीं छोड़ता वह इसे पूँजीवाद के विकास का स्वभाविक परिणाम बताता है। मार्क्स कहता है कि पूँजीवाद अपने ही अन्तर्विरोधों के तले टूटकर बिखर जाएगा। मार्क्सवादी विचार में पूँजीवाद की समाप्ति को शोषण की अनिवार्यता दिखाने का सिद्धांत अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत है। अतिरिक्त मूल्य का मार्क्स का यह सिद्धान्त रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित मूल्य के श्रम सिद्धान्त से प्रभावित है। यदि किसी वस्तु के उत्पादन में 4 घंटे लगे तो इसकी कीमत उस वस्तु से दोगुनी होगी जिसके उत्पादन में 2 घंटे लगते है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवाद की प्रक्रिया में जो कुछ भी मूल्य उत्पादित होता है वह मजदूर के द्वारा होता है। किन्तु मजदूर जितना श्रम करता है उतना मूल्य नहीं प्राप्त करता। उसे जितने घंटे का वेतन मिलता है उसके अतिरिक्त भी कुछ कार्य करना पड़ता है। इसी अतिरिक्त समय में किए गये कार्य द्वारा दत्पादित मूल्य से पूँजीपति का लाभ निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए यदि मजदूर 10 घंटे कार्य करे तो उसे 7 घंटे का ही वेतन मिलता है। इस अतिरिक्त 3 घंटे में उत्पादित मूल्य को पूँजीपति अपने पास रख लेते है और यही उसका लाभ है। पूँजीपति का पूरा ढांचा और पूँजीपति का सम्पूर्ण लाभ इसी अतिरिक्त मूल्य के शोषण पर टिका हुआ है। इसमें मजदूर शोषित होता है क्योंकि वही मूल्य का उत्पादन करता है और पूँजीपति ही शोषक है क्योंकि वह बिना किसी योगदान के लाभ प्राप्त करता है।

मार्क्स कहता है कि पूँजीपति में अन्तर्विरोध निहित होता है। पूँजीपति अधिक ये अधिक लाभ की आशा करता है। इसलिए वह जिस अतिरिक्त मूल्य का शोषण करता है उसका पुनः पूँजी के रूप में निवेश करता है। इसके द्वारा नये मजदूरों को काम पर लगाया जाता है जो और अधिक कार्य कर अधिक मूल्य एवं अन्ततः अधिक अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन करते है। इस प्रक्रिया में उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरी और पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ पूँजीपतियों के बीच प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती जाती है। इस प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप पूँजीपति का लाभ घटता है क्योंकि प्रतिस्पर्धा का परिणाम कीमतों का कम होना है। लाभ के कम न होने देने के लिए मजदूरों का शोषण बढ़ा देते है।

इससे मजदूरों की स्थिति खराब होती जाती है। समाज में वर्ग विभाजन भी स्पष्ट हो रहा होता है। अतः एक ऐसी स्थिति आती है जब अधिसंख्यक जनता मजदूर बन चुकी होती है। पूँजीपति अपना लाभ समाप्त नहीं कर सकता अतः स्वाभाविक रुप से मजदूर गरीब होते जाते है और मजदूरों की बढ़ती संख्या अन्ततः सम्पूर्ण समाज को गरीब बना देती है। मार्क्स इसे सर्वहाराकरण की प्रक्रिया कहता है। पूँजीवाद प्रगति करते हुए अतिउत्पादन की स्थिति में पहुँच जाता है। इस स्थिति से उद्योग धन्धे होने लगते है क्योंकि और उत्पादन की जरूरत ही नहीं रह जाती अब मजदूर बेकार होने लगते ऐसी स्थिति में मजदूरों के पास क्रांन्ति में अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता। इस प्रकार मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि पूँजीवाद का अन्त अवश्यम्भावी है। अतः मजदूर क्रांन्ति को सफल ही होना है। पूँजीपति अपना लाभ नहीं छोड़ सकता क्योंकि उत्पादन के साधन को खड़ा करने में उसकी पूँजी लगती है वह शोषण भी नहीं छोड़ सकता क्योंकि यही शोषण उसके लाभ का आधार है। मार्क्स यह बताना चाहता है कि मजदूर क्रांन्ति पूँजीवाद का ही परिणाम है न कि मजदूरों की इच्छा का पूँजीवाद के शोषण की इस अनिवार्यता का आधार उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व है। इसी आधार पर मार्क्स यह कहता है कि साम्यवाद में शोषण को अनुपस्थिति होगी, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व होगा।

मार्क्स पर फ्रांसीसी समाजवाद का प्रभाव था जैसा कि लेनिन ने कहा है मार्क्स के विचारो पर प्रारंभिक फ्रांसीसी समाजवाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है। फ्रांस में 1789 की क्रांन्ति के बाद से ही समाजवादी विचारों की उत्पत्ति होने लगी थी। फ्रांसीसी क्रांन्ति में स्वतन्त्रता समानता और बंधुत्व का नारा दिया गया था। पर जिस प्रकार यूरोप में औद्योगिक क्रांन्ति को लागू किया गया उसने इन मांगो को शब्द मात्र बनाकर छोड़ दिया। औद्योगिक क्रांन्ति के साथ साथ वे सभी बुराइयाँ भी सामने आती गई जिन्हें इसके साथ जोड़ा जाता है। औद्योगीकरण ने अमीरों तथा गरीबों के बीच की खाई को बढ़ाया। इसी के विरूद्ध प्रतिक्रया स्वरूप समाजवादी विचारों का जन्म हुआ। मार्क्स पेरिस में अपने प्रवास के दौरान इन विचारों के संपर्क में आया। सेंट साईमन, चार्ल्स फूरिए तथा एटियाने कैबेट जैसे प्रारभिक समाजवादीयों तथा प्रूदों जैसे सामाजिक अराजकतावादियों के प्रभाव के कारण मार्क्स ने यह मानना शुरू कर दिया कि सामाजिक समस्याओं की वजह पूँजीवाद स्वंय है। पूँजीवाद में शोषण अतंर्निहित है। यूरोप के इन सामाजवादियों ने यह माना कि औद्योगिक समाज के आगमन से समाज में कई प्रकार की समस्याएँ सामने आई। सामाजिक समस्याओं को इस नजर से देखने की प्रेरणा मार्क्स ने उन्ही से पाई। हालॉकि मार्क्स ने उन लोगों की तरह यह नहीं माना कि पूँजीपतियों को प्रेरणा देकर पूँजीवाद की समस्या का समाधान हो सकता है। पर यह भी सच है कि उन्हीं की प्रेरणा से मार्क्स ने इन समस्याओं को पहचानना शुरू किया। यह अलग बात है कि मार्क्स ने समाधान अलग दिया। वर्ग की अवधारण भी मार्क्स ने इन्ही फ्रांसीसी समाजवादियों से प्राप्त की तथा सामाजिक समानता का विचार भी मार्क्स ने उन्ही से प्राप्त किया।

14.8 अलगाव की संकल्पना (Concept of Alienation)

1844 में ही मार्क्स ने एक पुस्तक के लेखन का प्रयास किया था पर यह पुस्तक छप नहीं पाई तथा 1920 के दशक तक विश्व को इस पुस्तक की जानकारी नहीं थी। यह मूलतः जर्मन भाषा में थी तथा 1930 के दशक के प्रारंभ में इसे अंग्रेजी भाषा में Economic and Philosophical Manuscript of 1844 नाम प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में दिए गए विचार मार्क्स की 'कैपिटल' , कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो (Communist manifesto) एंव बाद की पुस्तकों में दिए गये विचारों से काफी भिन्न थे। इस पुस्तक में मार्क्स ने पूंजीवाद की आलोचना मुख्यतः उसके अमानवीयकारी प्रभाव और श्रमिक के अलगाव की द्रष्टि से की है। मार्क्स का कहना था कि पूंजीवादी व्यवस्था में

मनुष्य में अपनापन नही रहता, वह प्रकृति से, अपनी रचनाओं से, अपने समाज से यहाँ तक कि अपने-आप से भी पराया हो जाता है। इसलिए अपनेपन की वापसी के लिए पूंजीवाद का अंत किया जाना चाहिए।

इस दौर में मार्क्स कुछ हद तक आदर्शवादी था। युवावस्था के कारण उसमें व्यवहारिक अनुभव की कुछ कमी थी। वह दर्शन तथा हीगल के विचारों से प्रभावित था। इस दौर के मार्क्स के विचारों को देखकर उसे क्रांन्तिकारी कहने की अपेक्षा मानवतावादी कहना अधिक उचित होगा। यह मार्क्स उस मार्क्स से काफी भिन्न था जिसे अब तक विश्व ने जाना था अतः इसे तरूण मार्क्स का नाम दिया गया। तरूण मार्क्स मानव स्वतन्त्रता की बात करता है। यह महसूस करता है कि मनुष्य की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई किन्तु यह इसका कारण किसी वर्ग विभेद में नहीं ढुँढता। यह मानना है कि पूँजीवाद के कारण मनुष्य अलगाव की एक प्रक्रिया से गुजर रहा है तथा यह अलगाव ही मनुष्य की स्वतंत्रता का नाश करता है। अलगाव की यह प्रक्रिया चार स्तरों पर चलती है।

1. उत्पादन के स्तर पर

2. प्रकृति के स्तर पर

3. समाज के स्तर पर

4. स्वंय के स्तर पर

1. उत्पादन के स्तर पर मनुष्य का अलगाव उत्पादन प्रक्रिया से उसे अलग कर देता है। पूँजीवाद में उत्पादन केन्द्रीकृत होता है एवं श्रम का विभाजन कर दिया जाता हैं यहाँ उत्पादन कई लोगों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम होता है। जबकि पूँजीवादी व्यवस्था के पहले किसी की सहायता से करता था। तथा एक वस्तु का उत्पादन एक कामगार स्वंय एवं अपने परिवार के दूसरे सदस्यों की सहायता से करता था। उत्पादन की सम्पूर्णता से जुड़ा होने के कारण उसे रचनात्मक सन्तुष्टि मिलती थी किन्तु पूँजीवाद में श्रम विभाजन के कारण यह उत्पादित वस्तु का एक छोटा सा हिस्सा ही बना पाता है, अतः रचनात्मक सन्तुष्टि का अनुभव नहीं कर पाता। दूसरी ओर पूँजीवाद के पहले उत्पादन स्थानीय उपभोग के लिए होता था, अतः एक मजदूर उत्पादित वस्तु को अपने आस-पास ही पाता था लेकिन पूँजीवाद में उत्पादित वस्तु दूर दूर तक जाती है। इन सभी कारणों से मनुष्य उत्पादन प्रक्रिया और अपने उत्पाद से अलग हो जाता है।

2. प्रकृति के स्तर पर मार्क्स कहता है कि पूँजीवाद में मनुष्य एक कृत्रिम वातावरण में कार्य करता है। मशीनों पर काम करते-करते प्रकृति से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। चार दीवारों और एक छत के नीचे कैद इस व्यक्ति को यह पता नहीं होता कि बाहर क्या हो रहा है। पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के पहले की स्थितियों में मनुष्य प्रकृति गोद में कार्य करता था। वह खुली हवा में सांस ले सकता था, वृक्षों की छांव में आराम कर सकता था। लेकिन पूँजीवाद ने उसे प्रकृति से अलग कर दिया।

3. समाज के स्तर पर मार्क्स कहता है कि पूँजीवाद प्रतिस्पर्धा पर टिका है। यहाँ एक कामगार दूसरे कामगार से प्रतिस्पर्धा करता है। पहले इनके बीच सहयोग था। सभी अपने समुदाय से जुडे थे। जब कोई एक व्यक्ति बीमार हो जाता था तो दूसरे उसकी मदद करते थे। पर पूँजीवाद में यदि एक मजदूर बीमार होता है तो दूसरा मजदूर उसकी मदद करने की जगह उसकी नौकरी छीनने में लग जाते है। इस प्रकार मनुष्य का स्वार्थ उसे समाज से अलग कर देता है।

4. स्वंय से अलगाव - मार्क्स कहता है कि अंततः मनुष्य अपने- आप से भी पराया हो जाता है उसे साहित्य, कला, और संस्कृति के प्रति उसकी कोई रूचि नहीं रह जाती है। पूंजीवादी प्रणाली मानवीय प्रतिभा और गुणों को उन परिस्थितियों का दास बना सेती है जो संपत्ति के निजी स्वामित्व से पैदा होती है। श्रमिक की दुर्दशा के साथ पूंजीपति भी अधिक से अधिक लाभ पाने के लिए चैन से जी नही पता और मानवीय गुणों को भूलता जाता है।

तरूण मार्क्स की मुख्य समस्या मनुष्य का यही परायापन अथवा अलगाव है। किन्तु इस मार्क्स के पास इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। वह कहता है कि प्रतिस्पर्धा को हटाकर सहयोग को अपनाया जाना चाहिए, कृत्रिमता को हटाकर प्राकृतिक वातावरण में लौटना चाहिए। किन्तु यह कैसे होगा यह स्पष्ट नहीं है। इन्हीं कारणों से तरूण मार्क्स आदर्शवादी प्रतीत होता है, किन्तु यह भी सच है कि बीसवीं सदी के मार्क्स वादियों को जिनमें नवमार्क्स वादियों का प्रमुख स्थान है, अगर मार्क्स की किसी एक पुस्तक ने सर्वाधिक प्रभावित किया तो वह यही पुस्तक है।

अभ्यास प्रश्न

1.फ्रांस में की क्रांति किस वर्ष में हुई ?

2.दुनिया के मजदूर एकजुट होकर किसने नारा दिया है ?

3. अब तक का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है किसने कहा है ?

4. मार्क्स की मृत्यु कहाँ हुई थी ?

5. मार्क्स को प्रसिद्धि दिलाने में किस पुस्तक का योगदान प्रमुख है ?

6. मार्क्स ने अलगाव की संकल्पना किस पुस्तक में की थी?

14.9 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त हम यह समझ सकते है कि मार्क्स ऐसे सिद्धान्तकार के रूप में जाना जाता है जिसने समाज विज्ञानों में आर्थिक व्याख्या को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। इसके पहले सामाजिक व्याख्या के लिए धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक आदि पद्धतियों का सहारा लिया जाता था। मार्क्स कहता है कि एक समाज वैसा ही होता है जैसी उसकी उत्पादन रीति होती है। यह जरूर कहा जाता है कि आर्थिक तत्वों पर हद से अधिक बल देकर मार्क्स का सिद्धान्त एक पक्षीय हो जाता है किन्तु इस तथ्य को भी स्वीकार किया जाना चाहिए, कि विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं में आर्थिक प्रक्रिया का भी महत्वपूर्ण स्थान है और इसे महत्वपूर्ण बनाकर मार्क्स ने सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या को समुन्नत ही बनाया है। दूसरी और मार्क्स पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद का उसका सिद्धान्त नियतिवाद को बढ़ावा देता है एवं मानव चेतना तथा मानव इच्छा के महत्व को शून्य कर देता है। कुछ हद तक मार्क्स में नियतिवाद का आभाश मिलता है इसे माना जाना चाहिए, किन्तु दूसरी और समतामूलक समाज की स्थापना एवं शोषण रहित समाज का स्वप्न देकर मार्क्स ने मानवतावाद को बढ़ावा ही दिया विशेष रुप से युवा मार्क्स के विचारों में इस मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

मार्क्स ने आने वाले समाज के सन्दर्भ में जो अपेक्षाएं रखीं थी, उसे इतिहास ने गलत सिद्ध कर दिया। मार्क्स के अनुसार क्रांन्ति ब्रिटेन में होनी थी किन्तु रूस में जाकर हुयी। चीन में तो क्रांन्ति की तो कोई सम्भावना ही नहीं थी, जबकि ऐसा हुआ। माओं ने एक कृषक समाज में क्रांन्ति की संभावना को सच कर दिखाया। अतः भविष्य के सन्दर्भ में मार्क्स के अनुमान गलत ही सिद्ध हुए। मार्क्स ने यह भी कहा था कि लोकतान्त्रिक माध्यम से समाज में बदलाव नहीं लाए जा सकते किन्तु 20वीं सदी में लोकतन्त्र की सर्वस्वीकृति एवं कल्याणकारी राज्य के हमारे अनुभव ने इस बात को गलत ही सिद्ध किया। सर्वहारा के अधिनायकतन्त्र के संदर्भ में मार्क्स का विचार भी पूरे विश्व में आलोचना का पात्र रहा है। टाटस्की ने यह कहा था कि सर्वहारा का अधिनायकतन्त्र जो लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित है अन्ततः तानाशाही में ही बदल जाता है। रूस के अनुभव एवं स्टालिन की कार्य पद्धति इस बात को सही सिद्ध करती है। सामाजिक शक्ति के सन्दर्भ में भी मार्क्स का विचार आलोचना का पात्र बनता रहा है। मार्क्स ने यह कहा था कि किसी समाज में वही शक्तिशाली होता है जिसके पास आर्थिक शक्ति होती है। किन्तु मैक्स वेबर ने अपने सिद्धान्तों में यह साबित किया कि आर्थिक शक्ति सामाजिक शक्ति का केवल एक भाग है। सामाजिक प्रस्थिति एवं राजनैतिक शक्ति भी एक व्यक्ति को शक्तिशाली बना सकते हैं। राज्य के वर्ग चरित्र के संदर्भ में मार्क्स का विचार भी विवादों में रहा है। लूई बोनापार्ट के शासन के विषय में मार्क्स ने स्वतः यह माना था कि यह शासन वर्ग निष्पक्ष था। यदि राज्य वर्ग शोषण के उपकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो ऐसा कैसे सम्भव था। भारतीय राज्य के सन्दर्भ में हम्जा अलवी तथा अनुपम सेन का अध्ययन भी इसे वर्ग घोषित करता है। अगर मार्क्स के विचारों पर उठने वाले विवादों को देखा जाए तो हम पाते है कि मार्क्स के बाद आने वाले हस सिद्धान्तकार ने मार्क्स की कुछ न कुछ बातों को नकारा तो साथ ही कुछ न कुछ नया जोड़ा भी। अतः मार्क्स की आलोचना के पर्याप्त बिन्दु मिल ही जाते है। पर मार्क्स का महत्व इस बात में है कि एक ऐसे समाज में जहाँ शोषण और भेदभाव था, इसने लोगों को समता मुलक समाज का स्वप्न दिया तथा पीढ़ियों को समाजिक बदलाव के लिए प्रेरित किया यह कमोबेश मार्क्स का ही दबाव था जिसके कारण उदारवाद को अपना रास्ता बदलना पड़ा तथा नकारात्मक से सकारात्मक स्वरूप में आना पड़ा। हाँलाकि कार्ल पॉवर ने मुक्त समाज के दुश्मनों में मार्क्स को भी रखा पर मार्क्स का सिद्धान्त तो वास्तविक स्वतंत्रता की ही तलाश कर रहा था। औद्योगिक पूँजीवाद की सभ्यता से स्वतंत्रता की अनुपस्थिति को ही मार्क्स दूर करना चाहता था। वास्तविक स्वतंत्रता की इसी आशा ने पीढ़ियों को मार्क्सवादी चेतना में प्रशिक्षित किया।

14.10शब्दावली

परायापन अथवा अलगाव- किसी व्यक्ति के द्वारा अपने समाज,समूह, कार्यस्थल, अपने श्रम के उत्पाद और अंततः स्वयं से सम्बन्ध का न होना।

बुर्जुआ वर्ग – पूंजीवादी समाज का शासक वर्ग, उत्पादन के साधनों का स्वामी

सर्वहारा – उत्पादन के स्वामियों के अतिरिक्त अन्य सभी सामूहिक रूप से।

ऐतिहासिक भौतिकवाद - ऐतिहासिक भौतिकवाद वस्तुतः इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का प्रयास है

14.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1789 2. मार्क्स 3. मार्क्स 4..लंदन में 5.Communist Manifesto 6. Economic and Philosophical Manuscript of 1844

14.12सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा - ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण-1996

2.आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, चतुर्थ भाग-ज्योति प्रसाद सूद- के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 1994-95

3.राजनीति कोश- डॉ0 सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण-1998

4.राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा- ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, पंचम संस्करण-2001

5.राजनीति विज्ञान विश्वकोश- ओ0पी0 गाबा- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

14.13सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – पी.डी. शर्मा

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – जीवन मेहता

14.14निबंधात्मक प्रश्न

1.मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या कीजिये।

2. मार्क्स के एतिहासिक भौतिकवाद की विवेचना कीजिये।

3. मार्क्स के वर्ग संघर्ष संबंधी विचारों की व्याख्या कीजिये।

इकाई 15 : एंटोनियो ग्राम्शी

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 जीवन परिचय

15.4 ग्राम्शी का आधिपत्य का सिध्दांत

15.5 राजनीतिक समाज

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछली ईकाई में हमने मार्क्सवाद के प्रवर्तक व एक नया विचार देने वाले विचारक कार्ल मार्क्स के विभिन्न विचारों का अध्ययन किया। मार्क्स ने समाज विज्ञानों में आर्थिक व्याख्या के तत्व को शामिल कराया। राजनीति में मार्क्स साम्यवादी विचारधारा को लाया तथा सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना के लिए उसने क्रांति का समर्थन किया। 20 वीं शताब्दी का प्रभावशाली चिंतन मार्क्सवाद को माना जा सकता है। मार्क्स, एंगेल्स, रोजा लग्जेमबर्ग, लेनिन, माओ, चे-गुए-वेरा आदि माक्सवादी आन्दोलन के प्रणेता रहे हैं। इसके अतरिक्त जार्ज लुकाच, हर्बर्ट मार्कुस, फ्रेंकफोर्ड स्कूल आदि ने मार्क्सवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस इकाई में हम मार्क्सवाद को परिवर्तन के साथ विकसित करने वाले विचारक एंटोनियो ग्राम्शी के विचारो को जानने का प्रयास करेंगे।

नवमार्क्सवादी चिंतन शैली का प्रारंभ 20 शताब्दी में हुआ । इतालवी मार्क्सवादी चिन्तक एंटोनियो ग्राम्शी और हंगरी के मार्क्सवादी विचारक जार्ज ल्यूकाच की विश्लेषण शेली से नवमार्क्सवादी चिंतन शैली शुरू हुई। फ्रेंकफर्ट स्कूल जो की मार्क्सवादी दृष्टिकोण की सार्थकता पर नये सिरे से विचार कर रहे थे ने नवमार्क्सवादी चिंतन शैली को भी प्रस्तुत किया और राजनीतिक चिंतन के अंतर्गत 'आलोचनात्मक सिद्धांत को बढ़ावा दिया। नवमार्क्सवादी चिंतन मार्क्सवाद की पुरानी मान्यताओं से हटकर नई दिशाओं में सोचने का ढंग है । मार्क्सवाद अपनी कुछ नई मान्यताओं से हटकर जिस नई दिशाओं में विकसित हुआ है उन्हें नवमार्क्सवाद कहा जाता है । नवमार्क्सवाद समाज में विभिन्न स्तरों पर जैसे आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्तरों पर - प्रभुत्व और पराधीनता का गहन विश्लेषण करता है, यह पूंजीवाद को केवल उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर आधारित आर्थिक प्रणाली के रूप में नहीं देखता बल्कि एक विस्तृत आर्थिक -राजनीतिक -सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में देखता है ।

15.2 उद्देश्य

1 ग्राम्शी के संघर्षपूर्ण जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त होगी ।

2 ग्राम्शी की आधिपत्य की अवधारणा के विषय में जान पाएंगे ।

15.3 एंटोनियो ग्राम्शी का जीवन

ग्राम्शी का जन्म 22 जनवरी 1891 में सार्दिनिया द्वीप के केगलियरी प्रान्त में हुआ था । यह इटली का सर्वाधिक निर्धनता ग्रस्त क्षेत्र था । इनके पिता का नाम फ्रांसिस्को ग्राम्शी तथा माता का नाम जियुसिपिना मर्सियस था जो की एक बहुत अच्छी किस्सागोह थी जिसने यथार्थ छूती माँ की कहानियों के तीखे व्यंगों से ग्राम्शी ने बहुत कुछ सिखा ।लोक कहानियों से उपजा प्रेम बाद में ग्राम्शी के साहित्य प्रेम के रूप में विकसित हुआ । ग्राम्शी ने अपने जीवन में आभाव भरे दिन और तमाम समस्यांएं झेली । जीवन के संघर्षों ने ग्राम्शी को जुझारू बनाया । जब ग्राम्शी को विद्यालय जाने का मौका मिला उसने स्वयं को साबित करके दिखाया। प्रथामिक अध्ययन के बाद लासर्जियु विद्यालय में प्रवेश लिया फिर केगलियरी के डेटरी लाइसियम में प्रवेश लिया। 1911 में ग्राम्शी ने स्नातक परीक्षा पास की, वह आगे और पढना चाहता था परन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। ग्राम्शी ने एक परीक्षा में प्रतिभाग किया इसमें उच्च अंक प्राप्त करने पर उसे छात्रवृति मिली और इस छात्रवृति ने ग्राम्शी की उच्च शिक्षा की राह खोल दी ।

यही छात्रवृति पामीरो तोग्लियत्ति को भी मिली और इन दोनों की आपस में दोस्ती भी हो गयी। तोग्लियत्ति आगे चलकर इटली की कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव और दमदार नेता बना ।ग्राम्शी ने तूरिन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया । तूरिन उन दिनों औद्योगीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा था, उसके आस-पास के क्षेत्रों में गरीब श्रमिकों की संख्या बहुत थी । वहां रहते हुए वह समाजवादी नेताओं के समर्थन में आया । इस दौरान वह तत्कालीन बुद्धिजीवीयों के संपर्क में आया और हीगल के द्वंदवाद , फायरबाख के धर्म सम्बन्धी अवधारणा और मार्क्स के वैज्ञानिक भौतिकवाद का गहरा अध्ययन किया । मार्क्स ने ग्राम्शी को प्रभावित तो किया परन्तु उसके दर्शन की असंगतियाँ उससे छिप न सकी ।

ग्राम्शी ने पत्रकारिता को कैरियर के रूप में प्रधानता दी । 1914 से ही उसके लेख समाजवादी पत्रों में छपने लगे जिन्हें व्यापक प्रसिद्धि मिली । तूरिन के राजनीतिक, आर्थिक परिदृष्य को ले कर उसने काफी कुछ लिखा । 1916 में तूरिन से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र में सहसंपादक चुना गया । वह पत्रकारिता के साथ खाली समय में श्रमिकों को पढ़ाने का काम करता था । लोग उसे एक कुशल वक्ता और नेतृत्वकर्ता रूप में जानते थे। तूरिन प्रान्त में समाजवादी विचारधारा बढ़ रही थी लोग पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध संगठित हो रहे थे। सरकार ने समाजवादी उफान को रोकने के लिए सत्ता की ताकत का इस्तेमाल किया और परिणामस्वरूप 1916 में एक-एक करके इटली के अधिकाश समाजवादी नेता गिरफ्तार कर लिए गये। सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में 1917 में श्रमिक आक्रोश भड़क उठा । ग्राम्शी को सभी श्रमिक संगठन मानते थे और उसके एक बार बुलाये जाने पर संगठित हो जाते थे। 1919 में ग्राम्शी ने तासका, उम्ब्रेटो तारासिनी तथा तोग्लिपाती के साथ मिलकर समाजवादी विचारधारा के समाचारपत्र 'द न्यू आर्डर : अ विकली रिव्यू ऑफ़ सोशलिस्ट कल्चर' की शुरआत की। बाद में यह एक प्रभावशाली समाचार पत्र सिद्ध हुआ। जिसने श्रमिकों के बीच वर्ग चेतना जागृत करने का काम किया।

1917 की सोवियत क्रांति ने विश्व-भर के श्रमिक संगठनों का ध्यान अपनी और खीचा। ग्राम्शी भी लेनिन से प्रभावित थे । 21 जनवरी 1921 को कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इटली का गठन किया। 31 अक्टूबर 1926 को मुसोलिनी पर जानलेवा हमला किया गया। इसके कारण आपातस्थिति की घोषणा कर दी गयी और साम्यवादी नेताओं को गिरफ्तार किया जाने लगा 8 नवम्बर को ग्राम्शी को भी गिरफ्तार कर लिया गया, तब वह 35 वर्ष का था। उस दौरान उसका शारीर तमाम बिमारियों से जुंझ रहा था लेकिन सरकार उसके विचारों से आतंकित थी। अभियोजन पक्ष के वकील ने कहा था कि ' हमें इसके दिमाग के सोचने पर अगले बीस वर्षों तक अंकुश लगा देना चाहिए।'

15.4 आधिपत्य की अवधारणा

ग्राम्शी ने रूस की क्रांति को सराहा ,पर उसका मानना था कि पश्चिम के उन्नत पूजीवाद की परिस्थितियों में इस प्रकार की क्रांति सही नहीं होगी, क्योंकि पश्चिम के श्रमिक / कामगार प्रबंध को अपने मन से स्वीकार करते हैं। ग्राम्शी ने मार्क्सवाद का नया विश्लेषण किया।जहाँ मार्क्सवाद की यह मान्यता थी कि उत्पादन की शक्तियां इतनी विकसित हो जाएँगी कि प्रचलित उत्पादन सम्बन्ध उन्हें संभाल नहीं पायेगा। तब क्रांति होगी, जिससे सारी संस्थाएं खत्म हो जाएँगी वहीँ ग्राम्शी का मानना है कि उन्नत पूंजीवादी समाज में ऐसा नहीं होता है। इसके लिए ग्राम्शी ने "प्राधान्य" का सिध्दांत दिया।

ग्राम्शी के प्राधान्य सिध्दांत के अनुसार बुर्जुवा समाज की मजबूती का मुख्य स्रोत शासक वर्गों का प्राधान्य है जो उनकी सांस्कृतिक सर्वोच्चता में व्यक्त होता है । यह नागरिक समाज (परिवार, शिक्षा संस्थान, बुद्धिजीवियों आदि)

के माध्यम से सारी जनसँख्या के अन्दर प्रवेश कर लेता है। ग्राम्शी ने विशेष रूप से पूंजीवादी समाज की संस्कृति में प्रभुत्व की संरचनाओं का पता लगाया। ग्राम्शी ने पूंजीवादी समाज की 'अधिरचना' में दो स्तरों में अंतर किया।

1. राजनीतिक समाज जो अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए बल-प्रयोग का सहारा लेता है।
2. नागरिक समाज जो प्रभुत्व स्थापित करने के लिए नागरिकों की सहमती का सहारा लेता है ।

- मार्क्सवाद के अंतर्गत यह माना जाता है कि समाज में प्रचलित उत्पादन-प्रणाली उसका आधार है जिस पर क़ानूनी और राजनीतिक ढांचा, धर्म, इत्यादि ऊपरी ढाँचे या अधिरचना की तरह खड़े किये जाते क़ानूनी और राजनीतिक ढांचा धर्म नैतिक आदर्श, सामाजिक प्रथाएं इत्यादि हैं । सामाजिक विकास के दौरान उत्पादन-प्रणाली (आधार) में बदलाव होने पर अधिरचना (क़ानूनी और राजनीतिक ढांचा, धर्म, नैतिक आदर्श, सामाजिक प्रथाएँ आदि) के सब हिस्सों में अपने आप परिवर्तन हो जाता है।
- ग्राम्शी का मानना है कि नागरिक समाज की संस्थाएं (परिवार, पाठशाला और धार्मिक संस्थाएं) नागरिकों को समाज में व्यवहार के नियमों से परिचित कराती हैं और उन्हें यह शिक्षा देती हैं कि नागरिकों को शासक वर्गों की प्रति स्वभाविक सम्मान का भाव रखना चाहिए । ये संस्थाएं बुर्जुवा समाज के नियमों को वैधता प्रदान करती हैं ताकि उसमें नहित अन्याय भी न्याय प्रतीत हो। इस लिए इन संस्ताओं को वैधातासंस्थापक संरचनाएं (structures of legitimation) कह सकते हैं। ये संस्थाएं बुर्जुवा समाज को सहायता देती हैं कि कोई उसकी सत्ता को चुनौती न दे पाए . सामान्यतया बुर्जुवा समाज अपनी स्थिरता के लिए नागरिक समाज की इन्हीं संरचनाओं की कार्य-कुशलता पर आश्रित होता है. जब नागरिक समाज असहमति पर अपना नियंत्रण करने पर असफल होता है तब राज्य को बल प्रयोग करने की जरुरत पड़ती है.
- इससे समझ में आता है कि पूंजीवादी राज्य से मुक्त होने के लिए मूल्यों और मान्यताओं के क्षेत्र में बुर्जुवा के प्राधान्य का अंत करने की दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए.
- ग्राम्शी का मानना है कि मार्क्सवादियों को अर्थशास्त्र के मोह-जाल से निकल कर संस्कृति, साहित्य, नैतिक और दार्शनिक वाद-विवाद के मैदान में पूंजीवाद के विरुद्ध विचारधारात्मक लड़ाई करनी चाहिए . नागरिक समाज की स्वायत्त संस्थाओं में जन चेतना में बदलाव करने की आवशयकता है.

ग्राम्शी ने मार्क्सवाद की मान्यताओं का का खंडन करते हुए नव-मार्क्सवाद का की नींव रखी . ग्राम्शी ने अधिरचना को दो भागों में विभाजित किया – राज्य एवं नागरिक समाज . जिसमें नागरिक समाज अधिक महत्वपूर्ण होता है.

15.5 ग्राम्शी के चिंतन की विशेषताएं

ग्राम्शी ने नागरिक समाज को अपने चिंतन का केंद्र बिंदु माना. जिसके लिए उसने प्राधान्यता का सिध्दांत दिया. उसका मानना था कि बुद्धिजीवियों के द्वारा समाज की अधिरचना पर कब्ज़ा किया जाता है.

आर्थिक निर्धारणवाद की संकल्पना को नहीं माना.

उसने क्रांति को सैन्य शब्दावली में गतिशील युद्ध (War of Monouvres) और स्थितियों का युद्ध (War of Positions) में व्यक्त किया . गतिशील युद्ध जिसमें राज्य सरकार के विरुद्ध युद्ध है, जो लेनिन ने रूस में किया. स्थितियों का युद्ध जो नागरिक समाज पर नियंत्रण के लिए वैचारिक एवं सांस्कृतिक आधिपत्य है

15.6 क्रांति की तैयारी

ग्राम्शी रूस की क्रांति का मुरीद थे परन्तु उसका मानना था कि पूंजीवादी देशों में यह तरीका काम में नहीं आ सकता है . उसका मानना था कि पूंजीवादी देशों में नागरिक समाज ज्यादा प्रभावशाली है . उसका मानना था की पूंजीवादी देशों में स्थितियों के युद्ध की आवश्यकता है. स्थितियों का युद्ध जो नागरिक समाज पर नियंत्रण के लिए वैचारिक एवं सांस्कृतिक आधिपत्य है. आधिपत्य से ग्राम्शी का मतलब नकारात्मक न होकर सहमती से है. जिससे नेतृत्व बौद्धिक वर्ग द्वारा किया जायेगा.

15.7 ग्राम्शी की नागरिक समाज व बुद्धिजीवी की संकल्पना

ग्राम्शी पहले मार्क्सवादी विचारक हैं , जिन्होंने नागरिक समाज को अपने अध्ययन का केंद्र बनाया . ग्राम्शी , क्रोचे से प्रभावित थे इस वजह से वह भौतिक तत्वों की बजे सामाजिक संबंधों में ऐतिहासिक विकास को ढूंढते थे . नागरिक समाज में ग्राम्शी ने स्कूल, चर्च, विश्वविद्यालय व ट्रेड यूनियन को रखा. उनका मानना था कि नागरिक समाज ही विचारों में परिवर्तन कर सकता है और यही वैचारिक परिवर्तन अधिपत्य है. नागरिक समाज सहमती उपलब्ध करता है और राजनीतिक समाज बल प्रयोग को संगठित करता है .

ग्राम्शी ने बुद्धिजीवी की संकल्पना भी की जिसके अंतर्गत दो प्रकार के बुद्धिजीवी है .

I परंपरागत बुद्धिजीवी

Ii संगठित बुद्धिजीवी

ग्राम्शी का मानना था कि प्रत्येक तार्किक व्यक्ति बुद्धिजीवी है पर वह बुद्धिजीवी का कार्य नहीं करता है। ग्राम्शी ने संगठित बुद्धिजीवी की संकल्पना को आधुनिक प्रिंस की संज्ञा दी। उसके अनुसार संगठित बुद्धिजीवी ही साम्यवादी दल है।

15.8 ग्राम्शी के अनुसार श्रमिकों को क्या करना चाहिए?

अकेले मत जाओ, समान विचारधारा वाले समूहों का गठबंधन बनाओ। वह सबाल्टर्न वर्ग के गठबंधन की बात करते हैं। सबाल्टर्न का अर्थ है , दलित वर्ग। श्रमिक पूंजीपति द्वारा शोषित एकमात्र वर्ग नहीं हो सकते हैं। अन्य वर्ग भी हो सकते हैं, उदाहरण के लिए भारत के मामले में, हम दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, महिलाएं, ट्रांसजेंडर को सबाल्टर्न वर्गों के रूप में शामिल कर सकते हैं।

15.9 नव-मार्क्सवाद

नव- मार्क्सवाद के अंतर्गत ग्राम्शी के विचारों को मुख्य आधार माना जाता है। इसमें मार्क्सवाद को वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी रूप में नहीं माना गया है । नव- मार्क्सवाद की व्यख्या करने का पहला श्रेय हंगरी के विचारक, जार्ज ल्यूकाच को दिया जाता है । इनकी रचना "History and Class Consciousness: Studies in Marxist Dialectics" (1923) है। नवमार्क्सवाद उन विचारों का समूह है जो मार्क्सवाद से जुड़े हुए चिंतन में एक नए मोड़ देता है। इस चिंतन-शैली की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इतालवी मार्क्सवादी एंटोनियो ग्राम्शी की विश्लेषण-पद्धति से हो गई थी। इसका विस्तृत विवेचन अधिकांशतः 'फ्रैंकफर्ट स्कूल' के अंतर्गत में प्रस्तुत किया गया जिसने राजनीति-चिंतन के अंतर्गत आलोचनात्मक सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। संक्षेप में, यह मार्क्सवाद की कुछ मान्यताओं से हटकर नई दिशाओं सोचने का ढंग है हालांकि यह किसी बंधे-बँधाए दृष्टिकोण के साथ नहीं बँधा है। देखा जाए तो मार्क्सवाद अपनी पुरानी मान्यताओं से हटकर जिन नई-नई दिशाओं में विकसित हुआ है, उन्हें सामूहिक रूप से नवमार्क्सवाद की संज्ञा दी जाती है। कुछ भी हो, यह मार्क्सवाद की कुछ बुनियादी मान्यताओं में अपना विश्वास कायम रखता है। उदाहरण के लिए यह समाज के वर्ग-चरित्र का खंडन नहीं करता, परन्तु वर्ग संघर्ष को केवल आर्थिक मुद्दों पर पूंजीपति और कामगार वर्गों का सीधा टकराव नहीं मानता। यह समकालीन समाज में विभिन्न स्तरों पर-जैसे कि आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्तरों पर-प्रभुत्व और पराधीनता के तरीकों का विश्लेषण करता है। यह पूंजीवाद का विरोधी है, और उसके निराकरण के लिए कुल संकल्प है। परन्तु यह पूंजीवाद को केवल उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित आर्थिक प्रणाली के रूप में नहीं देखता, बल्कि एक विस्तृत आर्थिक-राजनीतिक- सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में देखता है, और इस विश्लेषण के संदर्भ में मनुष्य की स्वतंत्रता की समस्या पर विचार करता है।

15.10 सारांश

ग्राम्शी एक मानव वादी था जो बल-प्रयोगमूलक राज्य की जगह समस्त संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण करना चाहता था. जिसके लिए राज्य की जगह ऐसे विनियमित समाज के पक्ष में था जिसमे सारे निर्णय बल-प्रयोग की जगह सर्वसम्मति से किये जायेंगे।वह जानना चाहते थे कि मार्क्सवादी भविष्यवाणियाँ ग़लत क्यों हो गयीं। मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार क्रांति क्यों नहीं हुई? इसलिए उन्होंने मार्क्स की इतिहास की व्याख्या का आलोचनात्मक परीक्षण किया। उन्होंने इतिहास की अन्य व्याख्याओं की तलाश की, वे इतालवी विद्वान बेनेडेटो क्रोस द्वारा दिए गए इतिहास के सिद्धांत से प्रभावित हुए। बेनेडेटो क्रोस ने इतिहास में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका पर जोर दिया है। अतः ग्राम्शी को लगा कि शायद मार्क्स ने इतिहास में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका को नज़रअंदाज कर दिया है।

ग्राम्शी को 'अधिरचना का सिद्धांतकार' कहा जाता है। उनका मानना था कि मार्क्स ने अधिरचना में ज्यादा ध्यान नहीं दिया है।

मार्क्स का समाज के मॉडल में आर्थिक संरचना ही मूल संरचना है। राज्य, चर्च, मीडिया, शैक्षणिक संस्थान अधिरचना का हिस्सा हैं। मार्क्स के लिए अधिरचना अपने आप में एक संरचना नहीं बल्कि आधार का प्रतिबिंब है। इसका मतलब है कि यदि आर्थिक संरचना बदलती है, तो अधिरचना स्वतः बदल जाएगी। इसका मतलब है कि केवल एक क्रांति की आवश्यकता है यानी उत्पादन की मूल संरचना(मोड) में बदलाव। ग्राम्शी के लिए आर्थिक संरचना के स्तर पर लड़ना ही पर्याप्त नहीं है। हमें दो स्तरों पर लड़ना होगा, बुनियादी संरचना और अधिरचना। अधिरचना को बदलना अधिक चुनौतीपूर्ण है। बुनियादी संरचना एक दिन में बदल सकती है, लेकिन अधिरचना में सदियाँ लग सकती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. ग्राम्शी के विचारों को पुस्तक में शामिल किया गया है?

2. ग्राम्शी का मुख्य उद्देश्य क्या था?

3. ग्राम्शी के अनुसार मार्क्स ने इतिहास के विश्लेषण में किन कारकों की अनदेखी की?

4. आधिपत्य का तात्पर्य है?

5. ग्राम्शी के अनुसार पूँजीपति वर्ग का आधिपत्य बनाए रखने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका किसकी है?

15.11 शब्दावली

बुद्धिजीवी-जो एक कलात्मक, सामाजिक या राजनीतिक अभिजात वर्ग का निर्माण करते है

आधिपत्य- प्रभुत्व

सबाल्टर्न वर्ग – निमंवर्गीय वर्ग

15.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जेल से पत्र, 2. यह जानना कि मार्क्सवादी भविष्यवाणियाँ गलत क्यों हुई हैं

3. सांस्कृतिक कारक, 4. शासक वर्ग की सहमति उत्पन्न करने की क्षमता, 5. बुद्धिजीवी

15.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

https://politicsforindia.com/gramscis-political-thoughts/

राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा - ओ0पी0 गाबा-मयूर पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण-2017

15.14 निबंधात्मक प्रश्न

1 ग्राम्शी की नागरिक समाज और बुद्धिजीवीयों की अवधारणा को समझाते हुए, अधिपत्य की अवधारणा का सविस्तार विवेचन कीजिये।